
मीना
मेरे आगे
सत्य व्यास

मीना

मेरे आगे

मीना मेरे आगे

सत्य व्यास



वाणी प्रकाशन



वाणी प्रकाशन

4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110 002

फ़ोन : +91 11 23273167 फ़ैक्स : +91 11 23275710

शाखाएँ

अशोक राजपथ, पटना 800 004, बिहार

कॉफ़ी हाउस कैम्पस, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद 211 001, उत्तर प्रदेश

महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा 442 001, महाराष्ट्र

www.vaniprakashan.com
marketing@vaniprakashan.in
sales@vaniprakashan.in

Meena Mere Aage
by Satya Vyas

ISBN : 978-93-5518-300-2
Non-Fiction/Memoirs

© सत्य व्यास

प्रथम संस्करण 2023

मूल्य : ₹ 499

इस पुस्तक के किसी भी अंश को किसी भी माध्यम में प्रयोग करने के लिए प्रकाशक से लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है।

आर. टेक ऑफ़सेट प्रिंटर्स, दिल्ली-110 032 में मुद्रित

वाणी प्रकाशन का लोगो मक़बूल फ़िदा हुसेन की कूची से

मीना मेरे आगे

मीना कुमारी पर यह किताब लिखने में जितने साल लगे उससे ज़्यादा साल से यह बात मेरे मन में थी कि मुझे मीना कुमारी पर लिखना है। मगर मेरे पास सिर्फ़ भावना थी, लगाव था, इच्छा थी, स्रोत नहीं थे। लिहाज़ा, इस किताब को लिखे जाने में जो भी देरी हुई, उसमें मेरी काहिली के अलावा स्रोतों की खोज, उनके लिए हुए भटकाव, किताबों, रिसालों, अनुवादों का इन्तज़ार इत्यादि भी बराबर के गुनहगार हैं। बीच में एक सपने से दो-चार हुआ और फिर यह लगभग तय किया गया कि अगली किताब मीना जी पर ही होगी। फिर तो मैं जहाँ भी गया, वहाँ बस मीना जी पर सूचनाएँ, पुस्तकें ही तलाशता रहा। क्या जयपुर का चौड़ा बाज़ार, क्या मुम्बई की कोलाबा बुक मार्केट, क्या लखनऊ का डालीगंज और अमीनाबाद और क्या दिल्ली का दरियागंज बाज़ार—हर जगह बस मीना कुमारी ही ढूँढ़ता रहा। बाज़दफ़ा हँसी का पात्र भी बना, मगर यह हँसने वाले का दोष नहीं, मेरी सनक की ग़लती रही जो बीस-पच्चीस साल के कबाड़ी वाले से 'मई 1972' का शमा रिसाला जैसी नायाब चीज़ माँग बैठता था।

मुझे यह मौक़ा दोबारा मिले न मिले, इसलिए एक ग़ैर-ज़रूरी बात भी बताता चलता हूँ। मीना जी से मेरा प्रथम परिचय 1990-91 के वर्ष में तब हुआ था, जब मैं टीवी पर आ रही फ़िल्म 'दिल अपना और प्रीत परायी' का गीत *'अजीब दास्ताँ है'* देख रहा था और तब तक कलर फ़िल्मों की आदत आँखों को हो गयी थी। बहरहाल, जैसे ही यह गीत शुरू हुआ और लहरों ने हिलोरे मारे, हिलोरों से साहिल पर लगी नावें हिलने लगीं और फिर सफ़ेद लिबास में नीचे से ऊपर तक धीमे-धीमे नुमाया हुआ एक चेहरा। मीना कुमारी का चेहरा। मैं यह चेहरा देखकर डर गया। सादा लिबास में लिपटा हुआ इतना दर्दीला चेहरा,

इतनी ख़ाली आँखें मेरे लिए पहला लादुनियावी अहसास था। वही अहसास जो हमें डराने के लिए कहानियों में दिखाया जाता था। मेरे मुँह से सम्भवतः धीमे से ही चीख़ निकल गयी। दीदी ने पूछा भी—क्या हुआ? मगर वह वक़्त भी ऐसा था जब बहनों के आगे भाइयों को कमज़ोर नहीं दिखना होता था। लिहाज़ा, 'कुछ नहीं' कहकर उठ गया और सोने चला गया। मैं स्वीकार करता हूँ कि वो पूरी रात मैंने आँखों में ही बितायी थी।

मगर यह वह बात नहीं थी जिसने मुझे मीना जी की ओर, उनके व्यक्तित्व की ओर या यूँ कहें कि उनकी फ़िल्मों की ओर खींचा। वह बात और चार साल बाद हुई।

नब्बे के दशक के मध्यमवर्गीय परिवार में कमरों के नाम भी काफ़ी व्यक्तिगत हुआ करते थे—टीवी वाला कमरा, भाभी वाला कमरा, पूजा वाला कमरा इत्यादि। इस साल तक मैं दसवीं में आ चुका था और अगले ही साल बोर्ड की परीक्षाएँ थीं। सो, मुझे एक अलग कमरा मिला था—स्टोर वाला कमरा।

स्टोर वाले कमरे में ताज़ा-ताज़ा सफ़ेदी हुई थी और टूट-फूट को प्लास्टर ऑफ़ पेरिस से भर दिया गया था। कमरे में नये चूने और प्लास्टर ऑफ़ पेरिस की मिली-जुली ख़ुशबू एक मदिर-सा असर पैदा करती थी। और इसी के ज़ेर-ए-असर मुझे प्लास्टर ऑफ़ पेरिस खाने की आदत पड़ गयी। हँसिये नहीं! यह सचमुच एक मादक लत थी, जिससे क़ाबू पाने में मुझे वक़्त लगा। मुझे ऐसा लगता था कि ऐसा करने से पढ़ने में मेरी कांसंट्रेशन बन रही है, जबकि सच्चाई यह थी कि मेरा ध्यान ही प्लास्टर ऑफ़ पेरिस की ओर होता था। इसलिए जब तक खा नहीं लेता तब तक पढ़ नहीं पाता।

ख़ैर, हुआ यह कि एक रात पढ़ाई करते-करते, चम्मच से कुरेदकर मैं ढेर सारी प्लास्टर ऑफ़ पेरिस खा गया और सुबह जब देखा तो पाया कि वहाँ एक बड़ा-सा गड्ढा हो गया है। वह गड्ढा इतना बड़ा तो हो ही गया था कि माँ या दीदी की नज़र में आ जाता। पापा स्टोर रूम की ओर नहीं आते थे, इसलिए उनका इस मामले में डर थोड़ा कम था। 'क्या करूँ क्या न करूँ' की स्थिति में मुझे एक युक्ति सूझी। क्रिकेट टीम के लिए जमा किये गये 30 रुपये मेरे पास थे, जिससे कि विकेट ख़रीदना था। मैं फ़ौरन कमरे से बाहर निकला, साइकिल उठाई और बाज़ार चला गया।

पोस्टर वाले से कहा कि सबसे बड़ा पोस्टर दिखाएँ। उसने पूछा कि मीना कुमारी का है, दे दूँ? मैंने हामी भरी–दे दीजिए। उसने उस बड़े पोस्टर को गोल किया, उस पर रबरबैंड लगाई और मुझे दे दिया। जल्दबाज़ी में बिना देखे ही मैं उसे लेकर आया और स्टोर रूम में टेबल के ठीक सामने दीवार के गड्ढे को छुपाते हुए पोस्टर चस्पाँ कर दिया।

पोस्टर चस्पाँ कर जब सामने कुर्सी पर बैठकर देखा तो यूँ लगा जैसे किसी ने किसी मन्त्र से मुग्ध कर दिया है। वह 'साहिब बीवी और ग़ुलाम' की किसी मुद्रा की तस्वीर थी, जो आज तक मेरे ज़ेहन में वैसे ही चस्पाँ है। फिर तो यूँ हुआ कि दसवीं के मेरे नतीजे ख़राब हो गये। मगर मीना जी ने 'कोहेनूर' में दिलीप कुमार से मिलने आते वक़्त 'सात कुलाँचें भरे हैं' यह तक मेरे ज़ेहन में क़ैद हो गया।

यह तो रही मेरी बात। मगर आप पूछ सकते हैं कि मीना कुमारी पर लिखे जाने की ज़रूरत क्या है, जबकि उन्हें गुज़रे हुए भी आधी सदी होने को आयी। ज़रूरत क्या है उन पर लिखने की जबकि उनके बाद की दुनिया और उनकी अपनी फ़िल्मी दुनिया ने भी सरापा तब्दीलियाँ देख ली हैं। ज़रूरत क्या है मीना की कहानी जानने की, जबकि तब और अब के मुआशरे (समाज) में तमाम रद्दोबदल हो चुके हैं।

ऐन यही कारण मीना कुमारी पर लिखे जाने का है। समाज आज जिस बदलाव की ताकीद कर रहा है, जिन बेड़ियों को तोड़कर आगे बढ़ रहा है, मीना ने वह सलासिल, वे बेड़ियाँ आधी सदी से भी ज़्यादा पहले तोड़ दी थीं। इस लिहाज़ से वह एक मायने में पथ प्रदर्शक रही थीं।

मीना के बारे में जितनी हक़ीक़त बयान हैं, उतने ही अफ़साने भी तैरते हैं। उनको लेकर हर इन्सान की अपनी ही कहानी है और हर कहानी का अपना ही अलग ज़ाविया है। कुछ का मक़सद महज़ सनसनी फैलाना था और कुछ ज़ाहिराना सच बयानी थी।

क़ानून का विद्यार्थी कहीं-न-कहीं क़ानून की भाषा बोलता ही है। मीना कुमारी यह दुनिया तब छोड़ गयीं जब मेरे इस दुनिया में आने का कोई इमकान भी आसपास न था। लिहाज़ा उन पर लिखने, उनको जानने और उन तक पहुँचने के लिए मुझे द्वितीयक साक्ष्यों से ही गुज़रना पड़ा। जीवन के कुछ दुखों में से एक दुख यह भी रह ही जायेगा कि काश, उनके वक़्त में पैदा होने की ख़ुशनसीबी अता होती...। काश!

इसलिए...यहाँ दर्ज बातों की सच्चाई का दावा करूँ, यह ठीक नहीं होगा और तारीख़ इन बातों को एक सिरे से नकार दे, झुठला दे ऐसा भी नहीं। मैं ऐसा कुछ भी नहीं लिख सकता जिसकी बाबत कोई लिखित स्रोत नहीं हो और महज़ सनसनी के लिए ऊलजलूल घटनाओं का समावेश कर लूँ, इसके लिए मेरा मन गवाही नहीं देगा।

लिहाज़ा, मैं वही लिखूँगा जो कम-ओ-बेश मीना के चाहने वाले जानते हैं। यह प्रयास मीना कुमारी को फिर से याद करने का एक प्रशंसक का प्रयास भर है। प्रयास यह कि आधी सदी पहले हमें छोड़कर चली गयी उस पूर्ण अदाकारा को आधी सदी बाद के पाठक और शैदाई जानें।

क्योंकि मूलतः उपन्यासकार हूँ, इसलिए इसमें भी कुछ उपन्यास के तत्त्व आ गये हों तो क्षमा कीजिएगा, यह अनायास हो सकता है।

फ़िल्म वालों की बदनसीबी यह कि तारीख़ उन पर कभी भी मेहरबान नहीं रही। इस कारण उन पर कोई तारीख़ी किताब नहीं लिखी गयी, न ही उन्हें तारीख़ में दर्ज होने लायक माना गया। फ़िल्मी अफ़राद की तारीख़ जो है, वे अख़बार-ओ-रिसालात ही हैं, जिनमें उनकी ज़िन्दगी के अहम पहलू नुमायाँ होते हैं। सो क्या ज़रूरी कि हम उन बातों, उन अख़बारों, उन मैग्ज़ीनों को सिरे से नकार दें। मसालाई रिसालों की बात दीग़र है।

और फिर,

मीना कुमारी का पूरा सच सिर्फ़ और सिर्फ़ मीना कुमारी ही जानती थी। चाहे फ़िल्मकार, चाहे नातेदार, चाहे कोई किताब या कोई अदीब, कोई भी यह दावा करे कि वह उनकी कहानी मुकम्मल तौर पर जानता है तो यह झूठ होगा। लिहाज़ा, यहाँ लिखी बातें भी फ़साना मानकर पढ़ा जाना ही सही होगा, क्योंकि इस किताब में लिखी बातें उतनी ही सच्ची हैं जितनी मीना की बाबत फैले क़िस्से और उतना ही फ़साना है जितना मीना की बाबत फैले क़िस्से।

बात ख़त्म करता हूँ, वरना उन पर बात करने को ही मुझ पर एक किताब कम है। मैं उनका सम्भवतः आख़िरी लम्हे तक शुक्रगुज़ार रहूँगा। उन्होंने, उनकी ख़ामोश बयानी ने और उनकी फ़िल्मों ने मुझे, मेरे जीवन में कुछ प्यारे पल दिये।

शुक्रगुज़ार मैं उन लोगों का भी रहूँगा जिनके बग़ैर यह किताब कभी मुकम्मल नहीं हो पाती–

प्रियंका, मेरी पत्नी, जिन्होंने मुझे नॉन-फ़िक्शन लिखने और मीना जी पर ही लिखने को बार-बार कहा।

सान्निध्य, मेरा बेटा, जो अपना माइनक्रॉफ़्ट छोड़कर मेरे साथ मीना कुमारी की फ़िल्में और गीत देखने को लगभग विवश हुआ है और जो हँसते हुए कहता है कि तुमने मीना कुमारी पर लिखा। मैं किस पर लिखूँगा, यह भी तुम ही चुन दो।

सबाहत आफ़रीन, जिन्होंने बिला शिकायत न सिर्फ़ उर्दू किताबों, रिसालों बल्कि समोसा खाये हुए अख़बारी कतरनों तक का तर्जुमा मेरे लिए, मीना कुमारी के लिए किया।

हसन अल्मास, मेरे दोस्त और रीडर, जिनसे भी मैंने बाज़दफ़ा उर्दू पढ़ने-पढ़वाने में मदद ली।

रौनक़ अफ़रोज़, कोलकाता में रहते हुए मेरी सबसे नज़दीक की ट्रांसलेटर रहीं।

बॉबी सिंह, जिन्होंने ड्राफ्ट पढ़कर पहली राय दी।

सूर्या मौर्य, जिन्होंने न जाने कितनी ही दफ़ा मेरे लिए FTII की लाइब्रेरी के चक्कर लगाये।

ज़हीर हसन, जिनका मुझे ही नहीं बल्कि तमाम अफ़राद को शुक्रगुज़ार होना चाहिए। इंटरनेट पर मौजूद पुरानी फ़िल्मी तस्वीरों का ज़ख़ीरा हम इनकी वजह से देख पाते हैं। हसन जिसे खुले दिल से न सिर्फ़ साझा करते हैं बल्कि ज़रूरत पड़ने पर मुहैया भी करवाते हैं।

विकास, बबलू मिश्र, रेहान और विवेक जैसे बुक कलेक्टर्स और सेलर्स और वे सभी दोस्त, जो दुकानों और इंटरनेट पर बस मीना कुमारी का नाम पढ़कर किताबें, मैग्ज़ीन या जो कुछ भी, मेरे लिए आरक्षित कर देते हैं।

आपके सहयोग के बिना यह किताब पूरी कर पाना सम्भव नहीं था और यह सिर्फ़ कहने की बात नहीं, आप जानते हैं कि मैं ऐसा ही महसूस करता हूँ।

पूनम अरोड़ा, मेरी सम्पादक का विशेष शुक्रिया, जिन्होंने मेरी वह हैंडराइटिंग भी पढ़ी, जिसे पढ़ने से मेरे शिक्षक भी गुरेज़ खाते थे।

और अन्तत—

मैं जानता हूँ कि यह कहकर मैं नाराज़गी ही मोल लूँगा मगर फिर भी मैं अपनी प्रकाशक अदिति माहेश्वरी—गोयल का शुक्रगुज़ार हूँ, जिन्होंने न सिर्फ़ मुझे आज़ादी दी बल्कि इसके लेखन के लिए इतना-इतना समय दिया जिसका मैंने बेजा फ़ायदा उठाया।

वे सब लोग जिनसे मैंने एक शब्द, एक हर्फ़, एक मानी भी सीखा उनका शुक्रिया।

बिस्मिल्लाह कहिए...

—सत्य व्यास

अनुक्रम

भाग-2 मीना, पश-ए-मंज़र

मेरे अपने

मेरा हँसना है ज़ख़्म की सूरत
जो मुझे देखता है रोता है

मीना की कहानियों के मुक़द्दर में अधूरापन ब-आग़ाज़ था। सोचता हूँ कि कौन-सा सिरा पकड़कर चलूँ तो सोच भी नहीं पाता। सोचता हूँ कि कौन-से नाम से उनका परिचय दूँ तो ख़ुद ही हँस पड़ता हूँ और फिर ख़ुद ही ग़मगीन होता हूँ। कितने तो नाम थे उनके महज़बीन, मुन्ना, चीनी, बेबी मीना, मीना कुमारी, नाज़, मेम साहब और...और मंजु।

मीना की आपबीती और जगबीती में कोई ख़ास अन्तर नहीं है। खुली किताब के पन्ने जिस तरह फड़फड़ाते हुए अपनी बात कहते हैं, यूँ ही मीना ने भी अपनी ज़िन्दगी रखी है।

किताब! किताबों का शौक़ इतना रहा कि एक नाम और मिला था– मास्टरनी। ठीक-ठीक याद कर पाऊँ तो बताऊँ कि उन्हें ये नाम फणी दा (फणी मजूमदार) ने दिया था। कारण यह कि जहाँ वक़्त मिले मीना किताबें लेकर बैठ जाती थीं। और पढ़ने का शौक़ इतना कि जो भी एकाध साल की तालीम मिली, उस्ताद से पूछ बैठीं–''उस्ताद जी, आग़ाज़ अलिफ से ही क्यों?'' उस्ताद हँसे। कहा कुछ नहीं।

सन् 1921 में सर सैयद अहमद ख़ाँ ने मुस्लिम महिलाओं के लिए भी शिक्षा की कोशिश की थी, ताहम उसका नतीजा यह निकला था कि सन् 1931 तक प्रति हज़ार में छह मुस्लिम महिलाओं को शिक्षा हासिल थी। मीना इतनी ख़ुशनसीब कभी नहीं रहीं कि उन छह में आतीं।

बिमल दा जब भी तारीफ़ करना चाहते तो बस यही कहते– "आपनी द्रूतो सिखुन।" जिसका अर्थ होता, तुम जल्दी सीख जाती हो। दादा की बात को उन्होंने कभी गम्भीरता से नहीं लिया। उन्होंने तो किसी

की बात को गम्भीरता से नहीं लिया। बाप, बहन, शौहर, दोस्त, मसीहा, ख़ुदा सब की बनायी नकेल और नसीहत ढहाती चली गयीं।

ऊपर उनके नाम गिनवाने के क्रम में ही यह अहसास हो आया कि उनकी कहानी वहीं से शुरू करता हूँ जहाँ की किसी को कुछ याद नहीं है। जहाँ की सारी बातें सुनी-सुनायी या हवा-हवाई हैं। सारी बातें, क्योंकि उनके दोस्त, अहबाब, रिश्ते, नातेदारों से गुज़रती हुई ही हैं, इसलिए सच मान लेता हूँ। आप भी मान लें।

मुन्ना! मीना का पहला नाम। अम्मी इसी नाम से पुकारा करती थीं। अम्मी! इक़बाल बेगम! मगर जैसे मीना का कोई एक नाम न हुआ, अम्मी का भी कोई एक नाम नहीं हुआ। हालाँकि यह बहस ही फ़िज़ूल है। औरतों के एक नाम कहाँ होते हैं! इब्ते की बेटी से, शिब्ते की बेगम और फिर फत्ते की अम्मी तक औरतें न जाने कितने किरदार, कितने नाम बदलती हैं।

क़िस्सा-कोताह, मीना कुमारी की अम्मी का नाम इक़बाल बेगम नहीं था। अम्मी का नाम प्रभावती था और वे कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर के घराने से आती थीं। आपका चौंक जाना स्वाभाविक है। मीना कुमारी के रिश्ते भी ठीक उनकी ज़िन्दगी की तरह पेंचदार थे। उनमें अदब-आदाब कहाँ से आ गये, इसका जवाब उनके माज़ी से ही, उनके पारिवारिक इतिहास से ही मिलता है। बदनसीबी न जाने कितनी पीढ़ियों से उनके पीछे चल रही थी।

कविगुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर के छोटे भाई सुकुमार टैगोर की बेटी हेमसुन्दरी युवावस्था में विधवा हो गयी थी। तब की बेवा की ज़िन्दगी जहन्नुम का आहनीवार ही हुआ करती थी जो कच्ची उम्र की बेवाओं को या तो अँधेरे बन्द कमरे में घुट जाने को बेबस कर देती थी या फिर बनारस की राह पकड़ लेने को मजबूर। हेमसुन्दरी कुछ मामलों में मजबूर ज़रूर थीं, कमज़ोर कतई नहीं थीं। उन्होंने तीसरा रास्ता चुना और ऐसे किसी भी दुख में दफ़न होने से इनकार कर दिया। उन्होंने अपना नसीब किसी और के हाथों बिगड़ने से बेहतर घर छोड़ देना समझा।

घर छोड़कर वह कहाँ गयीं, इसके बाबत दो राय हैं। मगर वह ज़रूरी नहीं है। ज़रूरी यह है कि घर छोड़ने के बाद वह मीना कुमारी के नाना से मिलीं। मीना के नाना यानी—प्यारेलाल 'शाकिर'।

नाना जितने उम्दा ख़बरनवीस थे, उतने ही उम्दा शायर भी थे। मुंशी प्रेमचन्द जी के बाद रिसाला 'अदीब' का सम्पादन उन्होंने ही किया था। बाद के दिनों में उनके एक दोस्त ने ही उनकी एक ग़ज़ल पढ़वायी थी जिसका मकता कुछ यूँ था—

इन शानदार महलों को क्या करूँ मैं लेकर
लगता नहीं है मेरा दिल आह इन में दमभर

लुब्बे लुबाब यह कि मीना की नानी हेमसुन्दरी, उनके नाना प्यारेलाल 'शाकिर' से मिलीं।

मुंशी प्यारेलाल 'शाकिर' मेरठी का जन्म मेरठ, यूपी के उपनगर कंकेरख़ैरा में हुआ था। घर पर प्रारम्भिक शिक्षा के बाद प्यारेलाल को चर्च मिशन हाई स्कूल, मेरठ में भर्ती कराया गया था। लेकिन उन्हें अपनी औपचारिक शिक्षा छोड़नी पड़ी। एक ईसाई मिशन में सेवा करने के लिए मुज़फ़्फ़रनगर चले गये। एक बेचैन आत्मा, प्यारेलाल जल्द ही गुजरात (पंजाब) चले गये। यहाँ उनकी साहित्यिक प्रतिभा जो राख के नीचे सुलग रही थी, उसे प्रज्वलित करने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ मिलीं।

जल्द ही प्यारेलाल ने उर्दू में ग़ज़लों की रचना करनी शुरू कर दी और 'शाकिर' के तख़ल्लुस से आधुनिक उर्दू कविताएँ लिखनी शुरू कीं।

20वीं शताब्दी के शुरुआती दशकों में उर्दू साहित्यिक पत्रिकाओं की झड़ी लग गयी, उनमें 'अदीब' भी शामिल था। 'अदीब' के अलावा शाकिर ने, 'मखजान', 'ज़माना', 'इस्मत' और 'ज़बान' जैसी कई अन्य पत्रिकाओं के लिए भी लिखा। प्यारेलाल 'शाकिर' उर्दू, हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेज़ी और फ़ारसी के भी अच्छे जानकार थे।

'शाकिर' की अन्य रचनाओं में 'हालात-ए-सर सैयद', 'वफ़ा का पुतला' और रवीन्द्रनाथ टैगोर की जीवनी का उर्दू अनुवाद शामिल हैं, मगर उनकी सबसे अच्छी रचना कालिदास के दोहों का उर्दू तर्जुमा 'अक्सीरे सुख़न' को ही माना जाता है।

ख़ैर, बात तो प्यारेलाल 'शाकिर' और हेमसुन्दरी के मिलने की हो रही थी। हाँ, तो हेमसुन्दरी प्यारेलाल 'शाकिर' से मिलीं। दोनों में बज़ाहिर इश्क़ हुआ और बात शादी तक आयी। बात शादी तक आयी तो दीन-धर्म, जाति, विधवा-सधवा सारी दुनियावी परेशानियाँ एक साथ आ गयीं। नाना प्यारेलाल पढ़े-लिखे तो थे ही, साथ ही टॉलस्टॉय की सिखाई राह पर

चलने वाले थे। सो, बक़ौल टॉलस्टॉय, उन्होंने परेशानी की शाखों को ख़त्म कर देने से बेहतर उसकी जड़ पर ही वार करना ठीक समझा और जड़ यानी अलग-अलग धर्म की बन्दिश ही ख़त्म कर दी। वह ईसाई हो गये। विवाह-निकाह में समस्या होती। गंगा-जल, आब-ए-ज़मज़म में परेशानी होती। सो, दोनों ने होली वाइन में पनाह पायी। शादी हुई और उनके दो बच्चे हुए और उनमें से एक लड़की थी, जिसका नाम प्रभावती था।

मगर कहा न! ख़ुशी के लम्हे घड़ी की बड़ी सूई जैसे होते हैं। बहुत तेज़ भागते हैं। सो, एक दिन नाना प्यारेलाल 'शाकिर' और नानी हेमसुन्दरी में बे-बात की अनबन हुई। नानी हेमसुन्दरी जो अब अस्पताल में काम कर रही थीं और बमुश्किल ख़ुद और दो बच्चों का पेट पाल रही थीं, दोबारा कोलकाता लौट आयीं।

अस्पताल की नौकरी कोलकात्ता में मुहाल थी। सो, इसके बाद वह उस काम पर लौटीं जो वह सबसे बेहतर जानती थीं—रंगमंच। कोलकाता का पारसी थियेटर तब अपने उठान पर था। पैसे भी ठीक थे, लिहाज़ा किसी के आगे हाथ पसारने की नौबत नहीं आयी।

दिन गुज़रने लगे। मीना की अम्मी, तब की प्रभावती को अपनी माँ से कला विरासत में मिली और वह भी रंगमंच की अच्छी नर्तकी बनी, मगर प्रभावती के सपने आकाश माँगने लगे। वो आकाश जो कोलकाता के थियेटर की गुम्बदों तक सीमित नहीं था। वह बेपनाह था, समन्दरों की तरह अथाह। सो प्रभावती ने आकाश, समन्दर और सपनों के मिलन वाली जगह चुन ली। वह मुम्बई चली आयीं। आकाश की तरह बेपनाह और समन्दरों की तरह अथाह और सपनों की तरह असीमित—मुम्बई।

कहते हैं—ईश्वर जब गुमनाम रहते हुए अपना अस्तित्व दर्शाना चाहता है तो वह संयोग पैदा करता है। ऐसा ही संयोग हुआ।

प्रभावती जब मुम्बई आयीं तो उनसे थोड़े ही दिनों पहले एक और शख़्स पंजाब के भेड़ा इलाक़े से ऐसे ही सपने लेकर मुम्बई आया था। वह शख़्स पेटी मास्टर कहलाता था। पेटी यानी हारमोनियम। मुम्बई पर छा जाने की तमन्ना लिये यह सुन्नी मुसलमान भी मुम्बई थियेटर में बतौर संगीतकार काम करने लगा था। वह शख़्स थे मीना कुमारी के अब्बू—अली बख़्श।

नाम का चोला ओढ़ाने में मुम्बई देर नहीं लगाती। मुम्बई बाहरी लोगों को अपनी ही पहचान देती है, मगर उससे पहले, पहली पहचान छीन लेती है। सो, बतौर डांसर अम्मी की साख तो बनी, मगर प्रभावती से कामिनी बनने के बाद। बम्बई ने उन्हें नया नाम दिया—कामिनी और अब्बू को नया नाम मिला—मास्टर अली बख़्श।

यह क़िस्मत का लिखा ही था कि कामिनी उसी थियेटर ग्रुप में नृत्य करती थीं जिसमें अली बख़्श हारमोनियम बजाते थे। यह तो उम्र ही ऐसी थी कि सामने पड़ा दूसरा इन्सान अच्छा लगने लगता और फिर अली बख़्श तो सामने पड़े पहले ही इन्सान थे। अली बख़्श पहले से तलाक़शुदा थे और अपनी एक बेटी के साथ मुम्बई आये थे।

बहरहाल, कामिनी और मास्टर अली बख़्श, दोनों एक साथ काम करते हुए क़रीब आये और निकाह पढ़ लिया। मास्टर अली बख़्श निहायत ही धार्मिक तबीयत के इन्सान थे और प्यारेलाल 'शाकिर' की तरह टॉलस्टॉय के मुरीद नहीं थे। सो, उन्होंने कामिनी से शर्तों पर शादी की। पहली तो यह कि वह इस्लाम क़ुबूल लेंगी और दूसरी यह कि वह शादी के बाद फ़िल्मों में काम नहीं करेंगी। इश्क़ में या तो शर्तें नहीं हुआ करतीं या फिर हर शर्त क़ुबूल होती है। सो, मीना कुमारी की अम्मी कामिनी से इक़बाल बेगम बन गयीं और फ़िल्मों में काम करना भी बन्द कर दिया। क्या क़यामत कि जो शर्त बेगम के लिए थी, वह शर्त बाद में जाकर बेटियों पर लागू नहीं हुई।

बहरहाल, सब कुछ ठीक चल ही रहा था कि हिन्दोस्तान में बोलती फ़िल्मों का आग़ाज़ हो गया। पहली बोलती फ़िल्म ने सब पर एक जैसा असर नहीं किया। कुछ लोगों के लिए यह फ़िल्मों में इंक़लाब जैसा था, और कुछ लोगों के लिए पेट पर लात पड़ने जैसा। जिन लोगों पर इस इंक़लाब ने बुरा असर किया, उसमें इक़बाल बेगम और अली बख़्श भी थे। जब बोलती फ़िल्मों का दौर आया, तो पारसियों ने अपनी बेज़ुबान फ़िल्मों वाले थियेटर बन्द कर दिये। अम्मी पर तो फ़िल्म करने की पाबन्दी पहले ही नाज़िल थी और अब अली बख़्श भी बेकार हो गये। ख़ुर्शीद के रूप में एक बेटी पहले ही आ चुकी थी। खाना-दाना पहले भी खींचकर ही चलता था कि तभी थियेटर बन्द होने लगे।

उन्हीं दिनों उन्हीं परेशानियों, झगड़े, फाकों के दिनों में उनके वालिदैन ने मीना कुमारी को धरती पर लाने की सोची होगी या सिवा

अल्लाह के कौन जानता है कि सोची भी न हो और मीना अपना मुक़द्दर पत्थरों से पिसवाने को ज़बरदस्ती आना चाह रही हो। सो, बोलती फ़िल्मों के आने के दो बरस में ही मीना भी चली आयी। दिन ठहरा यकुम अगस्त साल उन्नीस सौ बत्तीस या तैंतीस, अम्मी को भी याद नहीं। क्या क़यामत कि अम्मी को ख़ुर्शीद के जन्म का साल याद रहा वह पहली बेटी जो रही। और मीना के बाद आयी मधु के जन्म का साल भी। मगर जो याद नहीं रहा तो मंजु यानी मझली बेटी के जन्म का साल।

चन्दन का पलना

वो रातों-रात 'श्रीकृष्ण' को उठाये हुए
बला की रात में 'वसुदेव' का निकल जाना

हालाँकि वसुदेव, अपने बच्चे को बला से बचाने के लिए रातों-रात निकले थे। मगर यहाँ तो पिता ने बच्ची को ही बला मान लिया था।

अम्मी बताती थी कि अब्बू अली बख़्श को बेटे की आस थी। सो कुछ उधार और कुछ उपाय लगाकर उन्होंने इक़बाल बेगम को डॉक्टर गाद्रे क्लीनिक में भर्ती करवाया था। बेटा आ जाता तो अली बख़्श को ख़र्च हुए पैसे का ग़म भी जाता रहता। मगर बेटा नहीं आया, बेटी आ गयी। लिहाज़ा ख़र्चे का ग़म और बेटी से नफ़रत इस क़दर बढ़ गयी जैसे बेटी नहीं कोई लाइलाज बीमारी जिस्म को आ लगी हो। ग़ुस्से में बिफरे अली बख़्श जैसे-तैसे जच्चा-बच्चा अस्पताल से घर ले आये। फाकों के दिन थे। सो, यूँ ही ख़र्चा बढ़ जाना था। ऊपर से अली बख़्श बेटा चाहते थे। बक़ौल अली बख़्श, ख़ुर्शीद तो पहले ही सिर पर सवार थी। सौतेली बेटी शमा की भी ज़िम्मेदारी थी। सो, अली बख़्श को एक और बेटी देखकर कोई ख़ुशी नहीं हुई, बल्कि ग़म ही हुआ। मज़ीद ग़म हुआ।

एक रोज़ बादल और बिजली में होड़ लगी थी। दोनों एक-दूसरे को मात देने पर तुले हुए थे। अँधेरा भी बस्ती को खा जाने पर आमादा था। अली बख़्श रात हुए भीगे तरे घर आए। इक़बाल बेगम नीम बेहोश सोयी पड़ी थीं। अली बख़्श ने साथ ही लग के सोयी मीना को देखा और कुढ़ गये।

और उस कुढ़न की शिद्दत इतनी ज़्यादा थी कि उन्होंने मन-ही-मन ख़याल किया। वहशियाना ख़याल। नाल से अभी-अभी कटी बच्ची को यतीमख़ाने की सीढ़ियों पर छोड़ आने का ख़याल। सो, उन्होंने उस बच्ची

को उसी भरी बरसात में भीगे बदन ही उसकी लगभग बेहोश माँ के पास से उठा लिया। एक चादर में लपेटा और निकल गये और...

और क्या कहूँ! जिसकी ज़िन्दगी की शुरुआत ही किसी को इतना दुखी कर जाये कि वह उस दुधमुँही बच्ची को यतीमख़ाने की सीढ़ियों पर छोड़ आये। जिसका भाग्य उसके आने मात्र से किसी आदम को दरिन्दा बना दे, उसके सितारों में क्या लिखा होगा, यह जानने के लिए भविष्य देखने की भी ज़रूरत नहीं है।

जिन सरसों के फूलों को अग्नि छू ले
वो सरसों के फूल भला कैसे फूलें

मुझे माफ़ कीजिए, मैंने आदम के बरअक्स दरिन्दे को रखा। नहीं, कोई जानवर, कोई दरिन्दा भी अपने जाये को यतीम नहीं छोड़ता। इसलिए उसे बदनाम करना ठीक नहीं। यह कारनामा भी आदम के सिर ही जाये तो ठीक।

पेटी मास्टर अली बख़्श ने जिन एकाध फ़िल्म में संगीत दिया, उनमें से कन्हैया लाल की फ़िल्म 'आरती' भी थी। उसका एक गीत *नंगे बदन वस्त्र बिन फिरते* तब ठीक-ठाक चर्चित हुआ था। पेटी मास्टर अली बख़्श ने मगर इतनी इन्सानियत दिखायी थी कि बेटी के जिस्म पर एक कपड़ा डाल दिया था। बच्ची नंगे बदन नहीं छोड़ी।

ख़ैर!

बरसात छिटपुट अब भी जारी ही थी और किसी के घर से बाहर होने का अन्देशा भी नहीं था जब अली बख़्श उन्हें यतीमख़ाने की सीढ़ियों पर रख आये। चुपचाप। बे-आहट। बिना यह देखे कि जिस सीढ़ी पर वह उन्हें छोड़ आये हैं, उसी सीढ़ी के कोने में चींटियों की बाँबी आबाद है। जिस बाप को ज़ख़्मी नाल न दिखी हो, जिसे भरी बरसात न दिखी हो, जिसे रोती-बिलखती बच्ची का तर्जनी पकड़ लेना न दिखा हो, उस काठ कलेजे को चींटियाँ कहाँ दिखतीं, बच्ची पाँव पटककर रोती रही। बाप पाँव दबाकर भाग आया।

अम्मी को होश आया होगा। उन्होंने अपने पास नन्ही जान को न पाया होगा। दरिन्दों, जिन्नातों, बच्चा चोरों जैसे कितने ही ख़यालात उनके मन को डरा गये होंगे। घबराहट और ममता के मिले-जुले भाव से

दूध छाती से छलछला आया होगा। वह पागलों की तरह इधर-उधर ढूँढ़ती भागती रही होगी। और फिर अली बख़्श के घर आने पर उनसे सवालात की झड़ी लगा दी होगी। अली बख़्श ने अपनी करनी उन्हें बतायी होगी। सुनकर अम्मी ने वहशत में अली बख़्श की छाती पर मुक्कों की बरसात कर दी होगी। रो-रोकर आसमान सिर पर उठा लिया होगा और अली बख़्श को उस नन्ही-सी जान को दोबारा लेकर आने के लिए मजबूर किया होगा।

यह सब हुआ होगा, ऐसा सोचा जा सकता है। ऐसा सोचा जा सकता है क्योंकि अली बख़्श मीना को यतीमख़ाने की सीढ़ियों से वापस घर ले आये। जाने किस मजबूरी में! जाने किस ग़ैरत के हवाले से यह अहसान किया, मगर किया।

मीना कुमारी उस रोज़ नहीं मरी। मीना उसके बाद रोज़-रोज़ मरी। वह आगे किसी दिन मरने के लिए उस रोज़ ज़िन्दा रही।

बाद के किसी दिन में, अम्मी ने बताया कि जब अब्बा उन्हें सीढ़ियों से उठाने को झुके तो उन्होंने देखा कि मीना के सारे बदन से चींटियाँ चिपकी पड़ी हैं। अम्मी ने यह भी बताया कि अब्बा हुज़ूर बेटा चाहते थे, मगर तू आ गयी।

मीना ने पूछा—अम्मी! लेकिन उनके बाद भी तो बहन ही आयी, मधु आयी। भाई तो नहीं आया! फिर अब्बा हुज़ूर ने यतीमख़ाने की सीढ़ियाँ मेरे लिए ही क्यों चुनीं?

अम्मी के पास नन्ही मीना के इस सवाल का कोई जवाब नहीं था। वह बर्तनों में लगी चिकनाई हटाने में लग गयीं। ऐसे सवाल का जवाब ईश्वर के पास भी नहीं होगा। अम्मी तो फिर भी हव्वा की बेटी थी।

सवाल लाजवाब ही रहे। वक़्त बीतता गया। उनके बदन पर मगर हमेशा ही कुछ रेंगता रहा। जाने वे वही चींटियाँ थीं या कि उनके सवाल!!!

सवालों का क्या है! अन्धा कुआँ हैं। सवाल तो यह भी है कि अम्मी मीना से कम प्यार क्यों करती थीं? सवाल तो यह है कि ख़ुर्शीद आपा स्कूल क्यों नहीं जातीं? सवाल तो यह भी है कि अम्मी दिन-रात खाँसती क्यों रहती हैं? और सवाल तो यह भी है कि रूपतारा स्टूडियो के बाहर बैठा पठान चाचा बच्चों को भीतर क्यों नहीं जाने देता?

मीना की दोस्त शम्मी कहती है, जवानी जब आती है तो टूटकर आती है, मगर मीना पर तो बचपना टूटकर आया था। और ऐसा आया कि शैतान की खालाओं ने पनाह माँगी थी। उनके सताये लोगों को तो याद करने की भी ज़रूरत नहीं पड़ती। ज़ेहन-ओ-दिल पर छपी हुई हैं मीना की सारी बदमाशियाँ।

सच ही कहते हैं कि अलिफ से लेकर दो चश्मी बड़ी हे तक इन्सान गुम ख़याल ही रहा और मीना तो तब भी ख़्वाबों की दुनिया में खोयी रही, जब ख़्वाबों के मायने भी नहीं जानती थी। सो, एक दिन यूँ ही न जाने किन ख़यालों में खोयी एक दुल्हन की डोली में जाकर चुपचाप बैठ गयी। दुल्हन बेचारी बाद में बैठी और रोती-रोती निढाल होकर डोली में ही सो गयी। दुबली-पतली दुबकी मीना उसे राह भर देखती रहीं। उसकी सुर्ख़ी, उसकी चूनर, उसकी लाली, उसके सुरमे बिगाड़ती रही।

दुल्हन की मंज़िल भी ज़्यादा दूर न थी। कहारों ने डोली रखी। तो दुल्हन सहमकर बैठ गयी और उसके साथ सहम गयी मीना भी। परदा उठा तो दुल्हन के साथ एक बच्ची को देखकर औरतें दंग! खुसर-फुसर होने लगी। दुल्हन बेचारी भी क्या जवाब दे! सो, जवाब उसके आँसुओं ने दिया। सख़्ती हुई तो रोने की बारी अब मीना की थी। किसी ने पूछा तो बताया कि उनका नाम महज़बीन है। और वह डोली का मख़मली बिछौना देखकर बैठ गयी थी। एक बुज़ुर्गवार खाला ने ठिठोली की। कहा—लड़की झूठ बोलती है। दुल्हन मायके से ही बच्चा लेकर आयी है। हँस पड़ीं औरतें। सिमट गयी दुल्हन और मीना! उन्हें घर पहुँचा दिया गया। हाय रे बचपन!

ख़ैर, बात तो पठान चाचा की हो रही थी।

मीना का घर रूपतारा स्टूडियो के पास ही था। लिहाज़ा वह स्टूडियो के सामने ही बच्चों के साथ खेलती-डोलती रहती थी। लेकिन वह स्टूडियो हमेशा मीना की आँखों में ख़्वाबीदा रहता। आख़िर क्या है लोहे के उस दरवाज़े के पीछे, जिसमें चमचमाती गाड़ियाँ, लकदक कपड़ों में सजे लोग आते-जाते रहते हैं। बाक़ी बच्चों ने भी यह बात ग़ौर की थी, मगर मीना ने कुछ और भी देखा था। मीना ने देखा था कि जिन गाड़ियों को पठान चाचा सलामी नहीं देकर, गेट पर ही रोककर पूछताछ करता था।

उन्हीं गाड़ियों से निकलते हाथ पठान चाचा के हाथ में कुछ रखते और फिर पठान चाचा एक कड़क सलामी ठोंककर दरवाज़ा खोल देता। आख़िर क्या था उन बन्द मुट्ठियों में जो दरवाज़े खोल देता था? ज़रूर कुछ जादुई। जादुई जैसे?

जादुई जैसे गरमा-गरम पकौड़ी। पकौड़ी से जादुई क्या, जिसके लिए लोग-बाग जमावड़े लगाये रहते हैं। पकौड़ी जो मीना और उसके दोस्तों को भी गाहे-ब-गाहे ही नसीब होती हैं। वो भी तब जब अब्बा ख़ुर्शीद आपा के काम से ख़ुश होकर पैसे देते है। सो, मीना ने भी एक दिन दो पैसे की पकौड़ी उधार ली...और!

और रख दिया पठान चाचा के हाथ पर। पहले तो पठान चाचा कुछ समझे ही नहीं। फिर सबकुछ समझ गये। पूछा—बच्चा, तू अली बख़्श का बेटी है न! शूटिंग देखने आया? अली बख़्श के साथ आना, हम दिखायेगा। मगर फिर भी जब मीना टस-से-मस नहीं हुई तो पठान ने कहा—अचा! चल, हम ही दिखाता है।

और फिर उस दिन पठान चाचा की उँगलियाँ पकड़े-पकड़े मीना ने एक रुपहली दुनिया देखी। तिलिस्मी दुनिया। एन्द्रजालिक दुनिया जहाँ काग़ज़ी ही सही, बड़े-बड़े महल थे। भाड़े के ही सही, मगर चमचमाते महँगे दिखते कपड़े थे। बड़ी-बड़ी रोशनियों के लट्टू थे। सजते-सँवरते लोग थे। बच्चे के हाव-भाव से सब कुछ रंगीन ही था, स्याह-सफ़ेद कुछ नहीं। कुल जमा मीना के सपनीले गुड्डे-गुड़ियों का खेल यहाँ मूर्त रूप ले रहा था। वह यह लाइट, कैमरा, मेकअप की दुनिया देखते हुए खो-सी गयी। वह ख़ुश थी, बहुत ख़ुश। पकौड़ियों के दाम में उसे हयात मिल गयी थी। मगर वह नहीं जानती थी कि जिस हयात का आग़ाज़ आज हुआ है, वह ताउम्र, बल्कि मरने तक उससे चिपका रहेगा। ज़ौक़ ने न जाने कैसे मीना का नसीब देख लिया था, सो उनके आने से सालों पहले ही *पेशीन गोई* करते हुए लिखा—

लायी हयात, आये, क़ज़ा ले चली, चले
अपनी ख़ुशी से आये न अपनी ख़ुशी चले।

बच्चों का खेल

मैं बचपन में खिलौने तोड़ता था
मेरे अंजाम की वो इब्तिदा थी

मीना का मुक़द्दर कच्ची पेंसिल से ही लिखा गया होगा। तभी तो... तभी तो उन दिनों 'प्रकाश पिक्चर्स' एक फ़िल्म का निर्माण कर रहा था। उस फ़िल्म का नाम था 'फ़र्ज़न्द-ए-वतन'। उस फ़िल्म के लिए उन्हें एक बच्ची की आवश्यकता थी जो दो-एक दृश्यों में थोड़ा-सा काम निभा दे।

प्रकाश पिक्चर्स और प्रकाश स्टूडियोज़ के मालिक विजय भट्ट ने अपने एक सहायक को यह आवश्यकता बतायी तो सहायक को याद आया कि अली बख़्श पेटी मास्टर अक्सर उसकी जान खाया करता है—"मेरी बेटी को कुछ काम दे दीजिए। बड़ी आला बच्ची है। बस, एक बार मौक़ा दिला दीजिए।"

सहायक ने विजय भट्ट से कहा—"ठीक है, बिज्जू भाई! छोकरी हाज़िर हो जायेगी। इधर अक्सर एक अली बख़्श अपनी बेटी को लेकर आता है। मैं उसको कल बोलूँगा। आजकल में ही ले आये अपनी बच्ची को।"

नतीजतन जब अगले दिन अली बख़्श स्टूडियो में नज़र आये तो सहायक ने कहा—"अरे मास्टर! किधर है तुम? वो अपनी लड़की को किधर छोड़ आया?"

अली बख़्श ने कहा—"अरे भाई, उसे तो घर ही छोड़ आया। सोचा काम तो है नहीं। और फिर बड़ी बेटी को भी दूसरे स्टूडियो से लाना था, इसलिए सोचा, चलो दो-चार दिन उसे घर ही रहने दूँ।"

"अरे नेक-बख़्त! क़िस्मत चमकी तेरी तो तू आँखें बन्द कर रहा है? कल आ जा सुबह उसको लेकर।" सहायक ने अली बख़्श को झिड़कते

हुए कहा और बात ख़त्म की। अली बख़्श जो इसी आस की तलाश में न जाने कितने दिनों से ठोकरें खा रहे थे, सँभल गये।

और इस प्रकार अगले दिन अली बख़्श की बेटी यानी महज़बीन स्टूडियो में हाज़िर हो गयीं। नन्ही भोली-सी बच्ची फ्रॉक और चप्पल पहने अपने अब्बा की उँगली पकड़े जब स्टूडियो में आयी, तो मीना की आँखों में कौतूहल ही था, डर नहीं। पीली रोशनी वाले बड़े-बड़े लट्टुओं से तो मीना का डर पठान चाचा के साथ घूमते वक़्त ही निकल गया था।



पहली फ़िल्म

स्टूडियो में क़दम रखते ही अली बख़्श ने सहायक को सलाम बजाया। चलते-चलते जवाब में सहायक ने कहा, "तुम इधर में बैठो। सेठ अभी बिजी हैं। फुर्सत होते ही बताता हूँ।"

मीना और अली बक़्श दोनों बैठकर इन्तज़ार करने लगे। आधा घण्टा गुज़र गया। एक घण्टा गुज़र गया; मगर न तो सेठ ने बुलाया और न ही सहायक दिखायी दिया। जैसे-जैसे समय निकल रहा था, अली बख़्श के चेहरे पर परेशानी की स्याही छाती जा रही थी। पिछले पन्द्रह सालों में उन्होंने इतनी उपेक्षाएँ झेली थीं कि किसी भी तरह की देरी उन्हें अस्वीकार का लक्षण ही दिखायी देती थी। वह उठकर चलने को ही थे

कि तभी ऊपर वाले का करम हुआ और विजय भट्ट आते दिखायी दिये। अली बख़्श रोज़-रोज़ के चक्कर लगाते रहने के कारण विजय भट्ट को पहचानते ही थे। उन्होंने फ़ौरन उठकर आदाब किया और मीना से कहा—

"सेठ जी को आदाब करो, बेटे!"

मीना को करना ही क्या था? अदब आदाब तो अम्मी ने बड़ा ख़ूब सिखाया था। मीना ने सामने खड़े उस साफ़ दिल दिखते आदमी को अपनी नन्ही-सी गर्दन झुकाकर आदाब किया। सामने खड़ा वह शख़्स भी विजय भट्ट ही था, जो ट्राम की एक मामूली नौकरी से चलकर आज प्रकाश पिक्चर्स का मालिक बना था। एक धारदार नज़र मीना पर डालते हुए वह चुप हो गये। अली बख़्श के गले की हड्डियाँ ऊपर-नीचे होने लगीं। बाहम एक ख़ामोशी-सी तारी हो गयी।

बहरहाल, इस ख़ामोशी को कभी तो टूटना था। ख़ामोशी टूटी और इस टूटन ने अली बख़्श के घर में खुशियाँ जोड़ दीं। विजय भट्ट साहब ने कहा, "ठीक है। तुम अपनी लड़की को तैयार करके सेट पर ले आओ।"

अली बख़्श के चेहरे पर जो ख़ुशी उस एक लम्हे को मीना ने देखी वह फिर ताउम्र न देख पायी। अली बख़्श के चेहरे पर ख़ुशी नहीं उम्मीद झाँक रही थी। आने वाले बेहतर कल की उम्मीद।

और फिर तो मीना को बा-नसीहत मेकअप-मैन के पास ले जाया गया। वहाँ उनके बाल सँवारे गये। कैसी तो फूलों के छापे वाली फ्रॉक पहनायी गयी। सुर्ख़ी-काजल और पाउडर लगाया गया। फिर किसी मुजस्सिम-सा सजा कर उसे एक ऐसे स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया गया, जहाँ पतली लकड़ियों और किसिम-किसिम के रंगीन कपड़ों को यूँ खड़ा किया गया था कि वह एक दीवार-सी जान पड़ती थी। ऐसी दीवारें देखकर उन्हें बक्से वाले चाचा याद आ जाते थे। बक्से वाले चाचा जिन्हें बाद में मीना ने ख़ुद ही नौशाद के नाम से जाना। रहे होंगे वह दुनिया के लिए मौसीक़ी के परचम। उनके लिए वो बक्से वाले चाचा ही थे।

ख़ैर, उसी दीवार से सटकर कुछ लकड़ी के ही फ़र्नीचर रखे गये थे जिसके चारों ओर बड़े-बड़े बिजली के लट्टुओं की रोशनी फैली हुई थी। उन्हें ठीक वहीं ले जाकर खड़ा कर दिया गया। उन्हें यह तो इल्म था कि वह यहाँ क्यों लायी गयी हैं, मगर उन्हें क्या करना है, इसकी बाबत उन्हें कुछ पता नहीं था। बस, उन्हें दो बातों की ख़ुशी थी।

अव्वल यह कि उनके बाबूजी अली बख़्श उनसे ख़ुश हैं और दुवुम यह कि आज उन्हें गुड़िया जैसी सजाया गया है।

रोशनी जो चारों ओर फैली थी, आँखों को लग रही थी। कैसी अजीब चमक थी! ऐसी तेज़ रोशनी कि आँखें चौंधिया रही थीं। ऊपर से गर्मी इतनी कि चेहरे पर जलन मचने लगी थी। पर वह मासूम क्या करती! अब्बा ने कहा था—''बेटा, जैसा सेठ बोले वैसा करना। फिर तुमको अच्छी-अच्छी फ्रॉक मिलेगी। खिलौने मिलेंगे। चॉकलेट मिलेगी।'' नन्ही महज़बीन के लिए यह लालच इतना था कि सबकुछ सहने को तैयार थी। मगर बचपन की मासूमियत यह कहाँ जानती है कि इस लालच के बदले उसके नाम, उसकी पहचान का ही सौदा किया जा रहा है। वह यह कहाँ जानती थी कि अब उसे कोई महज़बीन कहकर ताउम्र नहीं पुकारेगा। उसकी पहचान इस चॉकलेट, फ्रॉक, खिलौने की आड़ में छीन ली जायेगी।

गोया, दृश्य यह था कि एक वैज्ञानिक जो कि ग़ायब हो गया था, अपने घर आता है और अपने बच्चे यानी कि मीना के साथ खेलने लगता है। उन्हें ज़मीन से उठाकर सोफ़े पर बैठा देता है। यह एक समस्या थी कि उस दृश्य को कैसे फ़िल्माया जाये, जिसमें एक ग़ायब आदमी अपने बच्चे को उठाकर सोफ़े पर बिठाता है। उस समय फ़िल्मोद्योग तकनीकी तौर पर इतना उन्नत भी नहीं था।

तो रास्ता क्या निकले! रास्ता वह निकले जो एक चार साल की बच्ची के लिए जहन्नुम से ज़्यादा तकलीफ़देह हो। जनाब! उनके शरीर को दो पतले तारों से बाँधकर ऊपर से कपड़े पहना दिये गये। एक साहब को काफ़ी ऊँचाई पर बैठाकर तार के दोनों सिरे उसे थमा दिये गये। तार इतना पतला था कि दिखाई नहीं देता था। अब वह शॉट लेने के लिए तैयार थे।

मगर जैसे ही कैमरा घूमना शुरू हुआ, ऊपर बैठे आदमी ने तार के दोनों सिरे ऊपर खींचे और मीना एक झटके के साथ हवा में लटक गयीं। अल्लाह! यूँ लगा जैसे रीढ़ की हड्डी के दो टुकड़े हो गये हैं। दर्द नाक़ाबिले बर्दाश्त था, मगर दूसरी कोई सूरत भी नहीं थी। रोयी इस डर से भी नहीं कि कहीं अली बख़्श नाराज़ न हो जायें और तब तक दर्द को उस चार साल की बेबस मीना ने ज़ब्त किया, जब तक उसे सोफ़े पर बैठाकर

शॉट ओके न हो गया। लोगों ने न जाने किस बात पर तालियाँ बजायीं, मीना जान नहीं पायी। मीना ने तो बस अली बख़्श के हाथ देखे। विजय भट्ट साहब के हाथों के नीचे फैले हाथ जिस पर भट्ट साहब ने नक़द पच्चीस रुपये रख दिये। मीना ने यह भी जाना कि देने वाले का हाथ सदा ऊपर और लेने वाले का हाथ सदा नीचे रहता है। इसलिए बाद के लिए उन्होंने ताहम हाथ ऊपर ही रखा।

सो, जब अली बख़्श के हाथों में विजय भट्ट साहब ने पच्चीस रुपये रखे तो साथ में एक शर्त भी हाथों-हाथ रख दी। शर्त यह कि 'महज़बीन' नाम फ़िल्मों में नहीं चलेगा। नाम बदलना होगा।

अली बख़्श बम्बई की इस कारीगरी से वाक़िफ़ थे। वे देख रहे थे, उनकी बीवी प्रभावती से कामिनी हुई थी। नजमा ख़ान को माहताब नाम क़ुबूल करना पड़ा था। तज़ोर सुलताना को वीना के नाम से फ़िल्मों में काम मिला था। यह नियम था, मजबूरी थी या जो कुछ था, अली बख़्श शर्त रखने की स्थिति में नहीं थे। इसलिए उन्होंने कोई मुख़ालफ़त नहीं की। यूँ भी हाथ में रखा पैसा फ़ाक़ाकश आदमी की ज़ुबान बन्द कर देता है। अली बख़्श कुछ न कह सके। थोड़ी देर की ख़ामोशी के बाद जब कुछ बोले तो बस यह कि फिर क्या नाम रखेंगे?"

विजय भट्ट साहब ने ही कहा, 'चाइल्ड आर्टिस्ट के नाम के साथ बेबी लगाते हैं, इसलिए बेबी तो लगायेंगे ही। हाँ ये तीन नाम हैं। बेबी प्रभा, बेबी कमला और बेबी मीना में से कोई एक चुन लो।'

वह पहली और आख़िरी दफ़ा था, जब अली बख़्श ने मीना से कोई राय माँगी थी नाम की बाबत। मीना ने फ़ौरन मीना चुन लिया—बेबी मीना। सो इस तरह महज़बीन का अंजाम हुआ और बेबी मीना का आग़ाज़।

विजय भट्ट साहब ने महज़बीन को बेबी मीना बना दिया। तब जब कुछ साल गुज़र जाने के बाद मीना कुमारी ने उनसे पूछा था कि महज़बीन में क्या ख़राबी थी तो हँसते हुए विजय भट्ट ने कहा था, "तब दीनी और पौराणिक फ़िल्मों का वक़्त था। हिन्दुस्तानी पौराणिक फ़िल्मों में ऐसे ही नाम ठीक रहते हैं। इसलिए तुम्हारा नाम बदलना ज़रूरी था, और फिर नाम चुना भी तो तुमने ही था।"

ये जो महफ़िल में मेरे नाम से मौजूद हूँ मैं
मैं नहीं हूँ, मेरा धोखा है, कोई देख न ले

बचपन फिर भी बचपन है। लाख मसरूफ़ात हों, बचपन ख़ुराफ़ात का वक़्त निकाल ही लेता है।

नौशाद साहब उन दिनों मीना के पड़ोस में ही रहते थे और उनके पास इतना भी वक़्त नहीं होता जितना आती और जाती साँसों के बीच होता है। दिन-रात किसी-न-किसी फ़िल्म की धुन बनाते रहते। मीना को शाम को ही थोड़ा खेलने का वक़्त मिलता और उसी वक़्त उनके घर के आगे गाड़ियों से आने-जाने वालों का ताँता लगा रहता। दूसरे, उनके हारमोनियम की आवाज़ से बच्चों के खेल में ख़लल पड़ता, जिससे मीना आगबबूला हो जाती और फिर एक दिन सहेलियों ने उनके ग़ुस्से पर घी डाल दिया।

एक दिन नौशाद साहब नयी धुनें बनाने में मगन थे। मीना ने उनकी खिड़की से देखा, वे पूरी तरह धुन बनाने में खोये हुए थे। नौशाद साहब के करीने से पीछे की ओर किये हुए बाल बार-बार हारमोनियम पर फिसलते हाथों के साथ आगे आ जाते और वह फिर उन्हें पीछे फेंक कर धुन बनाने में मशगूल हो जाते। मीना ने उनकी बन्द आँखें देखीं। उन्हें ख़ुराफ़ात सूझ गयी। मीना नीचे आयी, छोटे-छोटे कंकर उठाये और दोबारा खिड़की पर जा चढ़ी। मीना ने कंकर सँभालकर निशाना लगाया और नौशाद साहब की ओर फेंक दिया। ख़ुशक़िस्मती से निशाना दुरुस्त था। कंकर नौशाद साहब की खोपड़ी पर सीधा लगा और बच्चों की मौज हो गयी थी। हारमोनियम उनके हाथ से छूट गया और वह अपना सिर सहला-सहलाकर यहाँ-वहाँ, ऊपर-नीचे, आगे-पीछे ताकने लगे। सबको बहुत मज़ा आया। सब छिप कर उनकी परेशानी में मौज लेते रहे। वह थोड़ी देर हैरत-ज़दा होकर बैठे रहे और फिर अपने काम में मशग़ूल हो गये।

मगर अब तो यह मीना का बाज़दफा का काम हो गया। जब भी मन होता मीना उनकी खिड़की पर चढ़ जाती और कंकर मार आती। मौक़ा देखकर शरारत शुरू कर देती। कहावत है, काग़ज़ की नाव ज़्यादा देर नहीं बहती। यही हुआ। इन्हीं दिनों में एक दिन नौशाद साहब ने मीना को निशाना लगाते देख लिया। मगर कुछ नहीं कहा और फिर अपनी धुन बनाने में तल्लीन हो गये।

नौशाद साहब ने कहा, तो कुछ नहीं बस कहर ही बरपा दिया। अगले ही दिन मीना का उलाहना लिए घर चले आये। फिर उसके बाद अब्बू अली बख़्श से उनकी जो पिटाई हुई कि बेबी मीना के चौदहों तबक रोशन हो गये।



बचपन में ही बूढ़ी मीना

बचपन का कुछ वक़्त तंगदस्ती का, तरसी-तरसी तमन्नाओं का ज़रूर था, मगर वही वक़्त था जिसका ज़िक्र खुशी के नाम पर किया जा सके। एक क़ाबिल-ए-ज़िक्र बात यह भी कि 'धड़ाम' की आवाज़ मीना के बचपन की सहेली थी। घर में, खेल में, दौड़ते हुए या यूँ ही बैठे हुए भी जब कहीं धड़ाम की आवाज़ आये, घर वाले समझ जाते, मीना दूर नहीं गयी। आसपास ही गिरी पड़ी है कहीं।

मीना बचपन से ही कमज़ोर और बीमार रहीं। ज़रा-ज़रा में उनका बदन टूट जाता, ज़रा-ज़रा में दिल। अली बख़्श झाड़-फूँक वाले इलाज का ही बन्दोबस्त कर सकते थे, सो उन्होंने वही कराया। झाड़-फूँक वाला मीना की बीमारी और कमज़ोरी का ज़िम्मा किसी ऊपरी बला पर ही डाल सकता था, लिहाज़ा उसने भी वही किया। सो, बात यह आयी कि बच्ची मीना पर किसी ऊपरी बला का साया है और वह सीधी दीवार पर चढ़ सकती है।

यह बात घर के और आसपास के बच्चों पर मीना का रोब मनवाने के लिए काफ़ी थी और इसका फ़ायदा भी मीना ने ख़ूब उठाया। उन्हें जब भी अपनी कोई बात मनवानी होती तब वह डण्डा उठाकर, आँखें मीचकर सुर्ख़ कर लेतीं और काग़ज़ों के कतरनों की औघड़ माला गले में डालकर

बहनों को ख़ूब डराया करतीं और बहनें ख़ुर्शीद और मधु मारे ख़ौफ़ के उसकी जायज़-नाजायज़ बातें मान भी लेतीं।



चुलबुली मीना

ख़ुर्शीद यानी मीना की 'आपड़ी'। मीना, ख़ुर्शीद आपा को आपड़ी ही कहतीं। मीना की आपड़ी आठ-नौ साल की, घर का काम-काज करती, चूल्हा फूँकती, रोटियाँ पकाती और छोटी बहन मीना उनके सिर पर सवार पलँग की मसहरी के डण्डे पर हाथों से लटकी झूला झूलती रहती। ख़ुर्शीद ने मना भी किया कि देख मुन्ना! सँभाल के! आ गिरेगी! पर मीना ने न सुनना था, न ही उसने सुना। फिर वही चिर-परिचित 'धड़ाम' आवाज़ हुई। ख़ुर्शीद ने फ़ौरन चूल्हे को धक्का दिया कि मीना इस पर न आ गिरे...

धड़ाम की आवाज़ यूँ ही नहीं हुई थी। मीना पलँग समेत ज़मीन पर आ गिरी थी। दौड़कर अम्मी-अब्बू आये। मीना को जितनी चोट न लगी, उससे बड़े उसने बुक्के फाड़े। इतनी ज़ोर से रोयी कि लोग उसकी बदमाशियाँ भूलकर पुचकारने लगे। जब पुचकारने लगे तो सब कुछ ठीक हो गया। और जब सब ठीक हो गया, तब अम्मी को याद आया...''ख़ुर्शीद कहाँ है? अरे, कहाँ ग़ायब हो गयी?''

पलँग सीधा किया गया, गद्दे हटाये गये, तब ख़ुर्शीद बेचारी उनके नीचे दबी निकली।

बहनों का खेल भी वही आम-सी बच्चियों का खेल!

''चल, मुन्ना! मसाला-मसाला खेलेंगे।'' ख़ुर्शीद ने ही कहा था।

मीना बड़ी-सी मूसली लेकर आ गयी और कहा—''आपड़ी! तुमने हल्दी की गाँठ तो रखी ही नहीं, मसाला ख़ाक पीसूँ?''

न जाने कौन-से ख़याल में गुम ख़ुर्शीद अँगूठा सामने कर देती-ले, ये है हल्दी की गाँठ! पीस ले। मीना सोच में पड़ती। और सोच उसकी यहाँ तक पहुँचती कि आपड़ी ने दिया है तो हल्दी ही होगी। फिर वही चिर-परिचित आवाज़ 'धड़ाम!'

मीना ने मूसली से ख़ुर्शीद का अँगूठा कूट दिया! ले! कूट दी हल्दी।

अँगूठे से ख़ून बह रहा था और सबसे छोटी बहन मधु झाड़ी के पत्ते तोड़-तोड़कर जीभ से गीले कर-कर के ख़ुर्शीद के अँगूठे पर चिपकाती रही कि दवा लगा दी है, ठीक हो जायेगा और मीना ग़ायब! मीना कहाँ है? अभी ख़ुर्शीद सोच पाती कि अब्बू अली बख़्श की उबलती आवाज़ ने डरा ही दिया।

अब्बू ने पूछा, ''क्यों ख़ुर्शीद? तूने मीना को मारा? ग़लत बात! तू बड़ी है! छोटी बहनों का ख़याल रखाकर!''

ख़ुर्शीद हैरान! देखा तो मीना चीख़-चीख़ कर रो रही है और फिर अब्बू के हाथ पकड़कर बाहर जाती हुई मुड़ी और शरारती मुस्कान बिख़ेरते हुए ख़ुर्शीद को अँगूठा दिखाकर ग़ायब।

क्या-क्या कहें। क्या-क्या भूलें! मीना को मास्टर जी अँग्रेज़ी पढ़ाने आते और बेंत छोड़ जाते। उनके जाते ही वही डण्डा लिए मीना मास्टर जी बन जाती। और ख़ुर्शीद उनकी विद्यार्थी। डण्डा लेकर मीना उनके पीछे पड़ जाती! याद कर आपड़ी वरना मार-मारकर भुर्ता कर दूँगी। हाँ! याद कर 'एम ए टी मैट!' मैट माने चटाई।''

आह रे बचपन!

मझली दीदी

ख़ुश-गुमाँ हर आसरा बे-आसरा साबित हुआ
ज़िन्दगी तुझसे तअल्लुक़ खोखला साबित हुआ

बचपन के इन्हीं वाक़ियों के बीच खेलते-कूदते, पढ़ते, न पढ़ते फ़िल्म 'फ़र्ज़न्द-ए-वतन' चल निकली और जब चल निकली तो निर्देशक विजय भट्ट साहब के पास कोई कारण नहीं था उन्हें बदलने का। विजय भट्ट ने अपनी अगली फ़िल्म आरम्भ की तो उसमें फिर मास्टर अली बख़्श की बेटी को लिया। इस फ़िल्म का नाम था 'एक ही भूल' और उसके बाद तो फ़िल्मों के जाल में वह ऐसी उलझी कि फिर चाहकर भी न छोड़ सकी। एक वही तो सहारा था परिवार का।

आमदनी में कुछ इज़ाफ़ा हुआ। हालात में थोड़ी-बहुत बेहतरी आयी। ग़ुर्बत के दिन पीछे छूटे।



मीना की बड़ी बहन आपा ख़ुर्शीद जूनियर

रहने और खाने में भी कुछ बेहतरी आयी। अम्मी बच्चों को पढ़ाना चाहती थीं, मगर उनकी भी मजबूरी थी। अली बख़्श के आगे उनकी बिसात न थी। सो, न ख़ुर्शीद आपा पढ़ सकीं और न ही मीना और न ही बाद में पैदा हुई छोटी बहन मधु ही। हाँ! घर में नाना के यहाँ से कुछ उर्दू रिसाले मीना की अम्मी के नाम गाहे-ब-गाहे आ जाते थे। नाना ने बच्चों की किताबों का उर्दू अनुवाद भी किया था। वह भी आये। उन्हें ही देखते पलटते मीना का शौक़ परवान चढ़ा। अम्मी ने एक उर्दू का उस्ताद भी रख छोड़ा, मगर ज़िन्दगी की दौड़ में तालीम पीछे रह गयी। फिर भी, उन्हें पढ़ने का शौक़ रहा। जब भी उन्हें वक़्त मिलता, वह किसी किताब के साथ बैठ जाती या कभी किसी कैफ़ी, कभी किसी शकील को उस्ताद बना लेती। बाद के दिनों में देश की इस ट्रेजडी क्वीन को इस बात से बहुत शिकायत रही कि घर चलाने की आड़ में बच्चों से काम करवाकर उनका बचपन, उनकी शिक्षा छीन ली जाती है। उन्होंने एक दफ़ा कहा भी था–

"जब मैं उन औरतों और मर्दों को देखती हूँ जो अपने बच्चों को फ़नकारों की हैसियत से स्टूडियो में लाते हैं तो मैं उबाल खा जाती हूँ। जब वो उन्हें नाचने को कहते हैं, गाने या फ़िल्म के डायलॉग बोलने को कहते हैं तो मेरा ज़िस्म तपिश से काँप जाता है। मुझे ये हरकत, अनजान लोगों के सामने, नचवाने-गवाने की हरकत कतई पसन्द नहीं। मैं अक्सर उन लोगों से पूछ बैठती हूँ कि चन्द सिक्कों के लिए इन मासूमों का ये इस्तेमाल क्यों?"

क़िस्सा भटकने लगा है। बिमल मित्र कहते थे कि मीना बातों में भटका देती है, मगर अब हम नहीं भटकेंगे। अब हम उस मोड़ से शुरू करेंगे, जहाँ मीना दस साल की हो चुकी है और बेकार है। बेकार इसलिए कि पढ़ाई उसे करने नहीं दी गयी और यह उम्र, दस साल की उम्र चाइल्ड आर्टिस्ट के लिए इन्तिहाई मायूसकुन उम्र है।

जिस्मानी बल्ज की वजह से दस साल के बच्चे परदे पर बच्चे नहीं दिखते और चेहरे की बोली उन्हें बालिग किरदार से दूर रखती है। ये वो ज़माना होता है जब चाइल्ड आर्टिस्ट को कम-अज़-कम कुछ सालों के लिए फ़िल्मों से दूर होना पड़ता है। सो, मीना भी फ़िल्मी परदे से दूर हो गयी, मगर उन घरों में जहाँ बच्चों को ही घर चलाना होता है, एक के बाद दूसरी बच्ची तैयार कर दी जाती है।

ऐसे वक़्त में दो बातें हुईं। एक अच्छी और एक बुरी। अच्छी बात ये है कि माधुरी, छोटी बहन, ने अब बेबी मधु बनकर फ़िल्मों में अदाकारी का आग़ाज़ किया। वाडिया मूवीटोन ने उसे बतौर बाल कलाकार रख लिया। नतीजतन, मीना ने अगले दो-तीन साल घर में या स्टूडियो में अपनी छोटी बहन के साथ सरपरस्त की हैसियत से गुज़ारे। उधर, बड़ी बहन ख़ुर्शीद आपा ने भी अदाकारा बनकर ख़ुर्शीद जूनियर की हैसियत से बतौर हीरोइन अदाकारी का आग़ाज़ कर लिया था। बेकार बस मीना ही थीं।

दो बेटियाँ ठीक-ठाक काम करने लगीं थीं। चुनाँचे अब अली बख़्श ने बान्द्रा में एक छोटा-सा बना-बनाया बँगला ख़रीदा और उसे अपनी बीवी के नाम पर 'इक़बाल मेंशन' नाम दिया। दादर के सीलन भरे फ़्लैट छोड़कर, अब पूरा ख़ानदान 'इक़बाल मेंशन' में चला आया। ख़ुशियाँ एक दफ़ा फिर इक़बाल बेगम की ज़िन्दगी में लौटीं।

मगर जब लिखने वाले ने नसीब कच्ची पेंसिल से ही लिख दिये हों तो ख़ुशी रास भी नहीं आती। मीना की अम्मी इस ख़ुशी से लुत्फ़-अन्दोज़ नहीं हो सकीं। उनके फेफड़ों में पानी भर आया था। दिन भर खाँसती निढाल रहती थीं। ऊपर से अली बख़्श का बेटे का इरादा अब भी नहीं टला था। सो, ऐसी स्थिति में भी एक बेटे की माँ बनने की ख़्वाहिश में वे हामिला हो गयीं और बिस्तर पकड़ बैठीं, मगर एक कमख़याल यह भी है कि इक़बाल बेगम को बिस्तर पकड़ा देने वाली ख़बर न तो फेफड़ों में पानी का जमा होना था और न ही उनका हामिला होना। यह कोई तीसरी ही ख़बर थी।

तीसरी ख़बर! अफ़वाहों की शक्ल में इक़बाल बेगम तक आयी। अफ़वाह यह कि बड़ी बेटी ख़ुर्शीद किसी नये अदाकार अल्ताफ़ के साथ इश्क़ में है। 'पायल' और 'रेत महल' जैसी फ़िल्मों में साथ-साथ काम करते हुए ख़ुर्शीद और अल्ताफ़ इतने क़रीब तो आ ही गये थे कि देखने वालों की आँखों में गड़ने लगे। देखने और जलने वालों में से किसी ने यह बात इक़बाल बेगम तक पहुँचा दी। लड़कियों के लिए ग़लीज़ फ़िल्मी माहौल, जवान होती लड़की का इश्क़ और घर चलाती लड़की का इश्क़ में होना, अम्मी की जान को अज़ाब हो गया।

और जब अफ़वाह थी तो उसे पुख़्ता भी करना था। पुख़्ता जवाब ख़ुर्शीद की ओर से झुँझलाहट की शक्ल में आया। इक़बाल बेगम ने जब अल्ताफ़ की बाबत सवाल किया तो उन्हें खटका-सा जवाब आया।

अम्मी को अपनी दुलारी बेटी से इसकी उम्मीद नहीं थी। वह सिर पकड़कर बैठ गयीं और इसके बाद उन्होंने वही किया जो एक माँ कर सकती है, करती ही है। उन्होंने यह बात अली बख़्श को बता दी।

अली बख़्श को जब पता चला तो उन्होंने ख़ुर्शीद को अल्ताफ़ से दूर रखने की पूरी कोशिश की। कलेजा आहनी किया। अल्ताफ़ के पीछे गुंडे लगवाये और बेटी ख़ुर्शीद पर भी तमाम तरह की सख़्ती नाज़िल की, मगर जब प्यार को आस दिखती है तो उसे पंख लग जाते है। ख़ुर्शीद को अल्ताफ़ में पंख दिखे, आज़ादी दिखी। सो, एक दिन ख़ुर्शीद जो स्टूडियो गयी तो घर नहीं लौटी। स्टूडियो से यह ख़बर ही लौटी कि उसने तमाम ताल्लुक़ात तोड़ दिये हैं और अल्ताफ़ के साथ निकाह कर रुख़सत हो गयी है।

पता यह भी चला कि अम्मी ने खाट पकड़ ली है। पता यह भी चला कि कुछ रोज़ बाद अम्मी ने एक लड़की को जन्म दिया है; मुर्दा लड़की को।

ये मसले बीमार अम्मी के लिए जानलेवा साबित हुए। मीना ने, माधुरी ने और अली बख़्श ने बाज़ औक़ात ख़िदमत की। पैसा पानी की तरह बहाया, उन्हें अपनी औक़ात से ज़्यादा बड़े नर्सिंग होम में दाख़िल कराया गया, लेकिन एक बार जब वो नर्सिंग होम गयीं तो वो दोबारा नहीं लौट सकीं। जून 1949 में उनका इन्तिक़ाल हुआ।

दफ़अतन दुनिया कैसे बदल जाती है, यह देखना हो तो बेबी मीना को देखना चाहिए। देखना चाहिए कि कल तक उछलती-कूदती महज़बीन पर ज़िम्मेदारियों का बोझ किस क़दर बढ़ गया, क्योंकि अब मीना अचानक ही अपने घर की सबसे बड़ी ख़ातून थीं। ख़ातून, जिसे मीना कुमारी होना था।

'बच्चों का खेल' प्रदर्शित हो गयी। बेबी मीना अपने अगले चोले में दाख़िल हुई। वह चोला जिसे मीना ने छोड़ना भी चाहा तो वह उनके साथ ताउम्र लगा रहा। मौत ने ही इस नाम को उनके वजूद से अलग किया। नाम यानी मीना कुमारी। फ़िल्म का नाम यानी बच्चों का खेल।' कायनात का मालिक मीना के साथ ठिठोली करता ही रहा था। यह भी एक ठिठोली ही रही। जिस फ़िल्म ने मीना से मीना का बचपन छीना, उन्हें उम्र से पहले ही जवानी के किरदार दिये, उस फ़िल्म का नाम भी

क्या रहा 'बच्चों का खेल'! कहा था मीना ने कि अब जो सोचूँ तो बस दम भर पाती हूँ—अल्लाह!

गोया, मीना बचपन की गलियों से निकल आयी थीं और अब उनके सामने और साथ ही साथ अली बख़्श के सामने एक मसला पेश आया। यह ज़रूरी नहीं है कि जो बचपन में फ़िल्मों में काम कर रहा हो, उसे भी मजीद काम मिल जाये। बम्बई याद करने में देर भले ही फ़रमाती हो, भूलने में ज़रा भी वक़्त नहीं लेती। सो, बचपन की बेबी मीना गुज़रे वक़्त की बात थी, वह काले फ़ीतों में खो चुकी थी। अब जो थी, उसके नाम से 'बेबी' ग़ायब था। मीना कुमारी को काम चाहिए था और उसके लिए जो भी जद्द-ओ-जहद करनी थी, उसके लिए मीना तैयार थी। इसलिए जो भी किरदार मिले, मीना ने क़ुबूल कर लिया और फिर जब क़ुबूल कर लिया तो क्या बेटी, क्या बहन, क्या महबूबा और क्या माँ? घर चलाने के लिए मीना अनेक फ़िल्मों में नमूदार हुई। 'बिछड़े बालम', 'दुनिया एक सराय', 'पिया घर आ जा' ऐसी ही फ़िल्में थीं, जिन्हें मीना ने 'बच्चों के खेल' के बाद क़ुबूल किया। उनमें 'पिया घर आ जा' ऐसी ही एक फ़िल्म है, जो अलग ही वजह से याद की जाती है।

यह पहली फ़िल्म थी, जिसमें पहली बार मीना ने माँ का किरदार अदा किया। सोलह साल की उम्र में मीना ने वह किरदार निभा लिया जो ताउम्र वह असल ज़िन्दगी में न निभा सकी।

ख़ैर वह तजरुबा भी मुनफ़रिद ही था। डायरेक्टर प्रह्लाद दत्त साहब ने ताक़ीद की थी कि बच्चे को ज़्यादा हिलाना-डुलाना नहीं, वरना अगर वह रोने-चिल्लाने लगा तो शॉट ख़राब हो सकता है। मगर मीना की परेशानी दूसरी थी। छह-सात महीने के बच्चे को गोद में उठाते वक़्त उन्हें हमेशा ख़ौफ़ महसूस होता था कि उनकी वजह से बच्चे की गर्दन को तकलीफ़ पहुँच सकती है। इसी वजह से शॉट के दौरान बच्चे से ज़्यादा मीना सहमी हुई थी, मगर ऐसा हुआ नहीं या तो मीना ने अच्छा शॉट दे दिया या फिर दत्त मोशाय को मीना की परेशानी पर तरस आ गया। बहरहाल, शॉट ओके हुआ और उसके बाद जो हुआ, उसी वजह से वह बात यादगार रही। वह बच्ची अपनी माँ की गोद में जाने पर भी रोने लगती और उनके पास आकर चुप हो जाती।

बच्चे को गोद में लेकर उसकी पीठ पर हाथ फेरना, कैसा लादुनियावी अहसास है, यह मीना उस छोटी उम्र में ही जान गयी थी। उस वक़्त मीना जब उसे अपनी गोद में लेती तो वो आराम से सोती थी।

इसी फ़िल्म में आग का एक मंज़र आया था जिसमें मीना बच्चे को अपनी गोद में पकड़कर आग के गोले से बाहर आयी थी। यह मंज़र बहुत मुश्किल के बाद लिया जा सका था। बाद में वह बच्ची मीना से इतनी घुलमिल गयी कि शॉट के बाद भी वह मीना की गोद में रहती थी। वह अपनी माँ के पास जाते ही रो पड़ती थी।

मगर इस सामाजिक फ़िल्म को कोई ख़ास ख़ुशगवार क़ामयाबी हासिल नहीं हुई। दूसरी तरफ़ देश आज़ाद हो चुका था और बहुल जनसंख्या को ध्यान में रखकर धार्मिक फ़िल्मों का दौर भी आ चला था। ऐसा नहीं था कि बँटवारे से पहले धार्मिक फ़िल्में नहीं बनती थीं, मगर अब व्यावसायिक रूप को ध्यान में रखकर बनने लगीं। बसन्त पिक्चर्स के होमी वाडिया ऐसी फ़िल्में बनाने में अग्रणी थे। वह सन 1921 में आयी मूक फ़िल्म 'सुरेखा हरण' को वीर घटोत्कच के रूप में पुनः बनाने को इच्छुक थे, जिसके लिए उन्हें नायिका सुरेखा की तलाश थी। फ़िल्म का बजट इतना नहीं था कि नामी नायिकाओं को लिया जा सके, और तलाश भी छुई-मुई-सी ऐसी नायिका की थी, जिसका हरण वाजिब लगे। मीना कुमारी इन सारे लिहाज़ से उपयुक्त चयन हो सकती थी। लिहाज़ा जब मीना कुमारी का नाम होमी वाडिया के सामने आया तो उन्होंने हामी सशर्त भरी। शर्त यह कि मीना को बसन्त पिक्चर्स के साथ क़रार करना होगा, जिसके मुताबिक़ उन्होंने अफ़सानवी और धार्मिक फ़िल्मों में काम करना था। जब कोई विकल्प नहीं हो तो इनकार की सूरत नहीं होती। सो, मीना ने भी प्रस्ताव क़ुबूल कर लिया। मगर रुकिये, एक सुधार कर लूँ। सुधार ज़रूरी है। कहना यह चाहिए कि मीना के अब्बू अली बख़्श ने पेशकश क़ुबूल कर ली।

'वीर घटोत्कच' मीना की पहली धार्मिक फ़िल्म थी। फ़िल्म बहुत बड़ी क़ामयाब साबित हुई और इस क़ामयाबी के नतीजे मीना धार्मिक फ़िल्मों की देवी बन गयी। 'श्री गणेश महिमा', 'हनुमान पाताल विजय' और 'लक्ष्मी नारायण' जैसी फ़िल्मों में मज़हबी किरदार निभाये और इस फ़िल्मी दुनिया ने उन्हें एक और नाम से नवाज़ा—वह 'फ़िल्मों की छोटी देवी' कहलाने लगीं।

मगर मीना यह समझती थीं कि ऐसी फ़िल्में क़ामयाबी और घर चलाने तक तो ठीक हैं, लेकिन उनके मुस्तक़बिल के लिए ठीक नहीं थीं। मीना ने महसूस किया कि वह ऐसे ही किरदारों में बँधती जा रही हैं और उन्हें शिद्दत से किसी ऐसी फ़िल्म की ज़रूरत है जो उन्हें टाइप कास्ट होने से निज़ात दिलाये। उन्हें नयी हिदायत दे। नया नज़रिया दे।

और फिर उन्हें वो फ़िल्म मिल गयी जिसने उन्हें यह सब कुछ दिया जिसकी उन्हें दरकार थी। इस दफ़ा भी वह फ़िल्म उनके पहले निर्देशक विजय भट्ट साहब ने ही दी। फ़िल्म का नाम था 'बैजू बावरा'। 'बैजू बावरा' एक संगीत प्रधान फ़िल्म थी, इसलिए संगीत निर्देशक नौशाद साहब अदाकारों से पहले फाइनल हुए थे। धुन बनाने के क्रम में ही उन्होंने निर्देशक विजय भट्ट को उनकी चाइल्ड आर्टिस्ट बेबी मीना के बारे में ध्यान दिलाया जो कि अब नायिका की भूमिकाएँ भी कर रही थी। विजय भट्ट ने फिर मीना को साइन करने में देर नहीं की। हालाँकि विजय भट्ट मीना को और उनके पिता अली बख़्श को बख़ूबी जानते थे। इसलिए उन्होंने नौशाद साहब के कहने पर ऐसा किया हो, इस बात पर नाइत्तेफ़ाक़ी हो सकती है।

जो भी हो, प्रकाश पिक्चर्स के बैनर तले बन रही इस फ़िल्म के नायक भारत भूषण थे। फ़िल्म बड़ी थी, लिहाज़ा जब प्रोड्यूसर विजय भट्ट ने अली बख़्श के सामने मीना की अदाकारी की तज़वीज़ पेश की तो उन्होंने उसे ख़ुशी-ख़ुशी क़ुबूल कर लिया। बताया ही है कि तब मीना की बाबत सारे फ़ैसले अली बख़्श ही लेते थे। उन्हें भी यह फ़िल्म क़ुबूल ही थी।

क़ुबूल करने के वजूहात थे। एक ये कि वह प्रकाश पिक्चर्स की शुक्रगुज़ार थीं, जिन्होंने उन्हें मुन्ना से बेबी मीना बनाया था। पाँव, ज़मीन और पैसे दिये थे। अब वही प्रकाश पिक्चर्स उन्हें बेबी मीना से मीना कुमारी बना रहा था। शोहरत और मौक़ा दे रहा था। अदाकारी के जो अब तक मौक़े उन्हें मिले थे, वे अफ़सानवी और धार्मिक फ़िल्मों के ही थे। दूसरी ये कि पहली दफ़ा कोई पेशेवर फ़िल्म उन्हें मिल रही थी जो उन्हें धार्मिक फ़िल्मों से बाहर निकाल सकती। अगर 'बैजू बावरा' क़ामयाब होगी, तो यह मीना की फ़िल्मी ज़िन्दगी का एक नया पन्ना खोलेगी, यही सोचकर मीना ने फ़िल्म क़ुबूल की थी।

लिहाज़ा मीना ने 'बैजू बावरा' में काम शुरू किया। 'बैजू बावरा' की प्रेयसी गौरी के किरदार में मीना एकदम मुफ़ीद थी। उन्हें इसलिए किसी अतिरिक्त तैयारी की ज़रूरत नहीं थी। मीना और भारत भूषण दोनों स्क्रीन टेस्ट में बैजू और गौरी ही लगे। लिहाज़ा शूट तेज़ी से होने लगे। इसी फ़िल्म की आउटडोर शूटिंग के दौरान एक वाक़िआ पेश आया जो नाक़ाबिल-ए-फ़रामोश है। वजह, उस रोज़ मीना मौत की चौखट चूमकर लौटी थी।

यहाँ यह बता देना सही होगा कि मौत और मीना अव्वलीन से ही लुका-छुपी खेल रहे थे। वह आती तो मीना छुप जाती। वह फिर आती, घेरती, बुलाती, पंजे फैलाती। वह फिर बच निकलती। चाहे वह जानलेवा ठण्ड के रूप में यतीमख़ाने की सीढ़ियों पर आयी हो या फिर लिफ़्ट में फँस जाने पर उन्होंने उसे देखा हो, चाहे 'बैजू बावरा' की शूट के वक़्त की यह घटना। मौत का फ़रिश्ता उनके आसपास हर जगह मौजूद था, किसी अय्यार-सा।

बात 'बैजू बावरा' के आउटडोर शूट की...

'तू गंगा की मौज मैं जमुना की धारा' गाने की शूटिंग के वक़्त ये वाक़िआ पेश आया। गाना फ़िल्माने के लिए मुम्बई से 40 मील के फ़ासले पर एक मुक़ाम तय किया गया—आप्टे नगर। इस जगह की ख़ासियत यह थी कि यहाँ सुरमयी कुदरती नज़ारों के बीच एक नदी बहती हुई गुज़रती है।

इस मंज़र में मीना को एक कश्ती पर सवार होकर गाने की शूटिंग करनी थी। भट्ट साहब ने सीन अच्छी तरह समझा दिया था। मीना गाँव की गोरी सरीखी एक ड्रेस पहनकर नाव में बैठ गयी। पतवार सँभाला और शूटिंग शुरू हुई।

बताने लायक एक बात यह भी है कि मीना के पिता अली बख़्श को नजूमियों/ज्योतिषों पर बड़ा भरोसा था। ऐसे ही एक नजूमी ने उन्हें बता दिया था कि मीना को पानी से ख़तरा है। इसलिए ऐसी किसी भी जगह पर यदि शूटिंग की माँग होती तो अली बख़्श अपनी बेटी के साथ ही होते और फिर यह तो आउटडोर शूटिंग थी। एक बेटी का जला बाप दूसरी बेटी को फूँकता ही रहता है। सो, अली बख़्श भी इस शूट पर आये थे और मुँह दूसरी ओर किये बैठे थे।

निर्देशक ने सीन शुरू करने का इशारा किया। कश्ती आगे बढ़ती रही। किनारे पर खड़े भारत भूषण गाते रहे। कश्ती में सवार मीना डरती-लजाती रहीं और फिर सीन चन्द मिनटों में पूरा हो गया। लोग बताते हैं कि निर्देशक विजय भट्ट ने बुलन्द आवाज़ में उन्हें रोकने के लिए लाउडस्पीकर के ज़रिये 'कट' की आवाज़ दी, लेकिन लोग यह भी बताते हैं कि पतवार के शोर के बीच मीना 'कट' की वह आवाज़ सुन ही नहीं पायीं और अगर सुना भी हो तो उनके मन के पाजीपन ने कुछ भी सुनने से इनकार कर दिया। ज़िन्दगी में पहली बार मीना कश्तीबाज़ी से लुत्फ़-अन्दोज़ हुई थी। वह इतनी जल्दी कैसे छोड़ देती और फिर इस शॉट के बाद दोपहर के खाने के बाद भी छुट्टी थी। लिहाज़ा, मीना पतवार चलाती रही।

काफ़ी दूर आने के बाद नदी में ढलवान उतरना शुरू हो गयी, जिसकी वजह से पानी की रवानगी बहुत तेज़ हो गयी। साहिल पर चार-पाँच मकानात थे। उन्हें देखकर वहाँ के लोग चीख़ उठे। मीना ने सोचा, उन्हें पहचान कर ये लोग शोर मचा रहे हैं। सो, अपने ही गुमान में मीना आगे बढ़ती गयीं। मकानात और लोग दिखने भी बन्द हो गये। ढलवान आहिस्ता-आहिस्ता तेज़ होती जा रही थी और अब तो साहिल पर के छोटे-बड़े सब्ज़ दरख़्त भी दिखने बन्द हो गये थे। उन्हें पहली दफ़ा डर का अहसास तब हुआ, जब कश्ती उनके पतवार के बिना भी चलती दिखी। मीना कुछ सोच पातीं, उससे पहले ही उन्हें आबशार/झरने जैसी आवाज़ सुनाई दी। उन्हें अचानक ही याद आया कि शूट से पहले कोई कह रहा था कि यह दरिया आगे जाकर एक झरना बन जाता है। एक गहरा, सीधे नीचे की ओर गिरता झरना। उन्हें अब अहसास हुआ कि वे इसके पास पहुँच गयी हैं। मीना का गला ख़ुश्क! मौत का फ़रिश्ता आगोश में लेने को तैयार।

झरने की आवाज़ नज़दीक आने लगी। उन्होंने कश्ती को रोकने की बाज़ औक़ात कोशिश की, लेकिन यह ढलवान पर रुके भी तो कैसे! आसपास देखा, न आदम, न आदमजात। न मदद, न मददगार। मीना ने घबराहट में चीख़ना शुरू कर दिया, लेकिन अपनी आवाज़ और दरिया के शोर के अलावा कुछ नहीं सुन सकीं। और फिर उन्होंने वह किया जो वह बचपन से इसी मुश्किलात में करती आयी थी। मीना ने घबराहट में आँखें बन्द कर लीं।

मगर फिर एक झटका लगा और कश्ती दौड़ना बन्द हो गयी। मीना ने आँखें खोलीं, तो देखा कि कश्ती वहाँ पड़े कुछ बड़े पत्थरों की आड़ में फँस जाने के बाद रुक गयी थी। मीना ने देखा तो पाया कि बीस क़दमों पर आबशार ज़ोर की आवाज़ के साथ गिर रहा था। उस पत्थर ने उन्हें बचा लिया। पत्थरों में जज़्बात होते हैं, वह उसी दिन जान गयी थीं। शायद इसीलिए इन्सानों से ज़्यादा पत्थर ही इकट्ठे किये मीना ने। पत्थर और पत्थर जैसे इन्सान।

'5 अक्तूबर, 1952 को 'बैजू बावरा' रिलीज़ हुई। फ़िल्म देखने वाले हर शख़्स ने उनके काम की तारीफ़ की। जहाँ-जहाँ 'बैजू बावरा' प्रदर्शित हुई, उसने क़ामयाबी के झण्डे गाड़े। फ़िल्म के गाने शहर-दर-शहर इतने मकबूल हुए कि मेले और कॉलोनियों में बजने लगे। पहली दफ़ा मीना का मुतालबा उस लाइलाज बीमारी से हुआ, जिसे सफलता कहते हैं। चाहने वाले चींटियों की तरह क़तारों में दिखने लगे। ख़तों का आना इस क़दर बरसा कि डाक विभाग को एक आदमी केवल उनके ख़त पहुँचाने के लिए रखना पड़ा। "मीना कुमारी ने हैरत-अंगेज़ काम किया है।" "जनाब, कारकुन इसे कहते हैं।" "जनाब, ऐसा रवां ड्रामा, ऐसी फ़िल्म हमने पहले कभी नहीं देखी।" ऐसी बातें सिनेमा हाल के बाहर अक्सर सुनी जाने लगी थीं। मीना कुमारी बुरक़े में छिपकर फ़िल्म देख आतीं और फिर लोगों की तारीफ़ पर खिल-खिल उठतीं।

क़िस्सा-कोताह, मीना की पहचान बतौर अदाकारा, 'बैजू बावरा' से ही बन गयी। प्रोड्यूसर उन्हें अपनी फ़िल्मों में लेने के लिए बेचैन होने लगे। अब भी मीना की जानिब से फ़िल्में अली बख़्श ही साइन किया करते थे। मीना ने देखते-न-देखते ही कई फ़िल्में साइन कीं। इन फ़िल्मों में से एक फ़िल्म 'अनारकली' थी, दूसरी थी विश्वभारती की 'मीनार' और तीसरी बॉम्बे टॉकीज़ की 'मन्दिर'। चौथी बी.एम. व्यास की 'नूरजहाँ' थी। ये सारी फ़िल्में बड़ी थीं। अब उनका शुमार बड़ी हीरोइनों में, बुलन्द सितारा हीरोइनों में होने लगा था।

मगर जीवन जोगी की माला नहीं है, जिसमें मनके क़तार में आते-जाते हैं। जीवन जोगी का चोला है नामुनासिब, बेमेल और बेतरतीब, इसलिए कहानी सुनाने के क्रम में कुछ चीज़ें तरतीब से नहीं आ पातीं, क्योंकि जीवन में एक ही साथ कई घटनाएँ चलती रहती हैं।

इस क्रम में एक बात, ज़रूरी बात जो बतानी रह गयी। 'बैजू बावरा' फ़िल्म से पहले, कुछ पहले ही, कमाल अमरोही और मीना कुमारी मिल चुके थे। यह जानकारी ज़रूरी है, इसलिए यह जानना भी ज़रूरी है कि मीना और कमाल पहली दफ़ा कब मिले थे?

पहली दफ़ा!

पहली दफ़ा!

दिल अपना और प्रीत पराई

मिर्ज़ा हादी रुसवा लिखते हैं—

लुत्फ़ है कौन सी कहानी में
आप बीती कहूँ या जग बीती

बिल्कुल इस तरह कमाल और मीना की पहली मुलाक़ात के भी दो पक्ष हैं—एक आप बीती, एक जग बीती। आइए, दोनों ही जानते हैं। पहले जगबीती। सो बक़ौल कमाल अमरोही, उन्होंने मीना कुमारी को पहली दफ़ा तब देखा था जब मीना चाइल्ड आर्टिस्ट ही थी और अली बख़्श किसी फ़िल्म के सिलसिले में उन्हें अपनी दादर वाली खोली में ले आये थे।

"यही है मेरी बेटी महज़बीन!" अब्बा मास्टर अली बख़्श ने मीना का परिचय कराते हुए कहा था। एक पूरा छिला हुआ केला मीना की मुठ्ठी में दबा था। सने हुए चेहरे और मैली-सी सलवार-क़मीज़ में मीना चुलबुली लगी थी कमाल अमरोही को।

जब तक कमाल ग़ौर से उसे देखते, वह भाग गयी और परदे के पीछे छिप गयी।

बक़ौल कमाल, उन दिनों वे सुहराब मोदी के मिनर्वा मूवीटोन में एक मुसन्निफ़ (लेखक) थे और उन्हें एक छोटी-सी लड़की की ज़रूरत थी। मोदी ने उन्हें अली बख़्श की बेटी को देखने के लिए दादर भेजा था। बक़ौल कमाल ही उन्हें मीना पसन्द तो ख़ूब आयी थी, लेकिन किसी वजह से उन्हें वहाँ काम नहीं मिल सका। तब भी कमाल की नज़रों में मीना मुस्तक़बिल की बहुत बड़ी अदाकारा थी।

हँसते हुए कमाल ने बाद के दिनों में बताया था कि जब भी उन्हें दादर से गुज़रना पड़ता, तो वह बस की उस साइड ही बैठते जिधर मीना का घर होता था।

तो जी यह तो हुआ कमाल का पक्ष और मीना का पक्ष!

कमाल को लेकर मीना की तलाश तब से शुरू होती है, जब कमाल तो कमाल अमरोही थे, मगर मीना अब भी बेबी मीना ही थी और गंगोली साहब की अक़ीदतमन्द थी। गंगोली साहब यानी अशोक कुमार। मीना कुमारी अशोक कुमार की बहुत बड़ी फ़ैन थीं। उस कमउमरी में अशोक कुमार उनके इस दर्जा पसन्दीदा कलाकार थे कि उनकी फ़िल्में एक या दो नहीं बल्कि कई बार देखी थीं। यहाँ तक कि झूठ बोलने और घर से पैसे चुराकर फ़िल्म देखते हुए पकड़ी भी गयी थीं।

मीना ने अशोक कुमार को पहली बार देखा था जब मीना आठ साल की थीं। इन्हीं दिनों बॉबे टॉकीज़ में एक फ़िल्म बनायी जा रही थी जिसका नाम 'नामालूम' था। फ़िल्म के नाम से उन्हें करना भी क्या था। बस यह था कि फ़िल्म में छोटी बहन माधुरी भी काम कर रही थी? एक दिन मधु ने उन्हें बताया कि आज उसकी शूटिंग अशोक कुमार के साथ है। इतना ही सुनना था कि मीना ने भी अपनी बहन के साथ जाने का फ़ैसला किया। जब अली बख़्श ने सुना, तो उन्होंने वजाहत की, ''तुम वहाँ जाकर क्या करोगी, रहने दो!''

लेकिन मीना ने कहाँ मानना था? वाजिह तौर पर अपने अब्बू को बताया कि वे अपने प्यारे स्टार को देखना चाहती हैं। अली बख़्श पहले तो नहीं माने, मगर जब इसरार कई-कई बार किया गया तो उन्होंने मधु के साथ-साथ उन्हें भी ले लिया।

बॉम्बे टॉकीज़ पहुँचने पर अली बख़्श ने उन्हें न सिर्फ़ अशोक कुमार से मिलवाया बल्कि यह कहकर मिलवाया कि यह आपकी बहुत बड़ी प्रशंसक है।

अशोक कुमार उन्हें बिल्कुल उसी जोश-ओ-ख़रोश से मिले जिससे वह एक छोटी बच्ची से मिल सकते थे। फिर मीना के गाल खींचते हुए बोले—''मेरे साथ काम करोगी?''

यक़ीन मानिए, तब के छुटपने में भी मीना जवाब बहुत ही बेबाकी से दिया करती थीं, मगर इस सवाल के लिए मीना तैयार नहीं थीं, लिहाज़ा, मीना ये सवाल सुनते ही हिचकिचाहट का शिकार हो गयीं और फिर आहिस्ता से बोलीं ''हाँ।''

"ठीक है, तुम बड़ी हो जाओ, फिर हम तुम्हारे साथ काम करेंगे।" अशोक ने छोटी बच्ची की हिम्मत बरक़रार रखने के लिए कह दिया। मगर उन्होंने ख़्वाब में भी ये नहीं सोचा था कि एक लतीफ़े में कुछ कहा हुआ एक दिन हक़ीक़त में बदल जायेगा और एक दिन वो इस नन्ही गुड़िया के साथ, उनके साथ हीरो बनकर एक दफ़ा नहीं बल्कि कई-कई दफ़ा आयेंगे।

ख़ैर, वक़्त का बहाव बहता रहा। बेबी मीना, मीना कुमारी बन गयीं। मीना ने बहुत सारे नायकों के साथ अदाकारी की, लेकिन अपने महबूब हीरो के साथ काम करने का मौक़ा अब तक नहीं मिला था।

मीना उस दिन का इन्तज़ार करने लगीं जिस दिन उन्हें अशोक कुमार के साथ काम करने का मौक़ा मिलेगा और फिर एक दिन वो लम्हा भी आ गया।

उनके पास बॉबे टॉकीज़ की तरफ़ से एक फ़िल्म शुरू करने की दावत आयी। अली बख़्श ही यह ख़बर लेकर आये। बताया कि इसमें दो हीरो होंगे और हीरोइन का किरदार बॉम्बे टॉकीज़ वाले मीना को देना चाहते हैं।

"हीरो कौन होगा?" मीना ने पूछा।

"अशोक कुमार"—जवाब मिला।

अशोक कुमार! तो अशोक कुमार के साथ अदाकारी करने का मौक़ा मिलेगा! जोश में मीना ने न ही कहानी सुनी, न ही दूसरे हीरो का नाम पूछा और न ही अपना किरदार देखा। हामी भर दी।

यह फ़िल्म 'तमाशा' थी।

शूटिंग का आग़ाज़ हुआ। फ़िल्म में एक हीरो अशोक कुमार तो थे मगर मीना की बदकिस्मती यह थी कि उनका एक भी सीन अशोक कुमार के साथ नहीं था। सो, अशोक कुमार ने किसी दिन उनके साथ शूट नहीं किया। होता ये कि जब मीना शूटिंग करतीं, अशोक आराम करते और जब अशोक का काम होता तो मीना की छुट्टी हो जाती। यहाँ तक कि एक दिन शूटिंग मुकम्मल हो गयी, लेकिन मीना और अशोक एक बार भी सेट पर साथ नहीं आये। कितनी सितम-ज़रीफ़ी थी कि पहली ही फ़िल्म में अशोक कुमार के साथ मीना का कोई सीधा सीन ही नहीं था।

मगर बात तो कमाल अमरोही की हो रही थी। बात तो मीना के कमाल से मिलने की हो रही थी। सो यह मुद्दा क्यों आया?

यह मुद्दा इसलिए आया कि ऊपर वाला अपनी कहानी में कमाल से मीना का मिलना यूँ ही लिख रहा था जिसे फ़िल्म 'तमाशा' के बज़रिया उसे पूरा करना था।

दिनों पहले मीना ने एक रिसाले में कमाल अमरोही की तस्वीर देखी थी। तस्वीर देखते ही वो हैरतज़दा हो गयीं। मीना वहशत से काँप उठी थीं। देखते ही उन्हें लगा था कि यही उनके ख़्वाबों का आदमी है। उन्होंने आँखें मींचीं थीं। इस पर यक़ीन नहीं करना चाहती थीं। अपने ज़ेहन-ओ-दिल को झकझोरने की पूरी कोशिश की थी, लेकिन ऐसा नहीं हो सका। मीना ने महसूस किया कि अपने दिल में सपनों के शहज़ादे की जो एक मुबहम तस्वीर उन्होंने बनायी थी, अब वह इन्सान की शक्ल में मौजूद है। मीना ने ख़ुद को राज़ी करने की कोशिश की, लेकिन जब भी मीना यह करने की कोशिश करतीं, उनके भीतर से ही यह आवाज़ आती-मैं वही हूँ, जिसकी ख़ोज में तुम घुली जाती हो, तहलील हुई जाती हो उन्हें एक आवाज़ सुनाई देती कि ''मुझसे मत डरो! मुझे पहचानो।'' आख़िर में, मीना ने इस आवाज़ को बतौर हक़ीक़त क़ुबूल कर लिया।

लेकिन यह एक पुराना ख़्वाब था। मीना कुमारी के इर्द-गिर्द का हर इन्सान कमाल अमरोही को जानता था। 'महल' फ़िल्म की बेपनाह क़ामयाबी के बाद वे एक मशहूर नाम बन गये थे। इंडस्ट्री में उनका नाम फ़ख्र से लिया जाता था। वह इन्सान, जिसने पहली दफ़ा ख़ुद को मुंशी कहलवाने से इनकार कर दिया था। ग़ौरतलब यह है कि पहले फ़िल्म लेखक मुंशी कहे जाते थे। लड़का सैयद था। अमरोहा का सैयद। जिसकी नाक उसके नाम से भी एक क़दम आगे चलती थी और फिर नाम तो इतना था कि दबी ज़बान में लोग यह भी कहते कि ''उर्दू कमाल अमरोही की लौंडी है।''

चुनाँचे मीना को छोड़कर मीना को जानने वाला हर इन्सान कमाल से मिल चुका था। यह सब सुनकर भी कमाल से मिलने के मीना के ख़्वाहिशात बढ़ते चले गये, लेकिन मीना ख़ामोश रहीं। उन्हें उन लोगों से डर लगता था जो उन्हें उनकी तरफ़ बढ़ा रहे थे। अगर उन्हें जवाब में मुहब्बत नहीं मिली तो? इस ख़याल ने उन्हें बेचैन कर दिया था।

और वह अपने ख़यालात को ज़ब्त कर गयी। मगर फिर वही—इत्तिफ़ाक़,। हज़रत उमर की प्रसिद्ध उक्ति है—जो तुम्हारा है, तुम्हारे लिए है वह चाहे दो पहाड़ों के बीच क्यों न हो, तुम्हें मिलकर रहेगा। कमाल मिल ही गये।

एक दिन बॉम्बे टॉकीज़ में 'तमाशा' की शूटिंग के दौरान, अशोक कुमार ने कमाल अमरोही से तआरुफ़ कराया। मीना ने सोचा, वह लम्हा आ गया है, जिसके लिए वह अपने आपको इतने अरसे से तैयार कर रही थी। हमेशा की तरह अपने प्यार को छिपाते हुए मीना ने उसका इस्तिक़बाल किया। उन्होंने मीना पर एक छिटकती निगाह डाली और आगे बढ़ गये। उस वक़्त मीना को, मीना ने वही सोचा, जो सोचा जा सकता था—घमण्डी इन्सान। मुतकब्बिर आदमी। उनके दिल को थोड़ी-सी तकलीफ़ तो पहुँची, मगर फिर दिल ने ही दिल को इस हाल पर मना कर छोड़ा कि अदीब ऐसे ही होते हैं। ख़ुद में ही खोये हुए। शायद उस पल को वे कुछ और सोच रहे हों और मुझ पर तवज्जो ही न दी हो। इसके नतीजे में दिल में मुहब्बत पहले की तरह ही रही, लेकिन मीना ने उनसे दोबारा मिलने का ख़याल तर्क कर दिया।

उधर, कमाल जिस फ़िल्म 'महबूबा' पर काम कर रहे थे, वह बन्द हो गयी। सो, बतौर अगली फ़िल्म कमाल ने अनारकली लिखी और ज़ाहिराना ही 'महल' की अपनी नायिका मधुबाला को पहली तरजीह दी। जब अमरोही ने मधुबाला से 'अनारकली' की बाबत पूछा तो वो फ़ौरन ही राज़ी हो गयीं। फिर उड़ती ख़बरें यूँ भी आयीं कि अचानक एक दिन मधुबाला 'अनारकली' से बाहर हो गयी। दरअसल सूरत-ए-हाल इस तरह की हो चुकी थी कि 'अनारकली' से उनकी रुख़सती लाज़िमी हो गयी।

मीना की क़िस्मत रही होगी या अल्लाह की राह वरना अनारकली के रूप में कमाल का उन्हें चुना जाना किसी चमत्कार से कम तो नहीं ही था। सो, पता नहीं कमाल के ज़ेहन में क्या आया और उन्होंने बाकर मियाँ को फ़ौरन मीना के घर भेज दिया। अली बख़्श तो पहले से ही कमाल अमरोही के काम से प्रभावित थे। उन्होंने बिना देरी के 'अनारकली' के लिए 'हाँ' कह दी। यहाँ यह बता देना ठीक रहेगा कि अब तक अली बख़्श ही उनके लिए किरदार मुन्तखब करते, काम की क़ीमत तय करते और शूटिंग की तारीख़ वग़ैरह देते थे और फिर जैसे ही जिस पल अली बख़्श ने उन्हें यह ख़बर दी, मीना हैरत-ज़दा रह गयीं। पहले ही मीना

कमाल की शख़्सियत, उसकी ज़ेहानत से मुतास्सिर थी। अब उसे उसी अमरोही के साथ काम करना था। काम शुरू भी हुआ। कहानी सुनाने के बहाने से ही, मुलाक़ातों का सिलसिला चल निकला।

उन दिनों स्टूडियो कोई भी रहा हो, अगर मीना वहाँ शूट कर रही होती और कमाल आसपास होते तो वह उनसे मिलने आ ही जाते। 'अनारकली' से शुरू हुई बातें किताबों, रिसालों और तारीख़ से होती हुई एक-दूसरे पर आ जातीं। उन्हें अगर पहले से पता होता कि कमाल आने वाले हैं तो मीना खाने का डिब्बा घर से लेकर ही आतीं। इसी बहाने उनके साथ थोड़ा और वक़्त गुज़ारने का मौक़ा मिल जाता।

चुनाँचे 'अनारकली' के सिलसिले में कमाल की और मीना की मुलाक़ातें बढ़ गयीं और सिलसिला ख़तो-किताबत तक आ ही पहुँचा। अमरोही के साथ में आने के कुछ दिन बाद मीना कुमारी ने अमरोही को एक ख़त लिखा—

'मेरी कायनात के मालिक, मैं नहीं जानती कि तुम कहाँ से आये हो, मगर तुमने मेरी ज़िन्दगी को मग्लूब कर दिया है। मेरी जात एक ख़ौफ़ज़दा बुजदिल लड़की की जात है। मैं कभी-कभी हैरत में सोचती थी कि वो कौन होगा, वो कौन है, पता नहीं वो कहाँ है, नहीं जानती कि वो कैसा है, नहीं जानती कि उसे क्या कहना चाहिए...मगर जब तुम्हें पहली बार देखा तो यक़ीन हो गया कि शायद वो इस आदमी की तरह है। हाँ! शायद वो आप ही की तरह है।'

इन्हीं दिनों काम के भागमभाग से ऊबकर मीना ने सुकून के कुछ पल बिताने की सोची। मुम्बई का मशीनी माहौल एक वक़्त के बाद बदलाव चाहता ही है। हर बड़े शहर का अपना सुकून कोई छोटा पहाड़ी शहर होता है। जैसे दिल्ली का सुकून शहर मसूरी है, कलकत्ता का सुकून शहर दार्जिलिंग है वैसे ही मुम्बई का सुकून शहर महाबलेश्वर है। मुम्बई से कोई 200 मील की दूरी पर स्थित इस शहर में मुम्बई के शोर-ओ-गुल से ऊबे लोग पनाह पाते हैं।

मीना बज़रिया कार मुम्बई से महाबलेश्वर पहुँचीं। दिनभर होटल में आराम किया। सुबह-ओ-शाम वहाँ कदीम ख़ूबसूरती को नज़र किया। इस सुकून और शान्ति में ऐसी खोयीं कि मुम्बई जाने का ख़याल ही बिसर गया।

मगर तभी बिमल दा (बिमल रॉय) का पैग़ाम मुम्बई से आया। ''फ़िल्म की शूटिंग शुरू हो रही है, फ़ौरन से पेश्तर लौटो।'' न चाहते हुए भी फ़ौरी तौर पर वापस आने का फ़ैसला किया और अपनी गाड़ी में मुम्बई के लिए रवाना हो गयीं। महाबलेश्वर से पूना पहुँचीं। वहाँ, थोड़े-से सुस्त ड्राइवर ने कार को आगे बढ़ाया। पूना से रुख़सत होने का कुछ ही अरसा बीता था कि यूँ लगा, जैसे कोई ज़लज़ला आ गया हो।

फिर से धड़ाम की आवाज़! कार तेज़ आवाज़ के साथ टकरा गयी अगरचे मीना कार में पीछे बैठी थीं, लेकिन उन्हें शदीद चोट लगी। जिस्म में जगह-जगह कार के टूटकर बिखरे शीशे दाख़िल हो गये। ज़ख़्मों से ख़ून बह रहा था। हाथ का अँगूठा बुरी तरह ज़ख़्मी था। इसी चिन्ताजनक हालत में उन्हें पूना लाया गया, जहाँ ससून अस्पताल में दाख़िल कराया गया। कौन लाया! किसने उठाया, उन्हें इसकी कोई ख़बर याद करने पर भी याद नहीं आती।

मगर जब उनके ज़ख़्मी होने की ख़बर मुम्बई पहुँची, तब फ़िल्मी हलकों में हलचल मच गयी। वे लोग जिनकी फ़िल्मों में काम करने का क़रार उनके साथ था, वे हिदायतकार, जिनके साथ मीना काम कर रही थीं, उनका पूना पहुँचना शुरू हो गया।

उनके घर वालों से ज़्यादा चिन्ता फ़िल्म वालों को थी, यह जानने की कि उनके ज़ख़्म कितने गम्भीर हैं? डॉक्टरों से पुछने पर, मालूम हुआ कि उनके ज़ख़्म गहरे हैं। बायें हाथ पर गहरी चोट है। ऑपरेशन भी मुमकिन है और अगर ऑपरेशन से कोई फ़ायदा नहीं हुआ, तो बायें हाथ को काटना भी पड़ सकता है।

काटना पड़ सकता है! जब मीना ने सुना तो उनकी आँखों के सामने तारीकी छा गयी। कुछ भी साफ़ दिखता न था, मगर जब यही ख़बर बम्बई के फ़िल्म वालों को मिली तो उनके सामने फैला अन्धकार छँट गया। उनके सामने घायल अदाकारा के लिए फ़िल्म रोकने की असमंजस थी, मगर कटे हाथ की हीरोइन को रखने का कोई धर्मखाता उन्होंने खोल नहीं रखा था। लिहाज़ा, यह ख़बर आम होते ही उनके हाथ की सारी फ़िल्में एक-एक कर निकलने लगीं। हाथ, जिसे भी अब साथ नहीं रहना था। उफ़ अल्लाह! अगर हाथ कटा हुआ है? तो इस सोच ने ही उन्हें नाउम्मीद कर दिया। उन्हें ख़ासा यक़ीन हो चला कि सुनहरी भविष्य के जो ख़्वाब मीना जी रही थी, वो सच होने से पहले ही धूल हो चुके हैं।

यहाँ उनके ऑपरेशन की तैयारियाँ शुरू हो गयीं। वहाँ फ़िल्म वालों ने अपने करार तोड़ने शुरू कर दिये। बॉम्बे टॉकीज़ ने उन्हें हटाया और श्यामा को ले लिया। विश्व भारती फ़िल्म्स ने 'मीनार' से हटा दिया था और ये किरदार बीना राय को दिया गया था। फ़िल्मिस्तान ने ऐलान किया कि उन्होंने 'अनारकली' की तैयारी के मंसूबों को टाल दिया है। बी.एम. व्यास ने भी 'नूरजहाँ' का नज़रिया छोड़कर दूसरी फ़िल्म शुरू कर दी।

"किसी शाम मीना बहुत उदास थी और अपने अँधेरे भविष्य के बारे में सोचने में गुम थीं, जब मीना ने अचानक आँखें खोलीं और देखा कि कमाल उनके क़रीब है। कमाल अमरोही उन्हें देखने आये थे और उनकी सेहत से मुताल्लिक मीना से अपनी रोबीली आवाज़ में पूछ रहे थे।

मीना ने बड़ी मुश्किल से उनकी आवाज़ सुनी। मीना ग़ाफ़िल थीं, ख़ुद की ही जन्नत में खोयी हुई। उन्हें इस बात की कतई फ़िक्र नहीं थी कि क्या पूछा गया और क्या कहा गया था? उनके लिए ये काफ़ी था कि आख़िरकार चमत्कार हो चुके हैं। वे आ चुके हैं, जिसकी एक नज़र की भूख उन पर भारी थी। मायूसी के उन लम्हों में कमाल उन्हें देखने आये हैं। कमाल अमरोही! मीना ने क्या पा लिया था? मीना ही जानती थी। वह आये। चले गये। जब चले गये तो मीना के हवास लौटे। मीना ने तस्दीक़ करनी चाही। "कौन आया था!" छोटी बहन माधुरी ने चुहल की, "लो जी! वे आये, गये।" इन्हें अब सूझ आयी है। ख़ुर्शीद आपा हँस दीं, मगर मीना की हँसी नदारद। कुरेद-कुरेद कर पूछती रही। क्या कहा? क्या पूछा? मेरा नाम लिया? जब बातें कीं? तब मुझे देखते हुए कीं? या दीवार देखते रहे? ख़ुद आये थे या प्रोड्यूसर साहब ने भेजा था? जैसी न जाने कितनी ऐसी बातें पूछ गयीं, जिनकी जानकारी दोनों बहनों को किसी तौर भी न होनी थी। हँसते हुए ही मधु ने कहा, "कल फिर आयेंगे, होश में रहना और ख़ुद ही पूछ लेना।" कल! कल तक का लम्बा इन्तज़ार आँखों में ही रहा। अगले दिन जब कमाल उन्हें देखने आये थे, तब मीना ने पूछा—"आप भी मुझे अपनी फ़िल्म से निकाल देंगे?" इस पर मुस्कुराते हुए कमाल ने कहा था, "चाहे कुछ भी हो जाये, मेरी 'अनारकली' तुम्हीं करोगी।"

आह! इतना एतबार मुझ नामुराद पर! जिसे कुछ पलों में अपना एक हाथ खो देना है। इतना भरोसा मुझ नाचीज़ पर कि मीना ही अनारकली

बनेगी। मीना को अपनी किस्मत पर, अपने ही कानों पर भरोसा ना हुआ उन्होंने किसी तरह कहा।

"यूँ नहीं! क़रारनामा कीजिए!" शोख आवाज़ में ही मीना ने कहा और कहते हुए अपनी कलाई आगे कर दी।

मुस्कुराये कमाल और अचकन से क़लम निकाल ली। मीना की कलाई अपने हाथ में ली और लिखा—

ىلكرانا (अनारकली)

कमाल ने लिखने के बाद अपनी कलाई की पकड़ ढीली की ही थी कि मीना ने और शोखी से कहा—

"यह तो अधूरा-अधूरा करार हुआ।"

कमाल, मीना के कहे का मतलब समझ गये, दोबारा क़लम निकाली और आगे जोड़ दिया—

'मेरी अनारकली'

और क्या ही चाहिए उस पिया बावरी को? बस, यही पढ़ा और मारे शर्म के आँखों के ऊपर दुपट्टे का परदा कर लिया। सिर्फ़ उस पल के लिए ही नहीं, तमाम उम्र उसकी आँखों पर परदा पड़ा ही रहा।

फिर आयेंगे न! "इतना ही तो पूछ पायी थी मीना।"

"हाँ!" कमाल ने भी मुख़्तसर-सी हामी भरी थी।

और वायदे के मुताबिक़, कमाल साहिब अगले हफ़्ते भी आये और तक़रीबन चार माह तक हर हफ़्ते-दो-हफ़्ते में मीना से मिलने के लिए पूना आते रहे। बाबूजी कभी-कभी होते, कभी न होते। मधु ही उनके क़रीब रहती। वो भी कमाल साहिब से काफ़ी घुल-मिल गयी थी। जैसे ही वो आते, मीना की शिकायत का गट्ठा खोल कर बैठ जाती, कहती—

"वाह-जी-वाह! 'देखो! अब तक जूस का गिलास यूँ ही पड़ा है। न मेरी सुनती है, न अब्बू की। और-तो-और डॉक्टर साहब की भी नहीं सुनती। बस एक आपके नाम की आस लगाये रहती है। कहती है, जब उन्हें ही फ़िक्र नहीं तो क्या करना इन फलों का ख़ून पी कर!"

आप मेरा भरोसा करें। इनमें से कोई बात मीना ने नहीं कही थी और अगर कही भी हो तो बा-होश तो नहीं कही होगी। हाँ, मगर केवल इस एक काम के लिए मधु की ताज़िन्दगी अहसानमन्द रहीं। उसने मीना की ओर से वो कह दिया जो मीना कमाल के आगे कभी नहीं कह पाती।

मुस्कुराये थे कमाल। मीना की जानिब बढ़े। कहा कुछ भी नहीं। उफ़्फ़ अल्लाह। दिल की धड़कनें तेज़-तेज़! उन्हें हौले से तकिये के सहारे नीम सीधा किया और उनके होंठों के आगे जूस का गिलास रख दिया। बेज़ुबान गुड़िया और मीना में उस वक़्त फ़र्क़ बस धड़कते दिल का ही था। मीना ने बिना कुछ कहे जूस पी लिया। उसके बाद भी छोटी बहन मधु ने कुछ रूमानी तंज़ कसे हों, तो याद नहीं। उसके बाद भी कमाल ने कुछ बातें की हों तो याद नहीं। याद बस वह लम्हा रह गया। वह एक लम्हा जिसका क़र्ज़ सारी ज़िन्दगी मीना से सूद वसूल करता रहा। वो एक लम्हा, जो उन्होंने पूरा जिया था।

मीना वहाँ गुज़रे इन ग़मगीं हफ़्तों की याद कमाल की मौजूदगी के कारण हमेशा के लिए भूल गयीं। फिर तो वो बार-बार आये और बार-बार उनकी आमद इतनी ख़ुशगवार थी कि मीना ने अल्लाह से दरख़ास्त की कि वो मीना का हाथ ठीक न करे, ताकि ये ख़ुशी क़ायम रह सके; मुलाक़ातें इस तरह चलने दें। हक़ीक़त में ये हादिसा अनजाने में एक नेमत साबित हुआ। वजह उस वक़्त उन्हें वह ख़ुशी मिली, जो इन मुलाक़ातों से पैदा हुई, जो कमाल अमरोही के साथ हुई थी। उनके चन्दन के साथ हुई।

और फिर नींदें जो रातों के हाथों गिरवी हुई, वह उसका सूद ताउम्र चुकाती रही। रात-रात भर जागने का नशा उन्हीं दिनों की आदत बनी। तब जब चन्दन देर रात ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे फ़ोन करते और मीना रिसीवर सीने पर रख कर धड़कनें सुनाती।

धड़कनें जब क़ाबू में न रहें तो चहारदीवारी में भी नहीं रह पातीं। वह अपनी चुगली खुद करती हुए जमाने भर की कान भरती हैं। धड़कनें चहारदीवारी के बाहर आ ही गयीं। मीना अपने और कमाल के तईं फैल रही अफ़वाहों से बेख़बर न थी और फ़िल्मी दुनिया में हीरोइन के लिए अफ़ेयर की अफ़वाहें न भी हों तो उड़ा दी जाती हैं, फिर यहाँ तो बाक़ायदा थीं ही, जिसका उड़ता-उड़ता असर उनके कॅरियर पर होने भी लगा था, मगर फिर वही लाज की ढाँक। वो बात कैसे कहूँ जो उनसे सुनना चाहती हूँ और वे ऐसे निठुर कि कहने को कुछ राज़ी ही नहीं। बस एक यह जिद्द कि वे ही कहेंगे, जब भी कहेंगे।

बाकर मियाँ, कमाल के दोस्त, सेक्रेटरी, ड्राइवर, खुफ़िया, गोया पीर बावर्ची, भिश्ती, खर सब कुछ थे। सो, इस काम में संवदिया बनाये गये।

इन्हीं दिनों में से एक दिन एक पैग़ाम पहुँचाते वक़्त ही बाकर भाई ने मीना से पूछा—"आप कमाल से प्यार करती हैं?"

मीना अवाक्! उफ़्फ़ अल्लाह! ऐसे शफ़्फ़ाक सवाल का भी कोई जवाब होता है? वह भी किसी तीसरे के सामने, मगर बाकर ऐसे ही थे। स्पष्ट, ढीठ, मुस्तैद और मुँहफट। मीना की जानिब से क्या जवाब आना था, जबकि मीना जानती थी कि बाकर बस एक ज़रिया हैं, बोल तो उनके दोस्त के हैं। कमाल के, उनके चन्दन के।

"जी करती हूँ, बेइन्तिहा करती हूँ।" मीना ने कह ही दिया।

"फिर यह छिप-छिपकर मिलना न सैयदों का कौल है और न ही पठानों की फ़ितरत। कमाल साहब को, ख़ुद को और ख़ानदान को रुसवा क्यों करना? कमाल से निकाह कर लें!" बाकर मियाँ ने उसी साफ़गोई, उसी ढिठाई से कहा, जिसके लिए वे उम्र भर जाने गये।

"यह काम भी क्या मुझे ही करना होगा?" मीना ने बाकर को तुर्की-ब-तुर्की जवाब दिया। बाकर बात समझ गये। उन्होंने कहा—"मैं कुछ करता हूँ।"

उन्हें थोड़ी आस तो बँधी, मगर फिर मन में पिता अली बख़्श को लेकर शंका बँध गयी। मीना ने यूँ ही बुत की तरह खड़े हुए ही बाकर मियाँ से कहा, लेकिन बाबूजी इस रिश्ते के लिए कभी राज़ी नहीं होंगे।

बाकर ने फिर वही बात दोहराई-मैं कुछ करता हूँ।

और यक़ीनी तौर पर उन्होंने ही किया।

दिन 14 फ़रवरी का मुक़र्रर हुआ। साल 1951। बहुत मुमकिन है कि दोनों ही न जानते हों कि यह दिन मुहब्बत का दिन है प्रेमियों का दिन है। मीना और कमाल का ही दिन है। मगर प्रेम दिनों का, तारिखों का मोहताज कब रहा है। सो, उस शाम धड़कते दिल से मीना अली बख़्श और मधु के साथ वार्डन रोड, जसावाला क्लीनिक की ओर निकल गयीं। महाबलेश्वर से लौटते वक़्त के कार हादसे के बाद से ही वह इस मशहूर डॉक्टर की मरीज़ थीं और वहीं पास मसाज क्लीनिक था, जहाँ मीना अपने ख़राब हाथ की मसाज के लिए आती थीं। नियम यह था कि अली बख़्श उन्हें और मधु को यहाँ शाम छह बजे छोड़ देंगे और फिर रात आठ बजे ठीक इसी क्लीनिक के बाहर से लें जायेंगे।

14 फ़रवरी को जब वे घर से निकलीं, तो अली बख़्श को इस प्यारी-सी इश्क़िया साज़िश की बाबत कोई भनक नहीं थी। इस ख़ास

शाम को अपनी कार से उन्होंने दोनों बेटियों को वहाँ छोड़ा और वहाँ से चले गये। उनके जाने के बाद मीना और मधु क्लीनिक में नहीं गयीं।बजाय उसके उन दोनों ने उनके ही इन्तज़ार में खड़ी कार का रुख़ किया। दिल के उछल कर हलक को आती उन घड़ियों में मीना को मधु का ही सहारा था। कार में बैठते वक़्त मीना ने मधु की हथेलियों को अपनी हथेलियों से दबाकर जकड़ लिया। जैसे ही कार चली, मधु घबरायी हुई मीना के पास बैठ गयी। उसे यक़ीन दिलाया कि सब ठीक हो जायेगा।

पेडर रोड से भिण्डी बाज़ार, पन्द्रह मिनट की दूरी में मीना का दिल हज़ारों बार हलक को आया। भिण्डी बाज़ार अमरोही के लिहाज़ से मुनाफ़िक़ और सुरक्षित जगह थी। एक तो यह जगह भी पेडर रोड से नज़दीक थी जहाँ से फ़ौरन मीना को वापस छोड़ा भी जा सकता था। दूसरे, यहाँ कुछ गड़बड़ी होने पर भी उनके पहचान वाले लोग भी थे, जो मौक़ा पड़ने पर इकट्ठे हो सकते थे। लिहाज़ा निकाह के लिए भिण्डी बाज़ार के ही क़ाज़ी साहब को चुना गया और फिर वह पल भी आया जब वह गाड़ी से सीधी उतरकर गुमख़याली में ही काज़ी साहब के सामने हाज़िर हुई।

जब दोनों तयशुदा जगह पर पहुँचे तो काज़ी साहब अपने दोनों बच्चों के साथ ज़्यादा बेचैन दिखे। बग़ैर किसी देरी के, काज़ी साहब ने बेहद ही सादा तरीक़े से पहले शिया और फिर सुन्नी रस्म-ए-निकाह के मुताबिक़ निकाह का आगाज किया। बाकर, कमाल अमरोही के दोस्त और साथी लेखक अमान के साथ-साथ काज़ी साहब के दो बेटों ने बतौर गवाह निकाहनामे पर दस्तख़त किये।

और इसी वक़्त कमाल अमरोही ने पास रखे क़ुरान शरीफ़ पर लिखा—

"बिस्मिल्ला हिर्रहमा-निर्रहीम। ये लो, आज तो मैंने अहदे वफ़ा कर दिया।" थोड़ा शर्माते हुए मीना कुमारी ने भी ठीक उसके नीचे लिखा—'मैंने भी अहद-ए-वफ़ा की। मैं तुम्हारी हक़ीक़ी शरीक़-ए-हयात हूँ। तुम मुझे मार भी डालो, तब भी मेरी ज़बान से कोई लफ़्ज़-ए-शिकायत न निकलेगा।'

इंशा अल्लाह, महज़बीन कमाल। लिखकर मीना ने दस्तखत किये।

मीना ने 'महज़बीन' और कमाल ने अपने असल नाम 'सैयद आमीर हैदर' के नाम से दस्तख़त किये। धड़कते दिलों के बीच ही निकाह पूरा हुआ। मधु, अमान, बाकर सहित मौजूद दोस्त अहबाब ने जोड़े को बधाई दी और बधाई पूरी होते-होते लौटने की जल्दबाज़ी भी हो आयी। सो जल्दबाज़ी में ही कमाल ने मीना की पेशानी पर बोसा जड़ा और मीना, महज़बीन बख़्श से मिसेज़ सैयद अमीर हैदर होकर कार में आ बैठी। ख़ुशी के उमड़ते उन पलों को मीना ठीक से क़ैद भी नहीं कर पायी थी कि हवा की रफ़्तार से भागती हुई कार पेडर रोड के उसी मसाज क्लीनिक तक ले आयी जहाँ अली बख़्श के आने का इन्तज़ार करना था। गाड़ी ने उन दोनों को उतारा और फिर थोड़ी दूर पर जाकर खड़ी हो गयी।

मगर उतरकर मीना और मधु ने महज़ खड़े होकर इन्तज़ार नहीं किया, बल्कि अब्बू अली बख़्श की गाड़ी आती देख मसाज क्लीनिक की सीढ़ियों पर चढ़ गयीं और फिर सीढ़ियाँ उतरते हुए यूँ आयीं जैसे दोनों ही बहनें मसाज क्लीनिक से ही आ रही हों।

ठीक दस बजे अली बख़्श नीचे आये, दो मिनट तक इन्तज़ार किया। दोनों उनकी गाड़ी में बैठीं और घर की ओर चल दिये, यह जानते हुए कि थोड़ी ही दूर पर झुरमुटों के पीछे खड़े बाकर और कमाल तसल्ली करने के लिए अपनी आँखों से देख लेना चाहते हैं। बाबूजी को यह भनक तक नहीं हुई कि उनकी दूसरी बेटी भी अब उनकी मिल्कियत नहीं रही।

किसी और का हो जाना उन लड़कियों के लिए जन्नत-सा होता है जिनके पीछे घर चलाने वाले होते हैं, मगर मीना जैसी लड़की के लिए ये किसी दोज़ख़ के अज़ाब से कम नहीं होता, जहाँ लड़की का बीमार होना भी घर वालों पर भार होता है, बेगाना हो जाना तो मौत ही होता है। फिर मीना को भी इस घर से जल्द ही बेगाना हो जाना था। मगर ज़िन्दगी के इस मरहले पर मीना जानती थी कि वह ही घर का इकलौता पहिया है जिसके सहारे गाड़ी खिंच रही है और अली बख़्श आख़िरकार कितने ही सख़्त थे, थे तो पिता ही। सो, उन्हें कुछ भी बताने, उन पर कोई भी राज़ ज़ाहिर करने से पहले मीना सब कुछ ठीक कर लेना चाहती थी। कम-से-कम घर की माली हालत ऐसी कर देना चाहती थी कि मीना के जाने के बाद भी अली बख़्श और माधु को किसी चीज़ की कमी न पड़े।

कमाल भी यही चाहते थे। आनन-फ़ानन में उन्होंने निकाह तो कर ही लिया था, मगर उधर अमरोहे में उन्हें अपनी पहली बेगम और पूरे सैयद परिवार पर यह निकाह खोलना भी था। कमाल अमरोहा के प्रतिष्ठित सैयद परिवार से थे, जहाँ फ़िल्म में काम करना ही ग़लीज़ माना जाता था। फिर यहाँ तो किसी फ़िल्म हीरोइन से निकाह की बात बतानी थी। सो, वह भी वक़्त चाहते ही थे। उन्हें कोई जल्दी थी नहीं। दूरियाँ मिटाने के लिए टेलीफ़ोन का सहारा अब भी था ही।

सो, मीना ने तय किया कि जब तक घर के लिए नक़द दो लाख रुपये का इन्तज़ाम नहीं कर लेती तब तक वह पिता को कुछ नहीं बतायेंगी। मगर...।

मुहब्बत इस क़दर मालूम हो जाती है दुनिया को
कि ये मालूम होता है, नहीं मालूम होती है।

बन्दिश

दुनिया तो चाहती है यूँ ही फ़ासले रहें
दुनिया के मश्वरों पे न जा उस गली में चल

अफ़वाहों के हज़ार मुँह और हवाओं के हज़ार कान होते हैं। फ़िल्म नगरी में तो वह आग भी फैल जाती है जिसका धुआँ नहीं होता। और फिर यहाँ तो सुलगन भी थी, धुआँ भी था और आग भी थी। अली बख़्श को कमाल और मीना के निकाह की ख़बर लग गयी। भनक लगने के भी कई क़िस्से हैं। नाम न बताने की शर्त पर कोई बताता है कि यह ख़बर घर की उस नौकरानी ने दी थी जो अली बख़्श की नज़दीकी चाहती थी और रात भर मीना को फ़ोन पर बात करते सुनती थी। इशारे यूँ भी मिलते हैं कि अली बख़्श को यह ख़बर भिण्डी बाज़ार के मौलाना साहब से लगी। अव्वल तो मौलाना साहब को यह नहीं बताया गया था कि यह निकाह ख़ुफ़िया है, दूसरे कि अल्लाह का बन्दा किसी पाक काम को ख़ुफ़िया रखता भी क्यों?

क़िस्सा-कोताह, पिता अली बख़्श को यह ख़बर लग गयी। अली बख़्श समझदार थे और पहले ही अपनी एक कमाऊ लड़की को ख़ुर्शीद के रूप में खो चुके थे। लिहाज़ा, उन्होंने ग़ुस्से की बजाय गम्भीरता से काम लिया और यह अहम सवाल सीधा मीना से ही किया। मीना ने भी इसका सीधा ही जवाब दिया और हामी भरी।

और जैसा की ज़ाहिर था। अली बख़्श को ग़ुस्सा आया, मगर उन्होंने अपने ग़ुस्से को दबाया और मीना को समझाने की कोशिश की।

"तुम जानती भी हो तुम क्या कह रही हो?" अली बख़्श ने सवाल किया।

मीना ने कुछ नहीं कहा, बस, चुपचाप खड़ी रहीं।

"वह शादीशुदा इन्सान दो बच्चों का बाप है!" अली बख्स उबलते हुए बोले।

मीना ने कुछ नहीं कहा, ख़ामोश खड़ी रहीं।

"इससे पहले वह ऐसा ही जाल अताउल्लाह की बेटी मधुबाला के आगे फेंक चुका है। 'महल' के बाद 'अनारकली' में उसी को लेना था, मगर अताउल्लाह उसकी चालाकी ताड़ गया और फ़ौरन फ़िल्म के लिए न कर दी।"

"तो इसलिए यह फ़िल्म मुझे मिली!" मीना ने धीमी आवाज़ में ही कहा।

"बेशक! वरना वो महल जैसी हिट फ़िल्म के बाद हीरोइन क्यों बदलता?" अली बख्स गुस्से में वह बात बोल गये जो उन्हें छिपानी थी।

"मगर बाबूजी, 'अनारकली' के क़रारनामे की मंजूरी तो आपने ही दी थी। आप ही यह फ़िल्म लेकर आये भी थे। जब आपको यह बात मालूम थी तो आपने तब ही मना क्यों नहीं किया!" मीना ने ऐसा सवाल कर दिया जिसका न जवाब ही अली बख़्श के पास था और न उम्मीद ही। लिहाज़ा वह जज़्बाती बातों पर उतर आये।

"देख! अब भी देर नहीं हुई है! मैं काज़ी साहब से बात करके 'खुला'* दिला सकता हूँ। या फिर तुझे बुरा लग रहा हो तो मैं ख़ुद ही कमाल को तलाक़ के लिए रज़ामन्द करने की कोशिश करूँ! तलाक़ हो सकता है। तू कहे तो मैं ही कमाल से बात करूँ?"

ऐसे अल्फ़ाज़, ऐसी सोच! मीना ने जवाब देने की भी कोशिश नहीं की। बस, आँखों में आँसू के साथ वे अपने कमरे की तरफ़ रवाना हो गयीं और दरवाज़ा बन्द कर ज़ार-ओ-क़तार रोयीं।

फिर यह रोना उनका रोज़ का हिस्सा बन गया। अली बख़्श आते-जाते ताने देते। तंज़ कसते और अपने नसीब और तहजीब को कोसते रहते। इस ज़हरीले माहौल में मीना घुटी रहतीं, मगर बनी रहीं।

और अगली बार जब वो अपने शौहर कमाल अमरोही से मिलीं तो उन्हें अपनी परेशानी बतायी। बताया कि ज़िन्दगी ख़ासी

---

* मुस्लिम विधी के अनुसार यदि पति-पत्नी में रिश्ता निभाना मुश्किल हो जाये तो पत्नी भी पति से अलग होने का प्रस्ताव रख सकती है।

नाक़ाबिल-ए-बर्दाश्त है। अली बख़्श बाक़ायदगी से इल्ज़ामात लगाते हैं और ये मश्वरा देते हैं कि अभी-भी ज़्यादा देर नहीं हुई—तलाक़ का बन्दोबस्त किया जा सकता है।

उधर कमाल अमरोही की जान को अलग ही अज़ाब था। वह निकाह तो कर चुके थे, मगर उनकी पहली बीवी महमूदी बेगम अपने बच्चों के साथ बम्बई ही आ गयी थीं। उनकी तबीयत भी ख़राब रहती थी। ऐसी दशा में वह उन पर यह राज़ भी नहीं खोल सकते थे। इसलिए उन्होंने मीना को सब्र की सलाह दी और कहा कि वो काम पर ध्यान लगायें। कमाल ने समझाया कि जैसे-जैसे वक़्त गुज़रता जायेगा, अली बख़्श इस बात को क़ुबूल कर लेंगे या कम-अज़-कम उनका ग़ुस्सा कम हो जायेगा। इसलिए मीना को चाहिए कि वह काम में ध्यान लगाये।

और काम! काम तो इतना था कि मीना चक्करघिन्नी बनी हुई थी। 'बैजू बावरा' और 'फ़ुटपाथ' का काम ज़ोरों पर था। बैजू के लिए विजय भट्ट और 'फ़ुटपाथ' के लिए ज़िया सरहदी जी-तोड़ मेहनत करते और करवाते थे। एक-एक सीन कई-कई बार रीशूट होते। इन्हीं दिनों में 'तमाशा' फ़िल्म का भी बचा हुआ काम पूरा करना था। लिहाज़ा तक़रीबन हर रात मीना काफ़ी देर से घर लौटतीं और पिता की डाँट और ग़ुस्से से बची रहतीं।

इसी उधेड़बुन में एक साल गुज़रा। नवेलियों का पहला साल किस ख़ुशी, किस उम्मीद, किस बुलन्दी में गुज़रता है, मीना बस फ़िल्मों में ही देख समझ पा रही थीं। असल ज़िन्दगी में उनकी शादी का पहला साल किस अज़ाब से गुज़रा, यह मीना का अल्लाह ही जानता है। घर में अली बख़्श के ताने, बाहर कमाल की मजबूरियाँ और फिर शूटिंग की परेशानियाँ। मीना अकेली जान, इन सारी परेशानियों से लड़ती रहीं, मगर परेशानियाँ थीं कि घात लगाये उनके ही इन्तज़ार में बैठी रहती थीं।

एक दिन जब मीना पहाड़ों से वापस आयीं तो अली बख़्श बहुत ख़ुश दिखे। उन्होंने मिठाई का डिब्बा खोला और मीना की तरफ़ बढ़ाते हुए कहा, "ले मंजु! मुँह मीठा कर। ऐसी ख़बर सुनाता हूँ कि ख़ुशी से झूम-झूम जाओगी। अब कोई भी चीज़ अव्वल दर्जे की हीरोइन बनने से नहीं रोक सकती।"

"आपको कौन-सा जादू का चिराग मिला?" मीना ने मिठाई का एक टुकड़ा लेते हुए पूछा था।

"जादुई चिराग ही समझो। महबूब ख़ान की फ़िल्म 'अमर' साइन करके आया हूँ। तुम जानती हो, तुम्हारे शरीक सितारा कौन है!' बताते हुए अली बख़्श ख़ुशी से लगभग उछल ही पड़े!

मीना ने इशारे से पूछा, "कौन?"

"दिलीप कुमार! दिलीप कुमार है तुम्हारे साथ उस फ़िल्म में। वो अताउल्लाह ख़ान (मधुबाला के पिता) ने तो सारी तरकीबें भिड़ा ली थीं, मगर मैंने भी अबकी ऐसा दाँव खेला, ऐसा दाँव खेला कि...।"

ग़ौरतलब है कि तब तक मीना कुमारी की दिलीप कुमार के साथ कोई फ़िल्म नहीं आयी थी और दिलीप कुमार के साथ फ़िल्म करना उन्हें सीधे ही अव्वल दर्जे की हीरोइनों की जमात में में खड़ा कर देने का तरीक़ा था। कदरन मीना को बहुत ख़ुश होना चाहिए था, मगर वह सामान्य ही रहीं और पूछा–

"उसकी शूटिंग कब से हो रही है?"

"अगले हफ़्ते से!" अली बख़्श ने मिठाई का डिब्बा रखते हुए कहा।

"अगले हफ़्ते!" मीना के मुँह में घुली मिठाई कुनैन की मानिन्द होने लगी। मीना ने कहा–'बाबूजी मैं नहीं कर पाऊँगी।'

"क्यों!" अली बख़्श की त्योरियाँ चढ़ीं।

"क्योंकि तारीख़ें ख़ाली नहीं हैं।" मीना ने सपाट लहजे में ही कहा। अली बख़्श ग़ुस्सा पी गये। ग़ुस्सा इसलिए कि ब-रवायत तारीख़ें देने का हक़ सिर्फ़ उन्हें था। मीना बस कठपुतली थी। ऐसी किसी दूसरी स्थिति में उनका चाँटा चल गया होता, मगर अब तक उन्होंने किसी मजबूरी के तहत ग़ुस्सा ज़ब्त किया और पूछा–

"अरे! तो उन्हें डायरी में लिखना था, या मुझे बताना था।"

"आज ही तारीख़े दी हैं।" मीना ने कहा।

अली बख़्श उनके और कमाल के रिश्ते से अनजान तो थे नहीं सो उनको कुछ-कुछ बात समझ में आने लगी थी। फिर भी उन्होंने पूछा–

"किसे दी हैं तारीख़े?"

"कमाल साहिब को।" मीना ने कहा।

"क्या यह किसी तरह के लतीफ़े का वक़्त है?" अली बख़्श थोड़ा बिगड़े।

"लतीफ़ा नहीं, यह एक हक़ीक़त है बाबूजी। परसों उनकी फ़िल्म 'दायरा' शुरू हो रही है और कम-अज़-कम पन्द्रह दिन एकमुश्त शूटिंग चलेगी।"

"तो ये शमा रिसाले वालों ने सही ख़बर छापी थी कि तुम उसकी फ़िल्म में मेरे पैसे भी लगा रही हो?" अली बख़्श ने उठकर लगभग उबलते हुए कहा, जिसका कोई जवाब मीना ने नहीं दिया। इस ख़ामोशी ने अली बख़्श का ग़ुस्सा और बढ़ा दिया।

और उसी ग़ुस्से के असर उन्होंने उनके मुँह पर दो चाँटे भी लगा दिये। बोले, "पागल तो नहीं हो गयी हो लड़की? जानती हो तुम क्या कर रही हो? महबूब ख़ान और दिलीप कुमार को छोड़कर तुम उस दो कौड़ी के इन्सान को तरजीह दे रही हो? मैंने महबूब ख़ान को 'हाँ' की है। तुम्हें उसी की शूटिंग करनी होगी।"

बाबूजी की बात नाक़ाबिले बर्दाश्त तो हो ही चली थी, मगर यूँ एक सीधी तलवार की धार से काटी भी नहीं जा सकती थी। कारण, पिता की उम्र और मीना की बुज़दिली भी थी। ग़ुलामी की ज़ंजीर को तोड़ने में समय नहीं लगता, मगर तोड़ने की हिम्मत जुटाने में लगता है। ज़ंजीर को पहला झटका देने में लगता है और मीना इसके लिए फ़ौरी तौर पर तैयार न थीं। सो, मीना ने उस वक़्त कुछ भी नहीं कहा और अपने कमरे में चली गयीं।

अगले पाँच दिन मीना महबूब ख़ान की फ़िल्म के लिए स्टूडियो गयीं और ठीक छठे दिन अपना मन्तव्य बता दिया। मीना ने महबूब ख़ान को बता दिया कि वह उनकी फ़िल्म नहीं कर सकेंगी।

अली बख़्श घर पर फिर एक बार ख़ूब बिगड़े। मीना ने ख़ुद को कमरे में बन्द कर लिया। कमाल को न इन बातों से फ़र्क़ था, न मीना उन्हें और परेशान करना चाहती थी। लिहाज़ा, मीना भी लगभग रोज़ ही उनसे मिलने के बावजूद अपनी स्थिति जहाँ तक हो सके, नहीं ही बताती थी, मगर अब पानी सिर से ऊपर हो गया था। अब उनके पास भी दूसरी कोई सूरत बाक़ी नहीं रह गयी थी।

मीना दो दिन अपने कमरे से बाहर नहीं निकलीं, मगर तीसरे दिन, जब मीना शूटिंग के लिए निकलीं तो अली बख़्श बरामदे में ही बैठे थे। उन्होंने मधु से पूछा, "आपकी आपा कहाँ जा रही हैं?"

जब मधु ने मीना की तरफ़ देखा तो मीना ने कहा, "कमाल साहब की शूटिंग के लिए।"



मीना और कमाल

बाबूजी का जवाब था—"इन्हें याद दिलाओ कि 11 बजे इन्हें महबूब स्टूडियो रहना है, किसी भी सूरत में। इसलिए वक़्त से पहले पहुँच जायें।"

जब कुछ कहे बग़ैर ही मीना कार की तरफ़ बढ़ीं तो अली बख़्श उठ खड़े हुए। बरामदे की सीढ़ियों के पास आये और ऊँची आवाज़ में कहा, "और जो अगर आज ये नहीं पहुँचीं तो नतीजा अच्छा नहीं होगा।"

मीना रुकीं। कहा कुछ नहीं। नतीजतन, जो होना था, वह सुनने का इन्तज़ार किया। अब्बू अली बख़्श ने वह भी सुनाने में देरी नहीं बख़्शी। फ़ौरन कहा, "इन्हें बता देना कि ऐसा न होने पर इस घर के दरवाज़े इनके लिए हमेशा के लिए बन्द कर दिये जायेंगे।"

मीना ने सुना। रोयीं, आँखें पोंछीं और कार में बैठ गयीं। दिन भर शूटिंग में व्यस्त रहीं और शाम को वापस लौटीं।

जब मीना शाम छह बजे के क़रीब वापस आयीं तो अली बख़्श ने ही कमरे का दरवाज़ा खोलकर दरवाज़े के बराबर खड़े होते हुए निहायत ही बेरुख़ी से कहा—

"आपने शायद नहीं सुना था, मैंने सुबह क्या कहा? अब इस घर में आपके लिए कोई जगह नहीं है। अपने बढ़ गये, निकल गये क़दम इधर न लायें।"

मीना को उम्मीद तो थी कि बाबूजी नाराज़ होंगे, मीना से बातचीत नहीं करेंगे, थोड़े दिन चेहरा भी नहीं देखेंगे, मगर मामला इतना ख़राब हो जायेगा जहाँ वापसी की गुंजाइश ही ख़त्म हो जायेगी ऐसा मीना ने नहीं सोचा था। ख़ैर, बाबूजी पहले ही अपना फ़ैसला सुना चुके थे। अपने खुद की रक़म से ख़रीदे गये घर से ही मीना बेदख़ल की जा रही थी।

बहरहाल, यह घर जो उनके लिए घर कम और क़ैदख़ाना ज़्यादा था, छोड़ देना ही मुफ़ीद था। सो, बे-ख़ौफ़ सीढ़ियों पर चढ़ते हुए मीना ने कहा, "आप फ़िक्र न करें बाबूजी, कुछ कपड़े ले लूँ, फिर चली जाऊँगी। उसकी तो इजाज़त है न!" मीना ने कहा और अपने कमरे की ओर बढ़ गयीं।

कमरे के अन्दर पहुँचने के बाद मीना ने महसूस किया कि मीना का जिस्म ही उन पर भार हो रहा है। साँस लेना भी मुहाल है। दर-ओ-दीवार अली बख़्श की ही बात सुना रहे हैं। मीना का यहाँ कुछ भी बाक़ी नहीं है, कुछ भी नहीं। ठीक वही अहसास जो बेटी की विदाई के वक़्त होता है। ठीक वही घुटन जो गले में फाँस बनकर ताउम्र कचोटती रहती है। नीम बेहोशी की हालत में मीना अपने कपड़े समेट ही रही थीं कि छोटी बहन मधु भीतर आ गयी।

हँसी की सम्भावना नहीं होने के बावजूद, मीना और मधु दोनों मुस्करायीं। ऐसा नहीं था कि उससे कुछ छिपाने का इरादा था या फिर उसे कुछ पता नहीं था। मीना ने मधु की तरफ़ दो बार सवालिया नज़रों से देखा। उसका उदास चेहरा झुका हुआ था। मीना उसके दिल की हालत को महसूस कर सकती थी।

थोड़ी ही देर में दो सूटकेस भी भरे गये। साढ़े सात बजे थे जब मीना ने कार में सामान रखने को कहा। मीना ने कमरे की हर चीज़ को इस क़दर देखा जैसे वह आख़िरी बार हो। उन्हें लगा जैसे छतें, दीवारें, दरवाज़े, खिड़कियाँ, सोफ़े, बिस्तर, अलमारी, पेंटिंग्स, सभी मीना का रास्ता रोकना चाहते थे, मगर यह तो हर उस बेटी का नसीब है जिसे ब्याह कर पराये घर जाना है। इससे क्या और कितना लाड़ लगाना? सो, मीना ने एक झटके में ही सबको अलविदा कहा और बाहर आ गयीं।

बाहर आकर उन्होंने पीछे मुड़कर देखा। अली बख़्श कहीं नहीं थे, बस डबडबायी आँखों के साथ मधु की एक भोली-सी शक्ल थी। मीना ने उसे खींचकर सीने से लगाया और देर तक दोनों एक-दूसरे के कन्धे भिगोती रहीं। मीना ग़लत नहीं थीं, सो वह अपनी नज़रों में ग़लत होकर जाना भी नहीं चाहती थीं। बिना पिता से मिले चले जाना उनकी तहज़ीब को गवारा नहीं था। सो, वह पिता के बन्द कमरे के दरवाज़े के बाहर काँपते क़दमों से पहुँचीं।

थोड़ी देर वह दरवाज़े की तरफ़ देखती रहीं। अली बख़्श अब भी नाराज़ ही थे। मीना की टाँगें काँपने लगीं। मीना ने हिम्मत जमा की और अपनी ज़िद से हार मानी, अहं को एक तरफ़ धकेल दिया और बाबूजी के कमरे में पहुँचीं। दरवाज़ा खुला। बाबूजी सामने बैठे थे। एक बार उन्हें देखकर मीना ने आँखें झुका लीं, मगर अब कोई और राह बाक़ी नहीं थी। मीना ने काँपते हुए, भरी आवाज़ में कहा, ''अच्छा बाबूजी मैं जा रही हूँ।''

कुछ भी कहने, सुनने, डाँटने, चिल्लाने की बजाय अली बख़्श ने अबकी दफ़ा मुँह फेर लिया। मीना ने महसूस किया कि सब ख़त्म होना शायद इसे ही कहते होंगे। वह चुपचाप निकल आयीं, अपनी कार में बैठीं और अपनी मंज़िल की तरफ चल दीं। उनकी मंज़िल थी कमाल का घर।

पिता के घर से चले जाने के बाद जब मीना कमाल साहिब के सायन वाले फ़्लैट में पहुँचीं तो कमाल अभी नहीं आये थे। घरेलू मुलाज़िम सर-ओ-सामान में उन्हें आये देखकर हैरान तो हुए, मगर उनका सामान लेकर कमरे में रख दिया।

देर रात जब कमाल स्टूडियो से वापस आये तो उनके कमरे की एक अलमारी पर मीना का क़ब्ज़ा हो चुका था। उन्हें देखकर कमाल हैरान हो गये। हैरान-कुन बात थी भी क्योंकि दोनों दिन-भर स्टूडियो में इकट्ठे थे, और शाम तक उनके यहाँ होने की कोई बात थी भी नहीं। कमाल साहब उस वक़्त और भी हैरत-ज़दा हुए जब उन्होंने मीना को घरेलू कपड़ों में देखा। थोड़ी देर के लिए मीना भी उनके ज़हन में उठ रही उलझन का लुत्फ़ उठाती रही।

फिर अचानक कमाल ने ही पूछा—''इस वक़्त और अचानक कैसे?''

''क्या मुझे अपने घर आने के लिए वक़्त देखने की ज़रूरत है?'' मीना ने जवाब दिया।

"बिल्कुल नहीं!" कमाल ने जवाब तो दे दिया, मगर वह हैरान-कुन ही रहे।



मीना नहीं महजबीन

"फिर और कुछ न पूछिए क्योंकि आज मैं पहली बार सही मायनों में अपने घर आयी हूँ। अपने घर, हमारे घर, हमेशा के लिए।" कहते हुए भी मीना की नज़र कमाल के चेहरे पर थी। यह वाज़िब तौर पर नज़र आ रहा था कि वह हैरत के साथ कुछ परेशानी में भी थे।

मीना इस मसले के बारे में जानती थी क्योंकि पहले भी जब मीना ने आने का इरादा जताया था तो कमाल का यही जवाब था—"कुछ दिन और रूक जाओ मंजु? अमरोहा में महमूदी बेगम (कमाल की अमरोहे वाली बेगम) को आजकल दौरे आ रहे थे। ऐसी सूरत-ए-हाल में यह ख़बर उन तक पहुँचना ख़तरनाक हो सकता था।"

मीना ने उनकी मजबूरी समझी थी। वह कह रहे हैं तो सही ही कह रहे होंगे। आख़िर क्यों कोई शौहर अपनी बेगम से झूठ कहेगा? नामुराद अक़्ल के अन्धे इश्क़ को यह भी तो दिखाई नहीं देता कि वह एक फ़ैसला तो अपनी पहली पत्नी से छुपाये बैठे ही है। ख़ैर, यही शायद इश्क़ होता होगा, नाबीना इश्क़! सो मीना ने कभी पूछने की ज़रूरत नहीं

समझी कि उस दौर की लड़कियाँ तो ससुराल आती ही सौत की आमद के डर के साथ हैं। हादसे की इस घड़ी का सामना करने के लिए पहले दिन ही ज़ेहनी तौर पर तैयार हुई रहती हैं। फिर भी यह बात मीना समझती थी कि कमाल यह बात समझने को राज़ी नहीं होंगे सो मीना ने ख़ुद ही कहा—

''मैं आपकी परेशानी बख़ूबी समझती हूँ और मुझे भी उनसे (महमूदी बेगम) बड़ी हमदर्दी है, लेकिन आज बाबूजी ने मुझे ये क़दम उठाने पर मजबूर कर दिया। आप की क़सम, अगर बाबूजी ने मेरे पास कोई और रास्ता छोड़ा होता तो मैं ऐसी गुस्ताख़ी कभी नहीं करती।''

मीना ने कमाल साहब की तरफ़ देखा। वह मुस्कुरा रहे थे। उन्होंने अपनी परेशानी पर क़ाबू पा लिया था। आँखों और चेहरे पर अब मुहब्बत और शुक्रगुज़ार अहसास था।

मीना ने फिर भी पूछा, ''क्या आप मेरे इस अचानक लिये फ़ैसले से नाराज़ हैं?'' कमाल अपनी परेशानी चेहरे और गर्दन से उतारते हुए घोट गये और एक मुस्कुराहट चेहरे पर चस्पाँ कर बोले—

''कैसी बात कर रही हो, मंजु! मैं बस जल्दबाज़ी के बारे में सोच रहा हूँ। फ़िल्म 'दायरा' का अभी बहुत सारा काम बाक़ी है, फिर पैसे की भी परेशानी है। मगर जब तुमने फ़ैसला कर ही लिया है, तो यह ज़रूर है कि अब चीज़ें नक़ाबिल-ए-बर्दाश्त ही हो गयी होंगी।''

''क्या आपकी मुश्किलें मेरी मुश्किलें नहीं हैं? क्या 'दायरा' मेरी फ़िल्म नहीं है? आप फ़िक्र न करें, अब मैं जो हूँ! सारी परेशानियाँ बाँट लेंगे। सब ठीक हो जायेगा।' मीना ने कहा और फिर...

ख़ुनुक फ़ज़ाओं में रक्साँ हैं चाँद की किरनें
कि आबगीनों पे पड़ती है नर्म-नर्म फुवार
ये मौज-ए-ग़फ़लत-ए-मासूम ये ख़ुमार-ए-बदन
ये साँस नींद में डूबी ये आँख मदमाती
अब आओ मेरे कलेजे से लग के सो जाओ
ये पलकें बन्द करो और मुझ में खो जाओ

परिणीता

मकाँ है क़ब्र जिसे लोग ख़ुद बनाते हैं
मैं अपने घर में हूँ या मैं किसी मज़ार में हूँ

रेम्ब्रांट, पाली हिल पर खड़ा वह तिमंज़िला मकान, मीना की मुहब्बत का आशियाना बना। इस फ़ानी ज़िन्दगी में उन्हें जिन-जिन चीज़ों की ज़रूरत थी। वे सभी उस एक छत के नीचे थी—किताबें, रिसाले, ताश की गड्डी, पानदान और कमाल अमरोही। कमाल अमरोही, जिसे मीना उन्हें बचपन के पुकार के नाम से बुलाती थीं—चन्दन। चन्दन, जिसके भरोसे मीना वह सब छोड़ आयी थीं, जो मीना का अपना था। ग़लत नहीं होगा अगर कहूँ कि ज़िन्दगी के सबसे ख़ूबसूरत पल मीना ने रेम्ब्रांट में ही गुज़ारे। और ग़लत यह भी नहीं होगा अगर कहूँ कि सबसे बुरे पल भी यहीं गुज़रे।

ख़ैर, साल पर लौटते हैं।

सन् 1953 में ही मीना ने एक मैगज़ीन के मार्फ़त दुनिया को यह ज़ाहिर कर दिया कि मीना परिणीता हैं, कमाल अमरोही की परिणीता। उन्होंने एक आलेख में लिखा—

I am in love, yes I am in love, with a married man, who is married to me.

और जैसा कि होता है, गलियारों में सही और ग़लत की बहस चल पड़ी। तरह-तरह के सवाल। अपने से बड़ी उम्र के इन्सान से शादी क्या सही है? अभी तो ख़ुद ही बच्ची थी। यह भी कोई उम्र थी शादी करने की? कमाल ने ही बरगलाया होगा? जैसी कई बातें हवाओं में तैर गयीं! साथ ही तैर गया सबसे अहम सवाल—अब क्या मीना कुमारी को फ़िल्में मिलेंगी?

फ़िल्मी हलकों में यह बात आम है कि शादी के बाद अदाकाराओं की माँग कम होना शुरू हो जाती है। यह सोच बनी हुई है कि दर्शक अदाकारा के शादीशुदा होते ही उससे किनारा कर लेते हैं। कारण, उनके सपनों में अब कोई कुँवारी अदाकारा नहीं आती बल्कि एक शादीशुदा औरत आती है जिसका शौहर उनके सपनों में दीवार होता है। अनुभव से देखी तो किसी हद तक यह बात सच भी थी।

लेकिन यक़ीन जानिए, मीना के साथ बिल्कुल इसके उलट ही हुआ। शादी के बाद मीना की शोहरत दर हक़ीक़त बढ़ती ही गयी। बेगम कमाल अमरोही बनने के बाद मीना ने दर्जनों ऐसी फ़िल्मों में काम किया और हर नयी फ़िल्म ने उन्हें एक नया एजाज़, एक नयी शोहरत एक नया मुकाम ही दिया।

निकाह के बाद कमाल अमरोही तथा मीना कुमारी ने अपनी सारी मेहनत, पैसा, वक़्त और तरजीह फ़िल्म 'दायरा' में झोंक दी। फ़िल्म की कथा अमानुल्लाह ख़ान 'अमान' ने लिखी थी। ये एक अनोखा तजुर्बा था। एक बुज़ुर्ग बीमार शौहर और उसकी कम उम्र बीवी की सामाजिक रिवाज़ों में बँधी बेबसी की कहानी थी। मीना ने 'दायरा' में एक तपेदिक से लड़ रही लड़की का किरदार अदा किया था। मीना ने इस किरदार को इतना जिया था कि अक्सर उन्हें ऐसा ही महसूस होने लगा कि मीना वही लड़की हैं, जो तपेदिक से जूझ रहे अपने बूढ़े पति की देखभाल में ख़ुद ही तपेदिक से ग्रसित हो जाती है। और दर हक़ीक़त उन्हें यह भी लगने लगा था कि उनमें तपेदिक के लक्षण आने लगे हैं। बाद में मीना ने तिब्बी इलाज के ज़रिये इस तकलीफ़ से छुटकारा पाया।

क़िस्सा-कोताह, फ़िल्म 'दायरा' बहुत मन से बनायी गयी थी और कमाल को अपनी हिदायतकारी के इस फ़न से बहुत उम्मीदें थीं।

मगर फ़िल्म तीसरे दिन ही थियेटरों से उतरने लगी। पचास के दशक में अपने वक़्त से आगे की फ़िल्म दर्शकों को रिझा नहीं पायी और यह फ़िल्म पैसे कमाने में मुकम्मल नाकाम रही थी, लेकिन जहाँ तक फ़िल्म आर्ट और तकनीक की बात है, तो कमाल ने इसमें अलहदा अन्दाज़ का बहुत बेहतरीन इस्तेमाल किया। 'दायरा' का क्लोज़ अप क्लाइमेक्स शॉट आज भी हिन्दी फ़िल्म इतिहास का सबसे लम्बा क्लाइमैक्स शॉट माना जाता है, जहाँ फ़िल्म आख़िरी साँस लेती मीना कुमारी के चेहरे पर ख़त्म

होती है और वास्तव में ही ऐसा लगता है कि देखने वाला भी मीना कुमारी के साथ-साथ आख़िरी साँस ही ले रहा है।



फिल्म 'दायरा' का अन्तिम दृश्य

'दायरा' बहरहाल बॉक्स ऑफ़िस पर नाक़ामयाब रही। कमाल को इस फ़िल्म से बहुत ज़्यादा उम्मीद थी, मगर मीना को नहीं और इसके अपने वजह से। कमाल कहते थे कि यह वक़्त से आगे की फ़िल्म है। मीना की नाउम्मीदी की वजह भी ऐन यही बात थी। फ़िल्में देखना आदत है, ज़रूरत नहीं। आदमी वहाँ दो घड़ी सुकून के पल ख़ोजने जाता है, न कि रोते-बिलखते वापस आने को। सो फ़िल्में, वक़्त के साथ की फ़िल्में होनी चाहिए। वक़्त के आगे की ज़रूरत नहीं।

ख़ैर, लुब्बोलुआब यह कि 'दायरा' फ़्लॉप हुई, मगर करिश्माई बात यह हुई कि उसका हिदायतकार कमाल अमरोही फ़्लॉप नहीं हुआ। अदाकारा मीना का परचम नहीं झुका। वह साल दर साल बुलन्द ही होता गया।

इन सब बातों से परे अब तक शादी अच्छी तरह से चल रही थी और मीना का सिनेमाई करियर भी अब सुरक्षित था। बाबूजी की याद आती थी तो दिल कचोट जाता था। फिर कुछ ऐसा हुआ कि मन उधर से फट ही गया। कमाल के साथ आ जाने के बाद भी मीना का मन बाबूजी की ओर



पोस्टर गर्ल

अटका रहता। सो, मीना ने एक ग़रीबी की मारी औरत फ़िरदौस को उनकी सेवा-टहल में लगा दिया था, मगर कुछ ही दिनों बाद बाकर ने बताया कि उस औरत के फ़रेब जाल में अली बख़्श इस क़दर पड़ गये हैं कि उससे निकाह की इल्तिज़ा की है। मीना अवाक् हुईं, दुखी हुईं, परेशान हुईं, मगर कुछ भी कर पाने से महरूम ही रहीं। जो करा पायी वह यह कि उस घर से अपने रहे-सहे कपड़े भी मँगवा लिये। चिट्ठी एक तरह से रिश्ता तक कर देने का यह मीना का तरीक़ा रहा।

मीना अपनी ज़िन्दगी में आगे बढ़ गयी। मधु भी बाबूजी की ज़्यादतियों से तंग आकर महमूद के निकाह में आ गयी। कॉमेडियन महमूद भी तब प्यारा लड़का था और अपने पिता मुमताज़ अली मास्टर साहब की शराबनोशी के कारण घर चलाने के लिए फ़िल्मों में संघर्ष कर रहा था।

अदीबों में जो आम ख़ूबियाँ देखी जाती हैं, उनमें से एक है– अनुशासन। कमाल साहब इसके हद दर्जा पाबन्द आदमी थे और यही उम्मीद वह सबसे रखते भी थे। शादी के बाद मीना के क़रारनामे, स्क्रिप्ट, डेट्स इत्यादि सब कुछ वही देखते थे। प्रोड्यूसरों से मिलना, उन्हें शूटिंग

की तारीख़ें देना, हिसाब-किताब रखना या उनके करियर की बेहतरी को ध्यान में रखते हुए मीना की पब्लिसिटी करना-कराना, ये वे सारे काम थे, जिसमें कमाल साहब मुब्तिला हो गये थे। कमाल इस बात के हामी थे कि नये लोगों में नया और अच्छा करने की भूख होती है, इसलिए नये कलाकार फ़िल्म में जी-जान लगा देते हैं। वहीं स्थापित फ़िल्मकार पैसे का गुणा-गणित जानता है, इसलिए वह किरदार को उभारने से ज़्यादा फ़िल्म को चलताऊ बनाने पर ध्यान देता है। यही कारण था कि सन् 53 से 56 तक की फ़िल्मों में मीना ने ज़्यादातर नये निर्देशकों के साथ काम किया जिनमें जी.पी. सिप्पी और बी.आर. चोपड़ा प्रमुख थे। इन दोनों के साथ मीना कुमारी टैक्सी के मीटर की तरह दिन-रात काम करती थीं। इन दो सालों में मीना ने 'इलज़ाम', 'चाँदनी चौक', 'बदन', 'अदल-ए-जहाँगीर', 'बन्दिश' और 'आज़ाद' जैसी फ़िल्मों में काम किया। 'अदल-ए-जहाँगीर' में वह पहली दफ़ा प्रदीप कुमार के साथ दिखीं तो 'आज़ाद' में वह पहली दफ़ा दिलीप कुमार के साथ नज़र आयीं।

विवाह पूर्व और विवाह के बाद की मीना कुमारी में सकारात्मक परिवर्तन आराम से देखे जा सकते हैं और इसका भी कारण कमाल अमरोही ही थे। 1952 के पहले की मीना कुमारी की संवाद अदायगी में एक कच्चापन, एक जल्दबाज़ी थी। कमाल अमरोही ने इस बात को सबसे पहली दफ़ा भाँपा। उन्होंने एक बात और भी ग़ौर की कि मीना की आवाज़ में नैसर्गिक दर्द है। अगर उसे ठीक से उभारा जाये तो उनकी आवाज़ ही एक अलग मुकाम हासिल कर लेगी। फिर संवाद अदायगी के वक़्त स्थिर सिर, होंठों तथा आँखों की थिरकन इत्यादि पर भी कमाल ने मीना की बहुत सहायता की, इसलिए बाद की फ़िल्मों की मीना कुमारी में जो आत्मविश्वास झलकता है, वह उनकी पहले की फ़िल्मों में नदारद दिखता है।

ख़ैर, फिर साल बदला। नया साल आया—1956। इस साल रिलीज़ होने वाली उनकी फ़िल्मों की तादाद तो अच्छी-ख़ासी थी लेकिन उनमें से कोई भी क़ामयाब और स्तरिये नहीं थी। फिर भी मीना कुमारी की अदाकारी उनमें भी लाजवाब थी। उनकी फ़नकाराना प्रयासों पर किसी ने तंज़ नहीं किये। नाकाम फ़िल्मों की इस क़तार के बाद उनकी फ़िल्म 'शारदा' 1 मार्च, 1957 को रिलीज़ हुई जो बेहद क़ामयाब रही। इसमें

पहली बार राज कपूर उनके मुक़ाबिल हीरो लिये गये। इस फ़िल्म में मीना कुमारी ने उत्कृष्ट अदाकारा होने का एक और सबूत दिया। फ़िल्म में उनका एक तरह से डबल रोल था। फ़िल्म के पहले आधे हिस्से में वो राज कपूर की हीरोइन थीं और दूसरे आधे हिस्से में उनकी माँ। दोनों किरदारों में उनकी अदाकारी को बहुत सराहा गया।

यही वो दौर था जब एक तरफ़ तो बतौर अदाकारा मीना कुमारी का एक आला मुकाम तय हो रहा था, लेकिन दूसरी तरफ़ उनकी गृहस्थ जीवन की बुनियादें हिलनी शुरू हो गयी थीं। दरअसल, कमाल बम्बई में होकर भी अमरोहा के ही थे। वह अपने नाम में लगा सैयद नहीं भूल पाते थे। यूँ भी वह अमरोहा के प्रतिष्ठित शाह विलायत के घराने से ताल्लुक रखते थे, जिनका पूरे अमरोहे में अपना मकाम है। धानौरा रोड स्थित शाह विलायत की दरगाह आज भी मँगतों से भरी रहती है।

सो, कमाल ने मीना कुमारी से निकाह के पहले ही यह शर्त रखी थी कि मीना निकाह के बाद फ़िल्मों में काम नहीं करेंगी। मीना तब मीना नहीं थीं। वह मीरा हो गयी थीं प्रेम दीवानी। लिहाज़ा उन्होंने कमाल की हर जायज़-नाजायज़ बात मान ली थी।

मगर जल्द ही मीना कुमारी को अहसास हो गया कि वह बनी ही फ़िल्मों के लिए हैं और फ़िल्मों के बग़ैर उनका दूसरा कोई ठौर नहीं है। लिहाज़ा, वह चुपके-चुपके फ़िल्में साइन करती रहीं। जब कमाल को इस बात का भान हुआ और उन्होंने सवाल किया तो मीना ने साफ़ बात कही—

"चन्दन! मैंने पैदा होते ही पहली चीज़ जो महसूस की, वह रोशनी ही थी। चमक। लाइट्स की लकदक में ही मेरा जीवन गुज़रा है। मुझे नहीं लगता कि मैं इसके बग़ैर रह पाऊँगी, इसलिए मुझे इससे जुदा न करें।

कमाल, मीना से प्यार और अपने संस्कार के पसोपेश में थे। उन्होंने बहरहाल मीना को फ़िल्में न करने के उनके कौल से तो आज़ाद किया, मगर एक के बदले कई शर्तें बाँध कर दीं, मसलन—

"मीना दिन के दस से छह के शिफ़्ट में ही काम करेंगी। वह किसी भी सूरत रात में काम नहीं करेंगी।"

मीना ने शर्त क़ुबूल की।

"मीना अपनी कार के अलावा किसी और की गाड़ी में नहीं बैठेंगी। इससे अफ़वाहें फैलती हैं।" शर्त अहमकाना थी, मगर थी।



तस्वीर, जिसने पाबन्दियाँ नाजिल की

मीना ने शर्त क़ुबूल की।

"मीना आगे कौन-सी फ़िल्में करेंगी, यह कमाल तय करेंगे। क्योंकि वह लेखक और निर्देशक दोनों हैं, इसलिए फ़िल्मों को बेहतर परख सकेंगे।"

मीना ने शर्त क़ुबूल की।

सन् 50 के इस्लामी परिवेश के नज़रिये से देखें तो शर्तों के कारण भी थे।

सन् 1953 में प्रदर्शित हुई फ़िल्म 'फुटपाथ' में मीना कुमारी पर एक गीत फ़िल्माया गया। कैसा जादू डाला रे बलमा न जाने। यह एक स्नान गीत था। इसके फ़िल्मांकन के एक दृश्य में मीना कुमारी अपने कपड़े उतारती हैं और उनका कन्धा नुमायाँ हो जाता है। बाद के दृश्य में उनके घुटने भी दिखते हैं। उन दिनों के हिसाब से इस दृश्य ने ख़ासी सनसनी फैलाई थी, जिसकी आहट जब कमाल तक पहुँची तो वे बज़ाहिर चिन्तित हुए। कमाल बम्बई आ तो गये थे, मगर वह दिल और संस्कारों से अमरोहा के ही थे। कोई शोहदा उनकी पत्नी को फ़िल्मों में ही सही, देखकर सीटी मारे और कुछ इशारे फेंके, यह उनके लिए नाक़ाबिल-ए-बर्दाश्त बात थी।

'शारदा' की शूटिंग राज कपूर के अपने आर.के. स्टूडियो में चल रही थी। इसी दौरान रूस से फ़िल्मी लोगों की एक टीम इंडिया आयी थी और राज कपूर ने उनके सम्मान में अपने घर पर एक पार्टी रखी थी। उन्होंने सेट पर ही मीना कुमारी को भी इस पार्टी में शिरकत की दावत दी जो मीना ने क़ुबूल कर ली, लेकिन घर पर कमाल को फ़ोन कर के बताया कि वो काम की वजह से लेट हो जायेंगी। पार्टी का उन्होंने कोई ज़िक्र नहीं किया।

दूसरे रोज़ कमाल के कोई जानने वाले मिले तो बातों-बातों में उन्होंने ज़िक्र किया कि बिती रात राज कपूर की पार्टी में उनकी मुलाक़ात मीना कुमारी से हुई थी। कमाल अमरोही को यह बात अच्छी नहीं लगी कि किसी पार्टी में मीना कुमारी की मौजूदगी के बारे में उन्हें ख़ुद मीना कुमारी के बजाय किसी और से मालूम हो रही है। उन्होंने मीना से इस बारे में पूछा तो मीना ने कहा कि वह उन्हें नाहक ही परेशान नहीं करना चाहती थी, इसलिए पार्टी की बाबत नहीं कहा।

यह यक़ीनी रिश्तों में आये खटास का आग़ाज़ था। रिश्तों में जब कुछ छुपाया जाने लगे तो या तो डर की पैठ है या फिर बेवफ़ाई की। शर्तों पर टिके रिश्ते खूँटियों पर टँगे कपड़ों जैसे ही होते हैं। उनकी अपनी कोई शक्ल नहीं होती। बीच में भरी हवाओं और अफ़वाहों के हिसाब से ही रिश्ते भी शक्ल लेने लगते हैं।

चुप हूँ किसी वजह से तो पत्थर हमें न जान
दिल पर असर हुआ है तेरी हर बात का

उसके कुछ अर्से बाद इसी क़िस्म का एक और वाक़िया हो गया। प्रदीप कुमार और मीना कुमारी की दोस्ती तब की थी जब हेमेन गुप्ता दोनों को लेकर एक फ़िल्म की चर्चा कर रहे थे। फ़िल्म हालाँकि पूरी नहीं हो पायी, मगर अगले ही साल जी.पी. सिप्पी की फ़िल्म 'अदल-ए-जहाँगीर' के साथ मीना कुमारी और प्रदीप कुमार की जोड़ी जम गयी। फिर तो दर्शकों ने उन्हें 'बन्धन', 'आरती', 'चित्रलेखा', 'भीगी रात', 'बहू बेगम' और 'नूरजहाँ' जैसी कितनी ही फ़िल्मों में साथ देखा। जन्म से बंगाली होने के बावजूद प्रदीप कुमार की ज़ुबान उर्दू में सहज थी। इसी कारण कमाल भी उनसे प्रभावित थे। प्रदीप बहरहाल मीना और कमाल, दोनों

ही के दोस्त थे, मगर कमाल प्रदीप के दोस्त होने के साथ-साथ मीना के पति भी थे। ऐसा पति जो अपनी पत्नी पर मालिकाना अधिकार समझता था।

ऐसे ही आज़माइश वाले दिनों में प्रदीप कुमार ने नयी कार ख़रीदी थी और उन्होंने मीना कुमारी को अपनी गाड़ी में चन्द मील का चक्कर लगाने की दावत दी। कारें मीना कुमारी की कमज़ोरी थी। वह इम्पोर्टेड कार में सैर करने के लिए तैयार हो गयीं, मगर वह अपने पति की शर्त और शंका, दोनों से वाक़िफ़ थीं। लिहाज़ा, जब वो अपने घर के पास पहुँचीं तो प्रदीप की कार से उतर गयीं और टैक्सी लेकर अपने घर गयीं।

मगर इत्तिफ़ाक़न वहाँ से गुज़रते हुए या एहतियातन ही पीछे लगे बाकर ने यह सारा मंज़र देख लिया। वे कमाल के सेक्रेटरी, दोस्त, राज़दार और मीना के पीछे लगाये गये ख़ुफ़िया थे। ज़ाहिर है, उन्होंने कमाल से इस बात का ज़िक्र किया। ग़लतफ़हमियों का सिलसिला कुछ और बढ़ गया।

उधर, मेकअप रूम के बारे में भी कमाल अमरोही ने शर्त रखी थी कि मीना कुमारी के मेकअप रूम में सिवाय हेयर ड्रेसर या मेकअप मैन के अलावा कोई तीसरा आदमी नहीं जायेगा। यह शर्त बेमानी थी। एक अदाकारा के मेकअप रूम में कलाकारों, मेहमानों, पत्रकारों, मेकअप आर्टिस्टों और प्रशंसकों की आवाज़ाही का सिलसिला लगा ही रहता है।

मीना कुमारी कमाल का स्वभाव जानती थीं और फिर यह भी जानती थीं कि शर्त टूटने से तल्ख़ियाँ ही बढ़ेंगी। इसलिए वे ऐसी कोई भी बात कमाल से छुपा जाती थीं। दूसरी ओर कमाल कुछ तो अपने सख़्त मिज़ाज और कुछ मीना का काम देखने की वजह से भी घर के होकर ही रह गये थे। यह बात उनके अहं को लगती भी थी और यही कोफ़्त शर्त टूटने के बहाने लड़ाई-झगड़े में निकल जाती थी। बहुत सम्भव है कि कमाल यदि लेखन और निर्देशन में पहले की तरह व्यस्त रहते तो इतनी छोटी-छोटी बातों पर सोचने का भी वक़्त उनके पास नहीं होता, उस पर प्रतिक्रिया देना तो अलग ही बात थी।

फ़िल्मी दुनिया उसी शय का नाम है जहाँ बाज़-औक़ात बड़े-बड़े तजुर्बेकार और जानकार लोगों के अन्दाज़े ग़लत साबित हो जाते हैं।

मीना कुमारी की अज़नबी ज़िन्दगी की सूरत-ए-हाल बदस्तूर बद-से-बदतर हो रही थी। छोटी-छोटी बातें किसी बड़े झगड़े का सबब बन जाती थीं।

मसलन, मीना कुमारी को बासी रोटी बहुत ज़्यादा पसन्द थी। हालाँकि लोग उसे सेहत के लिए अच्छा नहीं समझते। मगर क्योंकि उन्हें बचपन की ग़रीबी के कारण ही इसकी आदत थी। सो, उन्हें इन्हीं रोटी में चाव आता था, तसल्ली मिलती थी। कमाल अमरोही को बासी रोटी पसन्द नहीं थी और यूँ भी कमाल साहबी तबीयत के आदमी थे, वह इस तरह की आदत पसन्द नहीं करते थे। मीना कुमारी शूटिंग के दौरान भी घर से ही खाना लेकर जाती थीं। सो जब भी उनके पास से कोई गुज़रता तो वह मीना जी की बासी रोटी देखकर यह राय कायम कर लेता कि उन्हें घर में खाने को बासी रोटी दी जाती है। मीना की ख़ामोशी इस राय की तस्दीक ही करती।

बहरहाल, लौटकर फ़िल्मों पर आते हैं। उन्हें हालाँकि 'ट्रैजिडी क्वीन' का ख़िताब फ़िल्मी पत्रिकाओं ने दिया था, मगर वह एक सम्पूर्ण अभिनेत्री थीं। उन्होंने अपने ज़िम्मे आयी सभी भूमिकाओं में जान डाल दी। 1956 में मीना कुमारी की तीन फ़िल्में रिलीज़ हुईं, जिनमें से दो 'दिल अपना और प्रीत परायी' और 'कोहिनूर' क़ामयाब रहीं। मीना कुमारी ने बहुत कम कॉमेडी फ़िल्मों में काम किया। 'कोहिनूर' उनमें से एक थी जिसमें दिलीप कुमार मीना के हीरो थे। इस फ़िल्म में मीरा की कॉमेडी का हुनर निखरकर आया था। फ़िल्म में एक दृश्य है जहाँ शहज़ादी बनी मीना कुमारी को सेनापति जीवन क़ैद कर लेते हैं। नायक दिलीप कुमार चौकीदार को बाँधकर मीना के हाथ में आत्मरक्षा के लिए एक पाइप दे देते हैं और स्वयं भागने के लिए घोड़ा ढूँढ़ने चले जाते हैं। इस दृश्य में चौकीदार को होश आ जाता है। उसके मुँह पर पट्टी बँधी है। उसके हाथ-पैर बँधे हैं। ऐसी स्थिति में भी वह मीना की ओर कूदते-घिसटते बढ़ रहा है। यह एक ऐसा मुश्किल दृश्य था जहाँ मीना को डरना भी है और हास्य भी उत्पन्न करना है।

मीना उसके सिर पर पाइप से वार करती हैं और फिर दिलीप कुमार के आने और उनके पूछने पर कि क्या हुआ, जवाब देती हैं कि *हुआ क्या! मेरी जान निकली जा रही है और यह मनहूस मरता भी नहीं। 'ऊँ ऊँ' किये जा रहा है।*

कहते हैं कि इस संवाद की अदायगी के कारण लोग हँसते-हँसते लोट जाते थे और बार-बार यह फ़िल्म देखने आते थे।

दूसरी फ़िल्म 'दिल अपना और प्रीत परायी' कमाल अमरोही की अपनी प्रोडक्शन थी, मगर इसका निर्देशन किशोर साहू ने किया था। लेकिन कमाल के ख़याल में यह फ़िल्म इतनी ख़राब बनी थी कि वे सोच रहे थे, उसे रिलीज़ ही न करें, मगर पैसा लग चुका था। 'दायरा' से भी नुक़सान ही हासिल था, इसलिए 'दिल अपना और प्रीत परायी' को रिलीज़ करना मजबूरी भी थी। फ़िल्म रिलीज हुई और सुपर हिट हो गयी। बाज़-औक़ात बड़े-बड़े तजुर्बेकार लोगों के अन्दाज़े ग़लत साबित हो जाते हैं।

हासिल हुई भी अक़्ल ए फ़लातूँ अगर तो क्या
चलती नहीं किसी की मुक़द्दर के रू-ब-रू

एक ही भूल

वक़्त करता है परवरिश बरसों
हादिसा एक दम नहीं होता

किसी पश्चिमी दार्शनिक का कथन है कि किसी जीनियस इन्सान के बारे में लोगों को पता होना कि वह जीनियस है, बहुत अच्छी बात होती है। मगर जीनियस इन्सान को ही यह पता होना कि वो जीनियस है, पतन का कारण होता है।

कमाल अमरोही के साथ ऐन यही बात थी। कमाल अपने फ़न के यकता थे, इसमें कोई दो राय नहीं। मुश्किल यह थी कमाल ख़ुद भी मानते थे कि उन जैसा कोई नहीं हैं। उर्दू ज़बान मेरी लौंडी है, वह यूँ ही नहीं कहते थे।



छोटी बहू

और यही कारण था कि तमाम इल्म-ओ-फ़न के बावजूद उन्होंने जितनी फ़िल्म बनायीं। उससे ज़्यादा फ़िल्में बन्द करनी पड़ीं।

'अनारकली', 'आख़िरी मुग़ल', 'मजनूँ', 'राहत' जैसी फ़िल्में बन ही नहीं पायीं और 'पाकीज़ा' तथा 'रज़िया सुल्तान' जैसी फ़िल्मों ने निर्माण की देरी में नये रिकॉर्ड ही बना दिये।

कमाल सनक की हद तक परफ़ेक्शनिस्ट थे। जब तक कोई काम उनके मन मुताबिक़ नहीं होता था, वह टेक री-टेक लेते रहते। सेट और माहौल को भी लेकर वह ख़ासे जागरूक रहते थे। कमाल को इतिहास की बेहद ही अच्छी जानकारी थी, इसलिए वह ऐतिहासिक फ़िल्म बनाते वक़्त सेट और माहौल में कोई कंजूसी या कोताही नहीं बरतना चाहते थे। 'रज़िया सुल्तान' के एक सीन के लिए उन्होंने 5,000 कबूतरों के पाँवों में घुँघरू बँधवाकर उड़ाने की योजना की थी। 'पाकीज़ा' के सेट में जंगल में लगी आग दिखाने के लिए निर्माता से पूरा जंगल ख़रीद लेने की बात भी रखी थी। यही रवैया उनके निर्माताओं को खटकता था। उन्हें लगता था कि कमाल फ़िजूलख़र्ची कर रहे हैं, जबकि अपनी राय पर कायम कमाल को ये चीज़ें फ़िल्म के हिसाब से ज़रूरी लगती थीं।

कमाल मूलतः लेखक थे, लेकिन निर्देशन में हाथ आज़माने और फिर मीना से विवाह के बाद उन्होंने लेखन बिल्कुल ही छोड़ दिया था। वह इसी शर्त पर काम करते कि जिन फ़िल्मों की कहानी लिखूँगा, उन फ़िल्मों का निर्देशन भी ख़ुद ही करूँगा। जानने वाले जानते हैं कि मुम्बई इतनी फ़राख़-दिली से पेश नहीं आती। लिहाज़ा, उनके हाथों से काम निकलता गया।

सोहराब मोदी ने एक फ़िल्म के प्रीमियर शो में मीना कुमारी और कमाल अमरोही को आमन्त्रित किया। आमन्त्रित किये जाने वाले ज़्यादातर लोग ऊँची मकाम वाले लोग थे, जहाँ सोहराब मोदी ने मीना कुमारी का तआरुफ़ महाराष्ट्र के गवर्नर से कराते हुए कहा, "ये हमारे मुल्क की मशहूर अदाकारा मीना कुमारी हैं, फिर उन्होंने कमाल अमरोही की तरफ़ इशारा करते हुए कहा, "और ये उनके शौहर कमाल अमरोही हैं।" इससे पहले कि दुआ सलाम होती, कमाल अमरोही बिफर उठे। उन्होंने ऐतराज़ जताते हुए कहा—"जी नहीं। मैं कमाल अमरोही हूँ और ये हैं मेरी बेगम मशहूर अदाकारा मीना कुमारी।"

रिश्ते ऐसी ही छोटी-छोटी बातों से बिगड़ते-बिगड़ते और बिगड़ते ही चले गये।



मीना और उसकी थाती

'साहिब, बीबी और ग़ुलाम' को सरकारी तौर पर बर्लिन फ़िल्म फ़ेस्टिवल में जाने के लिए चुना गया था। मीना कुमारी को इस फ़िल्म के साथ बतौर मेहमान भेजने का फ़ैसला किया गया। इस वक़्त तक मीना कुमारी मुल्क से बाहर नहीं गयी थीं। इसलिए उन्हें अकेला नहीं भेजा जा सकता था और इसलिए मियाँ-बीवी दोनों के लिए सरकार द्वारा टिकट बनवाये गये थे। मीना इस दौरे को लेकर काफ़ी उत्साहित भी थीं।

लेकिन कमाल अमरोही ने मीना के साथ जाने से साफ़ इनकार कर दिया था। कारण यह कि वह इस फ़िल्म से किसी भी तौर से जुड़े नहीं थे, इसलिए बक़ौल कमाल उनका जाना ठीक नहीं था। एक लिहाज़ से देखा जाये तो यह बात ठीक थी, मगर दूसरे लिहाज़ से, मीना के पति के लिहाज़ से, एक दोस्त के भी लिहाज़ से यह बात ग़लत थी और उस दम्भ को ही पोषित करती थी जहाँ एक पति अपनी पत्नी के साथ-साथ चलने को अपमान मानता है। वह चाहता है कि पत्नी हमेशा उसके ज़ेरे-ए-साया रहे। मीना ने बहरहाल इस ज़िद के आगे घुटने टेक दिये और वह भी बर्लिन फ़िल्म फेस्टिवल में शिरकत से महरूम रहीं।

इस तरह की बातें मियाँ-बीवी के दमियान ख़लिश को बढ़ा ही रही थीं। मीना कुमारी के ख़याल में कमाल अमरोही गैर ज़रूरती अना से भरकर सख़्ती दिखा रहे थे। बात सच भी थी। अदाकारा के रूप में मीना के चढ़ते ग्राफ़ और लेखक-निर्देशक के रूप में कमाल के गिरते ग्राफ़ में मीना की कोई ग़लती नहीं थी। कमाल का अपना स्वभाव, अपनी हेठी ही

उन्हें निर्माता और फ़िल्में न मिलने का कारण थी। उधर, कमाल अमरोही महसूस करते थे कि अब उनकी शिनाख़्त मशहूर अदीब, 'पुकार' और 'मुगले आज़म' जैसी फ़िल्मों के लेखक और 'महल' जैसी मशहूर फ़िल्म के डायरेक्टर की नहीं, बल्कि सिर्फ़ मीना कुमारी के शौहर की रह गयी है। वह 'मिस्टर हीरोइन' बन कर रह गये थे।

इन्हीं दिनों मीना कुमारी ने एक मर्सिडीज़ ख़रीदी थी, लेकिन कमाल अमरोही उस कार में कभी नहीं बैठे। बक़ौल कमाल उन्होंने मीना कुमारी से कहा था कि जब मीना शूटिंग के लिए स्टूडियो में जायें, बेशक मर्सिडीज़ में जायें, लेकिन जब मीना को कमाल के साथ कहीं जाना हो तो वे फिर कमाल की ही गाड़ी में जायें।

यह कहना तो मुश्किल है कि मीना कुमारी को शराबनोशी की लत कब लगी, लेकिन यह बताया जा सकता है कि इसका आग़ाज़ उनकी बे-ख़्वाबी की वजह से हुआ। इनसोमैनिया अर्थात् नींद न आने की बीमारी। इसमें भी मीना की कोई ग़लती हो, ऐसा नहीं लगता। मीना कुमारी एक वक़्त में सोलह-सोलह फ़िल्मों में काम कर रही थीं। कमालिस्तान स्टूडियो लिया जा चुका था। 'पाकीज़ा' फ़िल्म में पैसा पानी की तरह लग रहा था और फिर कमाल बाहर की फ़िल्मों में न लिखने को तैयार थे, न ही कोई लिखवाने को।

अपनी पहली शादी के बाद और मीना से पहले, कमाल ने एक और नतीजाख़ेज़ ज़िन्दगी गुज़ारी थी। और अगर बिना भावनात्मक झुकाव लाये हुए कहूँ तो उन्होंने मीना की ख़ातिर बहुत कुछ त्याग भी दिया था। यह अलहदा बात है कि उन्होंने पहली पत्नी और बच्चों को भी ज़रूरी मकाम दिया, मगर मीना के साथ होते हुए वह मीना के ही रहे। मीना के जीवन में आने के पहले उनके पास शोहरत, दौलत, तन्हाई, अमन और महफ़ूज़ ज़िन्दगी थी, जिसे उन्हें ताक पर रखना पड़ा, ठीक उसी यूनानी चरित्र Orpheus की तरह, जो अपनी प्रेमिका Eurydice को बचाने के लिए सब कुछ पीछे छोड़ आता है और नाकाम होकर बर्बाद हो जाता है। कमाल बाक़ी रचनात्मक लोगों की तरह ही तन्हाईपसन्द और अपने वक़्त के ख़ुद मालिक थे, जिसे अचानक ही मीना से शादी के बाद ख़ुद को मीडिया की चकाचौंध, सवालो जवाब, फ़िल्मी पार्टियों, पब्लिसिटी की चकाचौंध से न चाहते हुए भी दो-चार होना पड़ा।

रेम्ब्रांट में वह अपनी पत्नी मीना से हीरोइन मीना नहीं बल्कि पत्नी मीना होकर आम ज़िन्दगी गुज़ारने की उम्मीद रखते थे। वह उस तहज़ीब के हामी थे, जहाँ औरतें बेपरदा नहीं होतीं, मगर यहाँ तो मीना फ़िल्मी परदे पर ही थीं और हिदायतकारों के इशारे पर थीं। जल्द ही ज़ाहिर हो गया कि उसे अपनी आदत, शौक़ और दिलचस्पियों को यकजा करने में दुश्वारी का सामना करना पड़ेगा। मीना ही नहीं, कमाल के बुलन्द-ओ-बाला ख़्वाबों में भी ज़िन्दगी की सच्चाइयाँ दिखने लगीं।

घरेलू औरत की दिनचर्या में मीना के लिए कोई कशिश नहीं थी। वह बचपन से ही शोर-ओ-गुल, लाइट, कैमरा, एक्शन, हुजूम लोगों की तवज्जो की आदी रही थीं। सो, जल्दी ही यह भी नुमायाँ होने लगा कि ऐसे शौहर के साथ ज़िन्दगी जिसकी सुबह अपने पढ़ने और दोपहर लिखने में निकल आती हो, चीज़ें आसान नहीं होने वालीं।

दरअसल, मीना की तबीयत ही बेचैन और उदास थी। जब वे अवामी नुमाइश या फ़िल्मों में कोई किरदार अदा नहीं कर रही होतीं, तब कमाल का साथ चाहतीं। कमाल तब अपने काम में मसरुफ़ होते। दरअसल, दोनों का ही अपना तन्हा कोना था और एक-दूसरे ने ही खुद इस तन्हा कोने की इज़्ज़त नहीं की।

नींद न आने की आदत तो मीना को कमाल अमरोही से इश्क़ के आग़ाज़ में ही पड़ गयी थी, क्योंकि इन दिनों दोनों रात-भर फ़ोन पर बात करते थे और सितम यह था कि मीना अपनी फ़िल्मी शूटिंग्स की वजह से दिन में भी नहीं सोती थीं। यूँ, उनकी सोने की आदत भी तक़रीबन ख़त्म हो गयी थी, लेकिन ज़ाहिर तौर पर किसी इन्सान का नींद से इस हद तक महरूम रहना एक ख़तरनाक बात थी। अब वे सोना भी चाहती थीं, तो भी नहीं सो पाती थीं।

कमाल ने ही जब इस बात पर ध्यान दिया तो यह परेशानी फ़ैमिली डॉक्टर सईद को बतायी गयी। उन्होंने मीना कुमारी को रोज़ाना रात को थोड़ी-सी मात्रा में ब्रांडी पीने का मशविरा दे दिया। उनका कहना था कि इससे मीना को सुकून मिलेगा और कुछ अरसे बाद वह इस क़ाबिल हो जायेंगी कि बिना ब्रांडी के सहारे के भी सो सकेंगी, लेकिन अफ़सोस कि ऐसा नहीं हो सका।

इस वक़्त शायद डॉक्टर और मरीज़, दोनों में से किसी के वहम-ओ-गुमां में कभी नहीं होगा कि मौत के रास्ते पर यह मीना कुमारी

का पहला क़दम साबित होगा। ब्रांडी को जब मीना कुमारी की ज़िन्दगी में दाख़िल हुए काफ़ी दिन गुज़र गये, तो एक रोज़ कमाल अमरोही ने देखा कि मीना कुमारी की नौकरानी एक गिलास में जो ब्रांडी डालकर उन्हें दे रही थी, वह डॉक्टर की बतायी गयी मात्रा से काफ़ी ज़्यादा थी। इससे पहले उन्होंने इस मामले पर तवज्जो नहीं दी थी। अब उन्होंने देखा, तो नौकरानी को ख़ूब डाँटा कि वह मीना कुमारी को इतनी ब्रांडी न दिया करे।

इस हिदायत पर अमल होने को कुछ अरसा ही गुज़रा था कि एक रोज़ कमाल अमरोही को शक हुआ कि बाथरूम में डेटॉल की शीशी से जो बू आ रही थी, वह दर-हक़ीक़त डेटॉल नहीं, बल्कि ब्रांडी की थी जिसके बारे में कमाल को कतई इल्म नहीं था कि वह कब और कितनी मात्रा में इस्तेमाल होती है। इसमें तो शक नहीं कि मीना कुमारी निहायत मज़बूत इच्छाशक्ति की मल्लिका थीं, जो बरसों से अनिद्रा की मरीज़ होते हुए भी लगातार काम करती रही थीं और ऊपर वाले के करम से अब तक किसी बुरे नतीज़े का शिकार नहीं हुई थीं, लेकिन जैसे ही उन्हें जिस्मानी और रूहानी सुकून का आसरा मयस्सर हुआ, वे ज़्यादा ही तेज़ी से इसकी गुलाम होती गयीं। इस ज़माने में उनकी व्यस्तता का यह आलम था कि उन्होंने एक समय सोलह फ़िल्मों के कॉन्ट्रेक्ट साइन किये हुए थे।

एक तरफ़ इतनी व्यस्तता थी, दूसरी तरफ़ घरेलू ज़िन्दगी में उतनी ही ज़्यादा तल्ख़ियाँ थीं। मियाँ, बीवी के दरमियान हाथापाई की नौबत भी आने लगी थी। खबरे थीं कि एक बार ईद के दिन मीना कुमारी ने कमाल अमरोही से झगड़े और गरमागरमी के बाद उनकी नयी क़मीज़ तार-तार कर दी थी। इस रोज़ कमाल अमरोही ने भी मीना कुमारी पर हाथ उठाया था। बहरहाल, एक मशहूर अदाकारा की घरेलू ज़िन्दगी कैसी भी हो लेकिन फ़िल्म की शूटिंग के लिए सेट पर वो मुस्कुराते हुए ही पहुँचती है। लोगों के सामने भी वे इसी तरह आती हैं और अख़बारों और रिसालों में भी एक हँसते-मुस्कुराते चेहरे की तस्वीरें छपती हैं। और-तो-और मीना कुमारी प्रीमियरों में, शादियों में कमाल अमरोही के साथ भी उनका हाथ थामकर हँसते-मुस्कुराते चेहरे के साथ शिरकत करतीं जबकि घर में मियाँ-बीवी के दरमियान बातचीत बन्द थी।

ज़िन्दगी को भी मुँह दिखाना है
रो चुके तेरे बेकरार बहुत।

मैं चुप रहूँगी

ज़ेहन-ओ-दिल के फ़ासले थे हम जिन्हें सहते रहे
एक ही घर में बहुत-से अजनबी रहते रहे

ज़िन्दगी में दुख-सुख साथ चलते हैं। एक ओर अगर ग़म और नाकामी मिलती है, तो दूसरी ओर ख़ुशी और क़ामयाबी मिल जाती है। इस तरह हिसाब-किताब बराबर होता है और ज़िन्दगी की गाड़ी चलती रहती है। मीना कुमारी को अगर घरेलू ज़िन्दगी में अपनी आरज़ुओं और तमन्नाओं के मुताबिक़ ख़ुशियाँ हासिल नहीं थीं तो बाहर की ज़िन्दगी में अपने काम के सिलसिले में उन्हें बहरहाल ख़ुशियाँ और क़ामयाबियाँ नसीब हो रही थीं।

इसी ज़माने में एक शख़्स बड़ी ख़ामोशी से, उम्मीदों में, मीना कुमारी की कार-कर्दगी का जायज़ ले रहा था। ये साहिब अदाकार, फ़िल्मसाज़, डायरेक्टर और राइटर, सभी कुछ थे और उनका नाम था—गुरुदत्त। उन्होंने कभी ज़िन्दगी में अच्छा-बुरा, दोनों तरह का वक़्त देखा था। निजी ज़िन्दगी में वो एक ऐश दर शाहख़र्च आदमी थे, लेकिन फ़िल्मों के मुआमले में उन्हें जीनियस तस्लीम किया जाता था। उनकी बनायी हुई फ़िल्मों में ज़्यादा आर्ट फ़िल्मों की झलक होती थी और उन्होंने उस वक़्त तक इन फ़िल्मों से दौलत नहीं कमायी थी।

उन दिनों वे अपने दोस्त अबरार अल्वी की फ़िल्म की तैयारियाँ मुकम्मल कर रहें थे। फ़िल्म थी 'साहिब बीबी और ग़ुलाम' और इसकी मज़बूत किरदार छोटी बहू के लिए गुरुदत्त ने मीना कुमारी को ही ज़ेहन में रखा था।

मगर गुरुदत्त ने जब फ़िल्म के सिलसिले में मीना कुमारी को पैग़ाम भेजा तो जवाब माफ़ी की सूरत में आया। कमाल अमरोही ने स्क्रिप्ट देखी

और उन्हें लगा, शराब पीती हुई छोटी बहू का किरदार मीना के करियर के लिए अच्छा नहीं रहेगा। अब यह उनके भीतर के पति का निर्णय रहा या फिर उनके भीतर के निर्देशक का, यह तो कमाल ही जानें। गोया उन्होंने स्क्रिप्ट पढ़कर यह कहकर वापस कर दी कि मीना कुमारी इतनी व्यस्त हैं कि उनके लिए अभी कोई फ़िल्म साइन करना मुमकिन ही नहीं है। गुरुदत्त मायूस हुए और उन्होंने छोटी बहू में मीना की जगह किसी और अदाकारा की तलाश जारी कर दी और इसी सिलसिले में लंदन में रहने वाली छाया आर्या को बम्बई बुला लिया। छाया वहाँ कुछ स्टेज शो तथा ड्रामों में काम कर चुकी थीं।

मगर एक फ़ोटो शूट और फिर कुछ संवाद के बाद ही निर्देशक अबरार अल्वी मायूस हो गये और उन्होंने साफ़ शब्दों में गुरुदत्त से कह दिया कि यह लड़की छोटी बहू के लायक नहीं है। वहीदा रहमान छोटी बहू का किरदार निभाना चाहती थीं, मगर वह उम्र के लिहाज़ से छोटी बहू नहीं लगतीं। नरगिस से भी बात की गयी, मगर वह भी फ़िल्मों को अलविदा कहने का मन बना चुकी थीं।

आख़िरकार, गुरुदत्त ने अलहदा काम किया। उन्होंने छोटी बहू के अलावा जितने भी सीन थे, सब शूट करने शुरू कर दिये। जब बाक़ी का काम हो गया तो एक बार फिर मीना कुमारी से राब्ता क़ायम किया। इस दफ़ा मीना ने ख़ुद स्क्रिप्ट पढ़ी और रात के ढाई बजे फ़ोन कर फ़िल्म के लिए 'हाँ' कही।

इस फ़िल्म में मीना कुमारी हिन्दोस्तान में अंग्रेज़ राज के ज़माने में जागीरदार क़िस्म के बंगाली घराने की छोटी बहू दिखाई गयी थीं जो शानदार हवेली में रहती है। क़ीमती साड़ियाँ पहनती है, सोने और हीरों के ज़ेवरात से लदी रहती है, उसे दुनिया की हर नेमत हासिल है, सिवाय अपने शौहर की मुहब्बत के। शराबनोशी और ऐश-ओ-इशरत की दुनिया में मगन रहने में ही उसका शौहर मशग़ूल है। छोटी बहू अपने शौहर की चाह हासिल करने के लिए हर तरीक़ा आज़माती है, मगर नाकाम रहती है। ऐसे ही एक दिन शौहर को बाहर जाने से रोकने की सूरत में उसका शौहर पूछता है, क्या तुम अपने शौहर के लिए शराब पी सकती हो? छोटी बहू उसके लिए भी तैयार हो जाती है। बदनसीबी यह थी कि ये सब कुछ कर के भी उसे शौहर की मुहब्बत और तवज्जो हासिल न हो सकी।

अलबत्ता उसे शराब की लत ज़रूर लग गयी, जिसने उसे एक ख़तरनाक अंजाम से दो-चार किया। मीना कुमारी ने इस वक़्त तक शराब के असर से आगाह न होने के बावजूद इस तरह यह किरदार अदा किया कि आलोचक और प्रशंसक भी इसे अदाकारी के फ़न की इन्तिहा करार देते हैं। इस वक़्त उनकी उम्र 32 साल थी और वे अपने कॅरियर के ऊँचाईयों पर थीं। यह किरदार क़ुबूल कर उन्होंने न सिर्फ़ ख़ुद को इम्तिहान में डाला था बल्कि अपने करियर के लिए ख़तरा भी मोल लिया था।

1962 में यह फ़िल्म जब रिलीज़ हुई तो कारोबारी एतबार से भी स्वयं गुरुदत्त तथा फ़िल्मी पण्डितों को इस फ़िल्म से कुछ ज़्यादा उम्मीदें नहीं थीं, लेकिन जब सिनेमाघरों के सामने इस फ़िल्म को देखने के लिए आने वालों की लम्बी क़तारें नज़र आने लगीं तो गुरुदत्त, मीना कुमारी और दूसरे लोगों को ख़ुशी के साथ-साथ हैरत होने लगी।

1963 के साल में उन्होंने एक और रिकॉर्ड कायम किया। ग्यारहवें फ़िल्म फेयर अवार्ड के सिलसिले में वह तीन फ़िल्मों में बेहतरीन अदाकारा के अवार्ड के लिए नामज़द हुईं। गोया बेहतरीन अदाकारा के तौर पर उनका मुक़ाबला किसी और से नहीं, ख़ुद अपने आपसे था। 1962 में रिलीज़ होने वाली जिन तीन फ़िल्मों पर वे नामज़द हुई थीं, उनके नाम थे 'साहिब, बीबी और ग़ुलाम', 'आरती' और 'मैं चुप रहूँगी'।

अपनी मुख़्तसर-सी बात में उन्होंने अन्य बातों के अलावा ये भी कहा कि मैं कितनी ख़ुश हूँ। इसकी बयानी लफ़्ज़ों में नहीं कर सकती। अवार्ड के बाद मीना कुमारी ने फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के अशआर ख़ूबसूरती से सुनाये और उपस्थित लोगों से ख़ूब दाद पायी। घर में तो ख़ुशियाँ मयस्सर नहीं थीं, मगर कम-अज-कम बाहर तो उन्हें कोई-न-कोई ख़ुशी हासिल हो ही जाती थी।

इस वक़्त मीना बिमल रॉय की फ़िल्म 'बेनज़ीर' में काम कर रही थीं। उसके अस्सिटेंट डायरेक्टर और नग़मानिगार एक उभरते हुए शायर और अदीब 'गुलज़ार' थे, जिन्हें फ़िल्मी दुनिया की कशिश इस तरफ़ खींच लायी थी और वे यहाँ अलग फ़न आज़मा रहे थे। मीना कुमारी ख़ुद भी शेर-ओ-अदब में रुचि रखती थीं और नाज़ के तखल्लुस से शेर कहा करती थीं। तन्हाई, तंज़, तनक़ीद से तंग आकर मीना बेज़ार हो ही रही थीं।

इन्हीं दिनों दो अदीब जब मिले तो मीना बहुत कम वक़्त में गुलज़ार से काफ़ी प्रभावित हो गयीं।

शूटिंग के दौरान वक़्फा आता तो दोनों अक्सर किसी एक कोने में बैठे शेर-ओ-अदब की बातें करते पाये जाते। शायद मीना कुमारी अपनी घरेलू ज़िन्दगी से बेज़ार थीं। घरेलू ज़िन्दगी लड़ाई, झगड़ों, बहसों से शुरू होकर इन्हीं पर ख़त्म होने लगी थी। पति कमाल अमरोही जो ख़ुद ही आला दर्जे का लेखक/कवि भी थे, मगर अब वह रुमान छोड़कर पति बन बैठे थे। मीना भीतर तक अकेली थीं और इस अकेलेपन का इलाज गुलज़ार में तलाशने की कोशिश कर रही थीं। यह जिस्मानी कशिश से ज़्यादा ज़ेहनी मिलाप का मुआमला था। मीर, दाग़, ग़ालिब, मोमिन से होते हुए बातें मीना पर भी हो ही जातीं। मीना लम्हों की शायरा थीं, वह लम्हे पकड़ लेतीं, उन्हें जज्ब करतीं और फिर गुलज़ार से दुरूस्त करातीं। गुलज़ार जहाँ तक हो सके, ठीक करके रखते, फिर किसी उस्ताद से दुरुस्त कराने की सलाह देते। मीना कुमारी और गुलज़ार की मुलाक़ात और बातचीत अगर किसी फ़िल्म के सेट पर न होती तो फिर किसी-न-किसी वक़्त दोनों के दरमियान फ़ोन पर ज़रूर राबता होता।

कुछ अरसा पहले बिमल रॉय अपनी फ़िल्म 'देवदास' के लिए मीना कुमारी को हीरोइन के तौर पर साइन करने के लिए कमाल अमरोही के पास गये थे। कमाल अमरोही ने न जाने क्यों इस पेशकश को नामंज़ूर कर दिया था और बिमल रॉय को साफ़ जवाब दे दिया था कि मीना कुमारी इस फ़िल्म में काम नहीं कर सकतीं। यह किरदार बाद में सुचित्रा सेन ने किया और फ़िल्म बेहद क़ामयाब रही। मायानगरी में कोई बात ख़ुफ़िया नहीं रहती। सात तालों में बन्द यह राज़ भी बाहर आ ही गया।

'बेनज़ीर' की शूटिंग के दौरान एक बार बिमल रॉय ने महज़ अपनी हैरत दूर करने के लिए मीना कुमारी से पूछा कि उन्होंने इतनी उम्दा फ़िल्म में इतना शानदार किरदार अदा करने से इनकार क्यों किया? इस पर मीना कुमारी ने और भी हैरत का इज़हार करते हुए कहा कि उन्हें तो मालूम ही नहीं कि उनके लिए इस क़िस्म की कोई पेशकश आयी थी। बहरहाल वजह चाहे कुछ भी रही हो, मीना को इस बात से इन्तिहाई दुख पहुँचा था कि आख़िर क्यों कमाल उन्हें ऐसी बेहतरीन फ़िल्मों से महरूम कर रहे हैं? यह एक घटना नहीं थी। ऐसी कई फ़िल्मों से मीना केवल इस

कारण हाथ धो बैठी थीं, क्योंकि कमाल साहब उन फ़िल्मों को 'न' कर चुके थे। क्या अजीब बात है कि मीना की पूरी अदाकारियों में आधे से अधिक फ़िल्में उनकी अपनी चुनी हुई नहीं थीं। पहले बाप और अब पति ही उनकी फ़िल्मों की शिनाख़्त करता था। एक आश्चर्यजनक सत्य यह भी है कि मीना ने जिन सफल फ़िल्मों में काम किया उनसे ज़्यादा सफल वे फ़िल्म हुईं, जो उन्हें ध्यान में रखकर लिखी गयीं, मगर उन्हें मीना तक पहुँचने से पहले ही ख़ारिज कर दिया। मीना कुमारी निजी ही नहीं बल्कि व्यावसायिक कारणों से भी इस रिश्ते से परेशान थी। बेज़ार हो चुकी थीं।

क़माल से अलग होने का फ़ैसला एक झटके से हुआ हो, ऐसा नहीं लगता। 1963 के ख़त्म होते-होते तक मीना कुमारी कमाल अमरोही को छोड़ने का फ़ैसला कर चुकी थीं और कमाल अमरोही को भी इस बात का अन्दाज़ा हो चुका था। वह कोशिश करके भी रिश्ता बचा नहीं सकते थे। आपसी झगड़ों में इन्सान जी भी जाये, पर रिश्ता मर जाता है। वही हुआ। और फिर वो दिन भी जल्दी ही आया जब सारे जज़्ब टूट गये। सारे अहद बिसर गये और सारी बेड़ियाँ खुल गयीं।

था अबस तर्क-ए-ताल्लुक का इरादा यूँ भी।
इश्क़ जिन्दा नहीं रहता है ज़ियादा यूँ भी।।

पिंजरे का पंछी

कुछ तो तिरे मौसम ही मुझे रास कम आए
और कुछ मिरी मिट्टी में बग़ावत भी बहुत थी

5 मार्च, 1964 को एक ऐसा वाक़िया पेश आया, जिसे 'रक्तबीज' कहा जा सकता है। वाक़िये पर मौजूद हर इन्सान के पास इस वाक़िये को लेकर एक कहानी है और भरोसा कीजिए कि हर कहानी पहले से जुदा है। इस वाक़िये को लेकर हर इनसान के पास अपना मसाला है, अपनी कहानी है और अपना ही दृष्टिकोण है। कहानियों में से सच्चाई अगर ढूँढ़ी जाये तो जो वाक़िया सच्चाई के क़रीब जान पड़ता है, उसने मियाँ-बीवी दोनों की अलहदगी में बहुत अहम किरदार अदा किया। इस रोज़ मीना कुमारी की फ़िल्म 'पिंजरे के पंछी' की मुहूर्त यानी शूटिंग का आग़ाज़ फ़िल्मिस्तान स्टूडियो में होना था। आमतौर पर फ़िल्म वाले अपनी हर फ़िल्म का आरम्भ बड़े जोर-ओ-शोर से करते हैं। पहला शॉट लेने का काम एक बड़े यादगार अन्दाज़ में होता है। यह एक तरह की रस्म की बयानगी है। इस फ़िल्म के साथ ही सलिल चौधरी पहली दफ़ा संगीत के साथ-साथ निर्देशन में भी हाथ आज़मा रहे थे।

इस फ़िल्म में मीना कुमारी काम कर रही थीं और उनके साथ साये की तरह लगे रहने वाले बाकर वक़्त से पहले ही आकर इन्तिज़ामात का जायज़ा ले रहे थे। इसी वक़्त में उन्होंने मीना कुमारी की हेयर ड्रेसर बर्था को बुलाकर साफ़ ताक़ीद कर दी कि कोई भी मीना कुमारी के मेकअप रूम में न जाये। लगभग बारह बजे जब मीना कुमारी सेट पर पहुँचीं तो उनका मिज़ाज पहले से ही सख़्त ख़राब दिख रहा था। वो आयीं और अपने मेकअप रूम की तरफ़ चल दीं। हेयर ड्रेसर बर्था रास्ते में खड़ी थी। वो उनके साथ हो ली। बाकर ने बर्था को जो हिदायत की थी कि

मीना कुमारी के मेकअप रूम में ख़ुद मीना के अलावा कोई दूसरा शख़्स न जाये, वो हिदायत बर्था ने मीना कुमारी को बता दी। मीना कुमारी चलते-चलते रुक गयीं। उनके चेहरे पर ग़ुस्सा और नाराज़गी फैल गयी। उन्होंने फ़ौरन गुलज़ार को बुलाया जो क़रीब ही कहीं मौजूद थे और चन्द सेकेंड में ही आ गये। मीना कुमारी ने उन्हें अपने साथ चलने का इशारा किया। मेकअप रूम ऊपर की मंज़िल पर था। वो दोनों साथ-साथ मेकअप रूम की सीढ़ियों की तरफ़ बढ़े। रास्ते में मीना कुमारी को बाकर भी नज़र आये। अब मंज़र यह था कि तीनों लोग साथ-साथ सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। चन्द सीढ़ियों का ये सफ़र कितना हंगामाख़ेज साबित होने वाला था, उसका अन्दाज़ा उस वक़्त तक कोई भी नहीं कर सकता था। ये छोटा-सा फ़ैसला उस वक़्त निहायत फ़ैसलाकुन बन गया था।

मीना कुमारी सबसे आगे थीं, उनके ठीक पीछे बाकर थे और उनके पीछे गुलज़ार।

मेकअप रूम के सामने पहुँचकर मीना कुमारी ने गुलज़ार की तरफ़ देखा और मेकअप रूम की तरफ़ इशारा करते हुए कहा—"आप रुक क्यों गये?" मीना कुमारी के इस तरह साफ़ तौर पर कहने पर गुलज़ार को हौसला मिला और उन्होंने क़दम आगे बढ़ाया, लेकिन बाकर ने उन्हें रोक दिया। गुलज़ार शर्मिन्दगी केसे आलम में बीच में फँसकर रह गये। उन्हें यक़ीनन यह अन्दाज़ा हो गया था कि सूरत-ए-हाल कोई ख़राब रुख़ इख़्तियार करने वाली है। एहसासे-तौहीन से मीना कुमारी का चेहरा सुर्ख़ हो गया। वह इन्तिहाई ग़ुस्से से बाकर पर बिफर पड़ीं—

"तुम कौन होते हो मेरे मेहमान को रोकने वाले? तुम मुझे क्या समझते हो और ख़ुद को क्या समझते हो? तुम्हारे ख़याल में मैं कौन हूँ? बदचलन औरत हूँ क्या जो तुम मेरे मेकअप रूम में लोगों के आने पर पाबन्दियाँ लगाते हो?"

ग़ज़बनाक लहजे में यह सब कुछ कहते हुए उन्होंने आगे बढ़कर सबके सामने गुलज़ार को गले लगा लिया।

मीना कुमारी का बयान है कि बाकर ने उन्हें थप्पड़ मारा, जबकि बाकर ने बाद में कई बयानों में क़सम खाकर कहा कि उन्होंने मीना कुमारी को थप्पड़ नहीं मारा। उनकी इतनी जुर्रत ही नहीं हो सकती थी कि वे मीना कुमारी को थप्पड़ मारते।

वाक़िया ही कुछ ऐसा था कि हंगामा बरपा हो गया। सेट पर घर की बात आम होने लगी। बाकर, कमाल के ड्राइवर थे जिन्हें मीना के साथ लगा दिया गया था। बाकर अपने मालिक के तरफ़दार थे और इसी हक़ से मीना पर हावी हो जाते। बहरहाल, मीना ज़ार-ओ-क़तार आँसुओं में थी। मीना कुमारी ने रोते हुए कहा कि कमाल साहब को बुलाओ। वह आकर फ़ैसला करें कि ये आदमी किस हैसियत से मेरे ऊपर पाबन्दियाँ नाज़िल करता है? मीना कुमारी दुखी थीं और बाकर अपमानित। वह गुस्से में अपने आदमी इकट्ठे कर रहे थे और मुहूर्त पर मौजूद लोग डरे हुए थे। पूरे मुहूर्त का माहौल भयावह हो गया।

बहर-ए-हाल, नरगिस जो क़रीब ही कहीं किसी मौक़े पर आयी हुई थीं, उन्होंने हंगामे और चीख़-ओ-पुकार की आवाज़ें सुनीं। उन्होंने बाकर को भी चीख़ते सुना, जिसके बारे में बाकर का कहना था कि वो तो सबको चुप कराने और मुआमले को ठण्डा करने की कोशिश कर रहे थे। बलराज साहनी भी मौक़े पर आ पहुँचे थे और बाकर ने सूरत-ए-हाल को सँभालने में उनसे भी मदद माँगी थी। बहर-ए-हाल, मीना ने स्टूडियो के ही लैंडलाइन से कमाल को घर पर फ़ोन कराया और उनसे कहा कि वह फ़ौरन स्टूडियो आकर इस बात का फ़ैसला करें कि आख़िर उनकी अहमियत क्या है? कमाल मुआमले की गम्भीरता को नहीं समझ पाये। उन्होंने मीना कुमारी को घर आकर बात करने और मुआमला सुलझाने को कहा। मीना का स्त्री मन जो पहले ही दुखी था, इस उपेक्षा से और भी टूट गया। बाद उसके मुहूर्त धरी की धरी रह गयी क्योंकि मीना कुमारी, पाँव पटकती हुई यह कह कर कि "कमाल साहिब से कह देना कि मैं घर नहीं आऊँगी।" इतना कहते हुए मीना वहाँ से चली गयीं।

वाक़िया-2

सन् 1964 की 5 मार्च थी। मीना कुमारी स्टूडियो में शूटिंग कर रही थीं। प्रतिदिन की तरह वह अपनी कार में घर से स्टूडियो आयी थीं। तभी स्टूडियो के किसी आदमी ने मीना को सलाम किया। मीना ने उसे कुछ रुपये इनाम देने के लिए अपना बटुआ खोला तो वह ख़ाली था। उसने अपने सेक्रेटरी और कमाल के विश्वासपात्र बाकर अली से कहा कि उसकी ओर से अमुक व्यक्ति को कुछ रुपये दे दिये जायें, पर आदत के अनुसार बाकर टाल गये।

यूँ ज़ाहिरा तौर पर बात आयी-गयी हो गयी, परन्तु मीना के लिए यह बात बर्दाश्त के बाहर बन गयी, एक नौकर उनकी आज्ञा को इस प्रकार नज़र अन्दाज़ करे? वह रात-दिन मशीन की तरह काम करके लाखों कमाये और उन्हें इतना भी अधिकार नहीं कि वह अपनी इच्छा से किसी को इनाम में कुछ रुपये भी दे सके? मीना इस अपमान को सहन न कर सकीं। उन्होंने कमाल के विश्वासपात्र से कुछ कहा, पर वह भी उसे यूँ अनसुनी कर गया मानो उसके सम्मुख मीना कुमारी का कुछ महत्त्व ही नहीं।

इस छोटी-सी बात का परिणाम इतना बड़ा होगा, यह न तो कभी बाकर ने सोचा था और न कमाल ने। फलस्वरूप, जब शाम को मेकअप का समय हुआ और बाकर मीना को लेने आये तो उन्होंने जाने से इनकार कर दिया।

पंछी ने पिंजरा छोड़ दिया। संयोग देखिये कि पिंजरा छोड़ने की यह घटना घटी भी तो फ़िल्म 'पिंजरे के पंछी' के सेट पर।

नरगिस दत्त पास ही किसी दूसरे सेट पर थीं। जब वह सेट पर पहुँची तो उन्होंने भी बाकर को चीख़ते-चिल्लाते देखा। बाद में बाकर आसपास से लोग इकट्ठे कर लाये जिन्होंने स्टूडियो को घेर लिया। मारपीट की नौबत आ गयी। ऐसी स्थिति में नरगिस दत्त के सहयोग से बैरिस्टर रजनी पटेल को मामले में शामिल किया। नये वक़्त की हीरोइन अमीषा पटेल के दादा श्री रजनी पटेल एक नामी वकील होने के साथ-साथ जाने-माने ट्रेड यूनियन लीडर और राजनेता भी थे। बैरिस्टर रजनी पटेल ने अपने रसूख़ का इस्तेमाल कर बहरहाल सेट पर मामले को शान्त कर दिया।

मामला शान्त होने के बाद शाम में स्टूडियो से निकलकर मीना कुमारी सीधे श्री रजनी पटेल के पास पहुँचीं। उनसे सलाह-मशवरे के बाद यह पाया कि फ़िलहाल मीना कुमारी को अपनी बहन मधु के घर चले जाना चाहिए, बाद में उनके लिए किसी मुनासिब जगह का बन्दोबस्त किया जायेगा। रजनी पटेल ने अपने असिस्टेंट किशोर शर्मा को हिदायत कर दी कि वो इन हालात में मीना कुमारी की मदद करने के लिए उनके साथ रहे। किशोर शर्मा ने इस हवाले से मीना कुमारी की बहन मधु को फ़ोन किया और उनके पति महमूद से भी बात की, उन्हें बताया कि

मीना थोड़े दिनों के लिए उनके यहाँ रहने आ रही हैं। महमूद का घर अँधेरी इलाक़े में था। वहाँ जाने से पहले बैरिस्टर रजनी पटेल के कहने पर ही मीना कुमारी ने अँधेरी पुलिस स्टेशन में एक दरख़्वास्त भी जमा करा दी कि उनकी जान को ख़तरा है, इसलिए पुलिस की जानिब से उन्हें हिफ़ाज़त दी जाये।

दूसरी तरफ़ बाकर ने घर पहुँचकर कमाल अमरोही को तफ़सील से बताया कि फ़िल्म 'पिंजरे के पंछी' के मुहूर्त के मौक़े पर क्या हुआ था। उन्होंने कमाल को यह भी बताया कि मीना जाते हुए कह गयी हैं कि अब वो कमाल साहब के घर वापस नहीं आयेंगी। कमाल अमरोही ने बातें सुनीं। विचार किया और फिर मीना का इन्तज़ार करने लगे।

दिन गुज़रा, शाम ढल गयी, रात हो गयी लेकिन मीना कुमारी घर वापस नहीं आयीं। कमाल का जज़्ब जवाब देने लगा। उनकी परेशानी बढ़ती गयी। शाम की घड़ियाँ चढ़कर साढ़े आठ बजाने लगीं तो कमाल को तशवीश हुई और वो अपने आपसे पूछे बग़ैर न रह सके कि हालत की गम्भीरता का अन्दाज़ा लगाने में वे कहीं ग़लती तो नहीं कर रहे थे। मसला यह था कि अगर वे मीना कुमारी को तलाश करने के लिए निकलें तो जायें कहाँ? उन्होंने कई स्टूडियोज़ और जानने वालों के घरों पर फ़ोन किये, लेकिन कहीं से मीना कुमारी के बारे में कुछ पता नहीं चला। आख़िरकार हार मानकर कमाल अमरोही मीना कुमारी की तलाश में घर से निकले। लेकिन ये ऐसा ही था जैसे भूसे के अम्बार में कोई शख़्स सूई तलाश करने की कोशिश करे। सो सड़क, दरिया, समन्दर, सेट, स्टूडियो, अस्पताल सब छान मारा। आख़िरकार बदहवासी में ही उन्हें अदाकार महमूद के घर जाने का ख़याल आया जो मीना कुमारी के बहनोई भी थे। वे अँधेरी स्थित महमूद के घर पहुँचे तो उन्हें गेट पर दो-तीन पुलिसवाले इस तरह खड़े नज़र आये, जैसे पहरा दे रहे हों। उन्हें यक़ीन हो गया कि मीना कुमारी उसी घर में मौजूद हैं। कमाल अमरोही गाड़ी से उतरकर गेट पर पहुँचे और पुलिसवालों से पूछने लगे कि वे वहाँ किस सिलसिले में खड़े हैं? पुलिसवाले उन्हें जवाब दे ही रहे थे कि अन्दर से महमूद निकल आये। उन्होंने कमाल अमरोही से ख़ैर-सलामती पूछी। उनके सवालों से बेअसर कमाल ने परेशान होते हुए पूछा—

"क्या मंजु यहाँ है?"

महमूद ने जवाब में सच कहा—

"जी हाँ...ऊपर की मंज़िल पर हैं। कमरे में आराम कर रही हैं।" कमाल ने कहा, "मैं अपनी बीवी से बात करना चाहता हूँ।" जिसके जवाब में महमूद ने इल्तिज़ा करते हुए ही कहा कि आज आपका उनसे बात करना मुनासिब नहीं है, उनकी तबीयत भी ठीक नहीं है। बेहतर हो कि आप किसी और दिन बात कर लीजिएगा। कमाल ने महमूद की बात को तरजीह न देते हुए उनकी पत्नी मधु से इस बात की गुज़ारिश की कि वह मीना तक उनका यह सन्देशा पहुँचा दें कि वह उनसे बात करना चाहते हैं।

मधु पैग़ाम लेकर गयीं और वापस आकर पैग़ाम सुनाया कि मीना उनसे बात करना नहीं चाहतीं।

कमाल को मीना के रूठने का अन्दाज़ा था, मगर उन्हें उनके न तो इस तरह कठोर हो जाने का अहसास था और न ही उनका पैग़ाम सुना रहे दोनों लोगों पर विश्वास। वह अपनी पत्नी से मिलना चाह रहे थे। उनसे बात करना चाह रहे थे। लिहाज़ा, वह इस पैग़ाम के बावजूद ऊपर पहली मंज़िल पर पहुँच गये। उन्होंने कमरे का दरवाज़ा खटखटाया जिसमें उनकी मीना मौजूद थीं, मगर उनकी दस्तक का कोई जवाब न मिला। उन्होंने दरवाज़ा खोलने की कोशिश की, लेकिन वह भीतर से बन्द था।

कमाल हद की हद तक के ग़ैरतमन्द इन्सान थे। उनकी मीना से और दुनिया से सारी परेशानी ही ग़ैरती थी। कमाल के फ़िल्मों में आने से पहले फ़िल्मी लेखकों को मुंशी कहा जाता था। कमाल ने ही पहली दफ़ा इस पर एतराज़ किया और कहा कि लेखन एक अदद कला है। यह कोई मुंशीगीरी नहीं है। इसलिए हमें हमारा हक़, हमारा नाम दिया जाये और फिर उसके बाद से लेखकों को मुंशी कहने का चलन हट गया।

बहरहाल बात यह थी कि कमाल की ग़ैरत का पर्चा-पर्चा उनके अपने लोगों के बीच ही उड़ रहा था। उन लोगों के बीच उड़ रहा था जिन्हें कभी कमाल ने अपने बराबर नहीं समझा, मगर तब कमाल ने अपनी ग़ैरत को, अपने दम्भ को ज़ब्त किया और मीना से कहा—

"मंजु दरवाज़ा खोलो!"

भीतर से कोई आवाज़ नहीं आयी।

"मंजु घर चलो मंजु, कमाल ने फिर गुज़ारिश की!"

अब भी कोई हरकत कमरे के भीतर से नहीं हुई।

"तुम्हारी जो भी शिकायत है, वह मुझे सुनने का मौक़ा तो दो! दरवाज़ा खोलो मंजु। देखो! मेरे और तुम्हारे दरमियान तो कोई बात नहीं हुई, कोई झगड़ा नहीं हुआ। तुम्हारी जो भी बात हुई है, बाकर से हुई है। बहर-ए-हाल फिर भी मैं ही माफ़ी मांगता हूँ और तुम्हें यक़ीन दिलाता हूँ कि आइन्दा बाकर हमारे घर में क़दम नहीं रखेगा। मंजु, इससे पहले कि मामला हमारे हाथ से निकल जाये, हर तरफ़ इस बात के क़िस्से हों और हमारी बदनामी हो, घर वापस चलो, मंजु! मैं तुम्हें लेने आया हूँ।"

फिर भी कोई आवाज़ नहीं आयी। कोई शिकन तक नहीं आयी। देर तक बेहिसी छायी रही। दरवाज़े पर कमाल के हाथों की थाप धीमे-धीमे कम होती गयी और फिर रुक गयी।

अपनी इस हताश-सी इल्तिज़ा के बाद कमाल अमरोही ने थोड़ी देर इसलिए भी इन्तज़ार किया कि शायद कुछ जवाब आये या मीना का दिल पसीजे तो वह दरवाज़ा खोल ही दें, लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। इस दौरान महमूद और उनकी बेगम मधु भी ऊपर आ गये। उन्होंने फिर कमाल से इल्तिज़ा की कि वह इस रात बात ख़त्म करें। एकाध दिन में मीना आपा का ग़ुस्सा ठण्डा हो जायेगा, फिर वह ख़ुद-ब-ख़ुद मान जायेंगी।

कमाल फिर भी एक आख़िरी कोशिश कर लेने के हामी थे। अक्सर मीना से उनके झगड़े हुए थे। शायद आम मियाँ-बीवी से ज़्यादा ही। अक्सर मीना उनसे रूठी भी थीं और महज़ एक पान की गिलौरी, एक अदद किताब, एक अदद ड्राइव पर मीना भी मान जाती थीं। मगर आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ था कि मीना न सिर्फ़ घर छोड़ दें, बल्कि उनसे बात भी न करें। कमाल ने अपनी ग़ैरत को निचले पायदान पर रखते हुए भी आख़िरी कोशिश करनी चाही। पूछने पर मालूम चला कि मीना के कमरे में एक फ़ोन मौजूद है, जिससे नीचे वाले कमरे में लगे फ़ोन से बात की जा सकती है। कमाल बदहवास ही नीचे वाले कमरे में गये और मीना वाले कमरे में फ़ोन मिलाया। घण्टी बदस्तूर बजती रही देर तक। फ़ोन किसी तौर नहीं उठा।

कमाल हार गये, प्रयास हार गया। प्रेम हार गया और प्रेम के हारते ही ग़ैरत उठ खड़ी हुई। दम्भ उठ खड़ा हुआ। प्रेमी के भीतर का

पति उठ खड़ा हुआ। उन्होंने मीना के दरवाज़े पर जाकर बुलन्द आवाज़ में कहा—

"ठीक है मंजु! तुम नहीं आना चाहतीं! फिर यही तय रहा। मैं अब दोबारा तुम्हें लेने नहीं आऊँगा, हाँ मगर मेरे घर के दरवाज़े तुम्हारे लिए हमेशा खुले हैं। अब अगर आना हो तो तुम्हीं आना।"

कमाल उस रोज़ महमूद के घर से मीना को छोड़कर निकल गये या मीना उस रोज़ महमूद के घर में रह कर कमाल से दूर हुईं या उनसे आज़ाद हुईं, यह कहना तो मुश्किल है। हाँ, इस बात की पुष्टि की जा सकती है कि दोनों ने ही आख़िरी दम तक अपनी बात रखी।

ये तो आग़ाज़ था जिसने रुला दिया है तुझे,
सँभाल ख़ुद को, अभी दास्तान बाक़ी है।

सहारा

तुझसे बिछड़ के हम भी मुक़द्दर के हो गये
फिर जो भी दर मिला है उसी दर के हो गये।

मक़बूल अफ़सानानिग़ार और फ़िल्म लेखक कृश्न चन्दर ने फ़िल्म इंडस्ट्री को बहुत क़रीब से देखा, समझा और परखा है। उनकी बहुत सारी कहानियों में फ़िल्म नगरी की बात ज़रूरी तौर पर आयी है। बक़ौल कृश्न चन्दर ही, यहाँ (बम्बई में) दोस्ती जिस्म से और दुश्मनी ज़ेहन से निभाई जाती है।

दुश्मन कहना दुरुस्त नहीं होगा, लेकिन कमाल अमरोही ने अपनी हठबोली, कठबोली, किसी हद तक भाषायी और जातिगत दम्भ की वजह से बम्बई में दोस्त तो बनाये, मगर अनगिनत लोगों की नाराज़गी भी हासिल कर ली।

महमूद साहब भी उन्हीं में से एक थे। कोई नाराज़गी तो नहीं, लेकिन महमूद साहब कमाल साहब के बारे में तल्ख़ राय ज़रूर रखते थे। कारण वही, जो फ़िल्म नगरी में सबसे आम है। अपनी जद्दोजहद के दिनों में महमूद साहब एक बार काम की तलाश में कमाल साहब से मिले थे। महमूद साहब के शारीरिक गठन को देखकर कमाल साहब ने तंज़ कर दिया था। उन्होंने कहा कि इस वक़्त मेरे पास ट्रक ड्राइवर का कोई किरदार नहीं है, अगर कभी हुआ तो मैं आपको ज़रूर परेशान करूँगा। ग़ौरतलब यह भी है कि तब महमूद साहब निर्माता पी.एल. सन्तोषी के ड्राइवर थे और उनका शरीर भी कसरती था। जद्दोजहद के दिनों में मज़ाक़िया बात भी दिल को लगती है। यह बात महमूद साहब के अहं को लग गयी और उन्होंने ठान लिया कि वो एक दिन कमाल अमरोही के बराबर खड़े होकर दिखायेंगे। इसी ज़िद में महमूद ने सफल होने के

बाद मीना कुमारी की बहन मधु से शादी की ताकि वह उन्हें जता सकें कि सामाजिक रूप से भी अब वह कमाल के बराबर हैं।

यह भी एक कारण था कि जब मीना कुमारी ने कमाल का घर छोड़ा तो रजनी पटेल के कहने पर महमूद ने फ़ौरी तौर पर मीना को पनाह देने की हामी भर दी, मगर महमूद के घर पैराडाइज़ में रहते हुए ही मीना कुमारी को अहसास होने लगा था कि उनका यहाँ रहने का फ़ैसला दुरुस्त नहीं था। वे गोया एक पिंजरे से निकलकर दूसरे पिंजरे में आ गयी थीं। मीना कुमारी को यहाँ हालाँकि बाक़ायदा एक अलग आलीशान कमरा दिया गया था, मगर इस घर में रहने वाले लगभग अड़तीस लोगों ने मीना कुमारी पर पूरी तरह नज़र रखना अपना फ़र्ज़ समझ लिया था। वो देखते कि कौन मीना कुमारी से मिलने आ रहा है, वो ख़ुद कहाँ जा रही हैं, कहाँ से आ रही हैं। वे उनकी डाक जाँचा करते। उनके लिए कोई फ़ोन आता तो वो तफ़तीश करते कि कौन फ़ोन कर रहा है, क्यूँ कर रहा है। बाद के दिनों में स्वयं महमूद साहब ने कहा था कि वह मीना जी के कमरे के आने वाली बू से आने वाले की पहचान कर लेते थे। यदि सिगरेट की बू आ रही होती तो एक मशहूर प्रोड्यूसर, यदि बीड़ी की महक से कमरा भरा होता तो एक फ़िल्म लेखक और यदि शराब का तेज़ भभका आता तो एक उदीयमान नायक।

बहरहाल, महमूद ही क्या, उन दिनों मीना को जानने वाला हर एक आदमी, चाहे वे अदाकार हो चाहे गीतकार या फिर अफ़सानानिगार, सब ही के पास कमाल का घर छोड़ने की बाबत अपने सवाल थे और फिर वे मीना की हालपुर्सी भी लेना चाहते थे। सो, सब ही लोग महमूद के घर आते। मगर उन लोगों के साथ इतने सवाल, इतने जिरह, इतने तंज़ किये जाते कि उनका मीना से मिलना दूभर हो जाता। मीना ख़ुद भी यह जंजाल देख समझ रही थीं। लिहाज़ा, उन्होंने किशोर शर्मा को हिदायत दी कि वे उनके लिए कोई मकान तलाश करें। किशोर शर्मा ने उनके लिए जुहू के इलाक़े जानकी कुटीर में एक मकान तलाश कर लिया। मीना ने उसे किराये पर ले लिया और महमूद का घर छोड़ दिया।

जानकी कुटीर में भी मीना कुमारी के साथ रहने वालों की तादाद कुछ कम न रही। उनकी सौतेली बहन शमा की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। शमा के पति टैक्सी चलाते थे। सो, मीना ने अपनी तन्हाई काटने के

लिए शमा, उनके बच्चे और कई दूसरे अज़ीज़ रिश्तेदारों को अपने साथ रहने के लिए बुला लिया।



मीना और महमूद

महमूद साहब दिलफेंक इन्सान थे। वह स्वघोषित बेवफ़ा थे। उनके अफेयर के चर्चे पत्र-पत्रिकाओं के लिए मासिक स्तम्भ थे। जिन दिनों मीना कुमारी महमूद के घर में रह रही थीं, उन दिनों उनके वकील किशोर शर्मा का महमूद साहब के घर आना-जाना था। धीरे-धीरे किशोर शर्मा और मीना की छोटी बहन मधु में नज़दीकियाँ बढ़ीं और मधु ने भी महमूद का घर छोड़ दिया और मीना के साथ रहने लगी थी। किशोर शर्मा भी उन्हीं के साथ पाये जाने लगे थे। बाद में बक़ौल महमूद, उन्होंने मीना कुमारी के कहने पर ही मधु को तलाक़ दे दिया। आख़िरकार किशोर शर्मा और मधु ने शादी कर ली।

किशोर शर्मा और मधु भी मीना कुमारी के साथ ही जानकी कुटीर में रहने लगे। किशोर शर्मा ने मीना कुमारी के वे सारे काम सँभाल लिए थे जो पहले बाकर और कमाल अमरोही करते थे। फ़िल्मों के कॉन्ट्रैक्ट

साइन करना, फ़ीस लेना, आयकर अदा करना इत्यादि तमाम ज़िम्मेदारियाँ उन्होंने अब ख़ुद सँभाल ली थीं। मीना कुमारी के घर और उनकी ज़िन्दगी में किशोर शर्मा का किरदार बेहद अहम हो गया था। मीना कुमारी ने जानकी कुटीर में अपने पाँच साल गुज़ारे। उनकी ज़िन्दगी का यह वक़्त इस एतबार से अहम था कि इसी दौरान ब्रांडी पीने की उनकी वह आदत जो एक-दो घूँट से शुरू हुई थी, यहाँ आने के बाद तेज़ी से बढ़ती गयी। जल्द ही यह आम हो गया कि दिन में एक बोतल ख़त्म कर लेना उनके लिए कोई ख़ास बात न रही। रोक-टोक करने वाला कोई था भी नहीं, जो लोग थे, उनके लिए वह कमाऊ मशीन थीं। ऊपर से रोक-टोक पर अब उन्हें मानना भी नहीं था। पीने का आलम इस क़दर बुरा रहा कि ज़्यादातर वह ख़ालिस शराब ही पी जाती थीं। धर्मेन्द्र तक़रीबन रोज़ाना उनके यहाँ आते थे और जाकर उनकी इस नशिस्त के साथी बन जाते थे जब बोतल उनकी साथी होती थी। मीना कुमारी धर्मेन्द्र को 'धरम' कहकर पुकारती थीं और रफ़्ता-रफ़्ता वे अपने दोस्तों और प्रशंसकों में भी इसी नाम से पुकारे जाने लगे थे। अक्सर लोग ये भी कहते हैं कि पीने के मुआमले में धर्मेन्द्र ने मीना कुमारी की हौसला-अफ़ज़ाई ही की।

और काम तो फिर काम ही था। रात गये तक काम भी करना पड़ता था। वो बहुत ही कम वक़्त के लिए सोती थीं। ख़ुराक का कोई ख़ास ख़याल नहीं रखती थीं। किसी भी क़िस्म की वर्ज़िश नहीं करती थीं। ज़ाहिर है, इस क़िस्म की बदइन्तजामियों ने उनके शरीर पर बुरा असर डाला। यूँ भी फ़िल्मों में हीरोइन का छरहरा बदन होना पहली शर्त होती है, मगर मीना मोटी होने लगीं। कूल्हे के साथ का हिस्सा चौड़ा और भद्दा दिखने लगा। जिस फ़िल्म 'पिंजरे के पंछी' के मुहूर्त पर ही मीना कुमारी ने कमाल का घर छोड़ा था, उसी फ़िल्म के रिलीज़ होते-होते उनका शरीर ख़ासकर पेट और कमर का हिस्सा वज़नी हो गया। उनके ड्रेस डिजायनर चाहे शेखर हो या जगत् या कोई और सबको विशेष हिदायत इस बात की रहती थी कि उनके पेट का हिस्सा खुला न दिखे, जिससे उनके वज़नी होने का अन्देशा भी देखने वालों तक न जाये।

मगर अत्यधिक शराब का बुरा असर तो उनके चेहरे पर भी दिखने लगा था। सलिल चौधरी कहते हैं कि 'पिंजरे के पंछी' की कहानी अच्छी होने के बाद भी मीना कुमारी के बढ़ते वज़न ने भी दर्शकों को फ़िल्म से दूर किया। यही बात तब के आलोचकों ने भी कही थी।

ऐसा नहीं था कि मीना कुमारी इस बात को नहीं समझती थीं, ख़ूब समझती थीं। सायरा बानो, मुमताज़ और शर्मिला टैगोर जैसी नयी हीरोइनों के आ जाने से और पश्चिमी देशों की देखा-देखी वैसी ही बन रही फ़िल्मों ने यह बात तो साफ़ कर दी थी कि मीना कुमारी सरीखी नायिकाओं का दौर अब बस चुकने ही वाला है और इसी कारण उन्होंने बाद के दिनों में 'बहारों की मंज़िल', 'अभिलाषा' जैसी फ़िल्में कीं, जिनमें वह रहमान और अभी भट्टाचार्य की साली/पत्नी बनी दिखाई दीं या फिर 'दुश्मन' और 'मेरे अपने' जैसी फ़िल्में, जिनमें वे विधवा या बूढ़ी भूमिकाओं में नज़र आयीं।

अभिनेत्री से चरित्र अभिनेत्री जैसी भूमिकाओं को करने का कारण फ़िल्मों का बदलना ही नहीं उनके स्वास्थ्य का गिरना भी था। वे अक्सर बीमार भी रहने लगीं। वैसे बीमारी उनके लिए कोई नयी चीज़ नहीं थी। वो बचपन से ही अक्सर बीमार होती थीं। मीना और दवाओं का बचपन ही से चोली-दामन का साथ रहा था। उनके निजी डॉक्टर शाह ने कई बार मीना कुमारी से यह इल्तिज़ा की थी कि अगर वे शराबनोशी मुक़म्मल तौर पर नहीं छोड़ सकतीं तो कम ही कर दें। मीना कुमारी की समस्या ही यह थी कि वह हर अच्छा मशवरा देने वाले के सामने निहायत ही प्यार से सर हिलाती थीं और निहायत शीरीं लहजे में उसे यक़ीन दिलाती थीं कि वे उसके मशवरे पर ज़रूर अमल करेंगी, लेकिन करती कभी नहीं थीं। अपनी ज़िन्दगी और हालात से भागे और घबराये लोग अक्सर शराब को एक सहारा समझ कर इससे जुड़ जाते हैं जबकि शराब उनके लिए सहारे के बजाय एक श्राप साबित होती है। मीना के साथ भी यही हुआ।

सेहत फिर सेहत ही है। उसे बलात् ख़राब करने के लिए की गयी हर कोशिश जमा होती जाती है और फिर एक दिन असर नुमायाँ होता है। यूँ ही एक दिन घर में उठकर गुसल जाते वक़्त उन्हें चक्कर आया और वह बिस्तर पर आ गयीं। डॉ. शाह को डर था कि मीना कुमारी की बीमारी जितनी बज़ाहिर दिखाई देती है, उससे कहीं ज़्यादा संगीन है। आख़िरकार चन्द ज़रूरी टेस्ट कराने पर उनका शक दुरुस्त निकला। पता यह चला कि मीना कुमारी को जानलेवा बीमारी है—लीवर सिरोसिस। उनका जिगर नाकारा हो रहा था और काफ़ी बढ़ चुका था और इस कारण भी उनका पेट फूला दिखाई देने लगा है। यह राज़ उन पर यकदम न खोलकर यह

कहा गया कि वे अस्पताल में दाख़िल हो जायें, लेकिन मीना कुमारी किसी की बात मानने के लिए तैयार नहीं थीं। उन्हें इस बीमारी के अंजाम का अन्देशा नहीं था। आख़िरकार जब उनकी तबीयत ज़्यादा ख़राब हुई तो उनके घर में मौजूद अज़ीज़ और रिश्तेदार उन्हें ज़बरन अस्पताल ले गये। चन्द दिन के इलाज के बाद उनकी तबीयत में मामूली सुधार तो हुआ, मगर डॉ. शाह जानते थे कि उन्हें बेहतर इलाज की ज़रूरत है और वह इलाज हिन्दोस्तान में सम्भव नहीं है क्योंकि उनका लीवर अगर और ख़राब हुआ तो भी यह बस के बाहर हो जायेगा। डॉक्टर शाह ने बेहतर इलाज के लिए लंदन जाने का मशवरा दिया, जिसे मीना कुमारी ने काम का बहाना देकर टाल दिया। किशोर शर्मा जानते थे कि मीना को इलाज की सख़्त ज़रूरत है और वह सीधी नहीं मानती तो टेढ़े मनाना पड़ेगा।

टेढ़ा इलाज यानी नरगिस दत्त। मीना कुमारी ने नरगिस दत्त की बात शायद ही कभी टाली हो। किशोर ने किसी तरह नरगिस से राब्ता कायम किया और फिर मुश्किल बतायी। नरगिस दत्त ने फ़ौरन किशोर को लंदन का टिकट कराने को कहा। किशोर समझ गये कि नरगिस, मीना को मना ले जायेंगी।

किशोर शर्मा ने मीना कुमारी को लंदन ले जाने के इन्तज़ामात किये। क्योंकि किशोर क़ानून की पढ़ाई के सिलसिले में पहले भी लंदन में रह चुके थे और मीना इससे पहले एक दफ़ा ही विदेश गयी थीं, रूसी सरकार के बुलावे पर मॉस्को फ़िल्म सम्मेलन में हिस्सा लेने के लिए। सो उन्हें भी विदेश यात्रा का कोई विशेष अनुभव नहीं था। इसलिए मीना कुमारी ने किशोर से ही अपने साथ लंदन ले जाने का फ़ैसला किया। जून में मीना कुमारी और किशोर लंदन के हीथ्रो एयरपोर्ट पर उतरे। इस माह के दौरान लंदन का मौसम निहायत खुशगवार होता है। रॉयल फ्री हॉस्पिटल, लंदन में हिपैटोलॉजी की मशहूर डॉक्टर शेला की निगहबानी में उनका इलाज शुरू हुआ। शेला लीवर सम्बन्धी विषयों में विश्वभर में माननीय थीं। लीवर सम्बन्धी रोग को पेट सम्बन्धी रोगों से अलग कर हिपैटोलॉजी को अलग ही डिपार्टमेंट के रूप में स्थापित करने में उनका बहुत योगदान रहा था।

शेला की देख-रेख में दो माह मीना कुमारी का इलाज जारी रहा, जिसके दौरान उनके लीवर की बायोप्सी भी हुई।

लगभग दो माह के इलाज के बाद अगस्त के दौरान मीना कुमारी की हालत बहुत बेहतर हो गयी। डॉक्टर शेला के ही कहने पर वह सेहत और बहाल करने के लिए किशोर शर्मा के साथ स्विट्ज़रलैंड गयीं। वहाँ के ख़ूबसूरत नज़ारों के दरमियान साफ़ और सुन्दर आब-ओ-हवा में मीना कुमारी बिल्कुल तन्दुरुस्त और सेहतमन्द दिखाई देने लगीं।

अब उन्हें वापस भारत आना था। आराम और सेहत पर वक़्त गुज़ारने और इसी दौरान शराबनोशी मुकम्मल तौर पर बन्द हो जाने की वजह से वो बिल्कुल सेहतमन्द दिखायी देने लगी थीं। जिस्म भी छरहरा हो गया था। डॉ. शैला शरलॉक ने उन्हें रुख़सत करते वक़्त कहा कि–

"जिस दिन तुम यह इरादा कर लो तुम अब और जीना नहीं चाहतीं, उस दिन एक पैग पी लेना।" डॉक्टर ने उन्हें शराबनोशी से मना करने के अलावा ये हिदायत भी दी थी कि वे फ़िल्मों के काम फ़िलहाल शुरू न करें और जब शुरू करें तो सिर्फ़ इतना जिससे उन्हें कभी थकान का अहसास न हो।

लेकिन अगर वे बातें हो जातीं जो डॉक्टरी किताबों में लिखी हुई हैं, तो फिर इन्सान, इन्सान कैसे रहता? वापस आते ही डॉक्टर की ये हिदायत धरी-की-धरी रह गयी। रमणीक लाल दवे, जिनकी फ़िल्म 'अभिलाषा' मीना कुमारी ने साइन की थी, वह पहले ही हुई देरी के कारण परेशान थे, लिहाज़ा जब उन्होंने सुना कि मीना फ़िलहाल स्टूडियो नहीं आ पायेंगी तो उन्होंने गुज़ारिश की कि क्यों न मीना के घर जानकी कुटीर में ही उसकी शूटिंग की जाये और जानकी कुटीर को ही सेट में तब्दील कर दिया जाये। मीना मना नहीं कर सकीं और एक बार फिर फ़िल्मों की चक्की में फँस गयीं।

मगर फ़िल्मों में हीरोइन की 35 पार की उम्र फिर 35 पार की उम्र ही होती है। मीना 35 पार की हो चुकी थीं और फिर यहाँ तो उनसे थोड़ी बड़ी उम्र की नायिकाओं की अब बेटियाँ तक फ़िल्मों में आ चुकी थीं। शोभना समर्थ और नसीम बानु की बेटियाँ तनुजा और सायरा बानु ने फ़िल्म 'चाँद और सूरज' तथा 'अप्रैल फूल' में स्विमिंग शूट पहनकर न सिर्फ़ पुरानी हीरोइनों को ललकार दी, बल्कि उन्हें एक तरह से बाहर का रास्ता ही दिखा दिया था। और फिर 'एन इवनिंग इन पेरिस' की रिकार्ड तोड़ सफलता ने यह बात ज़ाहिर कर दी कि नायिकाओं के बोल्ड अवतार को दर्शक पसन्द कर रहे हैं।

नरगिस फ़िल्म काफ़ी पहले छोड़ चुकी थीं, मधुबाला बीमारी के कारण नयी फ़िल्में नहीं कर रही थीं। निम्मी सन् 65 में लेखक एस.अली रज़ा से निकाह कर फ़िल्में छोड़ चुकी थीं। बीना राय ने भी 60 के दशक के शुरुआती सालों में ही फ़िल्में कम कर दी थीं। एक-एक कर साथ की सभी नायिकाएँ अलविदा कह रही थीं और मीना कुमारी थीं कि उन्हें तन्हाई से लड़ना था, बीमारी से जूझना था और फिर एक बड़े पारिवारिक कुनबे का पेट भी भरना था।

मीना को भी अब इस बात का आभास हो ही गया था। इसी कारण सन् 68 में गिरिजा पण्डित को दिये साक्षात्कार में उन्होंने कहा था कि वह अब थक रही हैं और अगर तमाम तरह की ज़िम्मेदारियाँ न होतीं तो वह फ़िल्मों से अलग हो जातीं। यह और बात है कि उनकी कई मुरादों की तरह यह मुराद भी अल्लाह तक पहुँच नहीं पायी।

अगर उनकी सन् 1969 से 1972 के दरम्यिान की फ़िल्मों का जायजा लें तो हम देखेंगे कि फ़िल्मों की तादाद सात है, लेकिन उनमें से वो सिर्फ़ एक में हीरोइन थीं और बाक़ी फ़िल्मों में भी उनके किरदार सहायक ही रहे थे। गिरती तबीयत के कारण 'अभिलाषा' की उनके हिस्से की शूटिंग जानकी कुटीर को ही सेट में बदलकर हुई थी। फ़िल्म 'जवाब' में जितेन्द्र और लीना चन्द्रवरकर की जोड़ी के बरअक्स मीना के हिस्से बारह सीन की बहन की भूमिका ही आयी थी। 'मेरे अपने' में उन्होंने बूढ़ी औरत, 'दुश्मन' तथा 'गोमती के किनारे' में विधवा का किरदार अदा किया था।

1969 तक मीना कुमारी के घर में रहने वाले रिश्तेदार एक बार फिर उनके लिए नाक़ाबिल-ए-बर्दाश्त हो चुके थे। आये दिन मीना कुमारी का उनसे झगड़ा होने लगा था। घर का कोई निज़ाम नहीं था। मीना कुमारी समेत किसी को भी पता नहीं था कि घर में कितना पैसा आ रहा है और कितना ख़र्च हो रहा है। माली परेशानियाँ शुरू हो चुकी थीं। इनकम टैक्स का महकमा मीना कुमारी के पीछे पड़ गया था। उसने न जाने कौन-कौन से पुराने हिसाब निकाल लिये थे और पाँच लाख रुपये से ज़्यादा की रक़म उन पर बकाया करार दे दी थी, जो इस ज़माने के लिहाज़ से बहुत बड़ी रक़म थी। कुछ अरसे बाद इनकम टैक्स की जानिब से मीना को नोटिस मिला कि अगर उन्होंने पिछले सालों के टैक्स का वाज़िब हिसाब

जल्द-अज़-जल्द अदा न किया तो उनके ख़िलाफ़ क़ानूनी कार्रवाई की जा सकती है। चारों तरफ़ से मीना कुमारी पर हालात का दबाव बढ़ता जा रहा था। घर के माहौल से वो अलग परेशान थीं। आख़िरकार उन्होंने इनकम टैक्स के क़र्ज़े को अदा करने के लिहाज़ से किराये के जानकी कुटीर को छोड़ दिया और रिहाइश के लिए एक अपार्टमेंट तलाश करने की ज़िम्मेदारी फिर से किशोर शर्मा को सौंपी गयी। फ़िल्म 'अभिलाषा' के निर्माता रमणीक भाई दवे बिल्डर भी थे। सो, फ़िल्म 'अभिलाषा' के मेहनताने की एवज़ में फ़्लैट ले लेने का विचार किशोर शर्मा का ही था। बहरहाल मीना कुमारी जानकी कुटीर छोड़कर कार्टर रोड स्थित 'लैंड मार्क' नामी एक इमारत की ग्यारहवीं मंज़िल पर रहने चली आयीं और पहले के मुक़ाबले अब मीना कुमारी के साथ रहने वाले लोगों की तादाद बहुत कम थी।

काम कम था तो वक़्त ज़्यादा। यहाँ उनका वक़्त दोस्तों से मिलने, मनपसन्द रिसाले पढ़ने, डॉक्टरों की नसीहतें सुनने और शायरी करने में गुज़रता। जगह भी शान्त थी। एकान्त मीना को रास भी आने लगा था, मगर यह शमा के बुझने से पहली की ख़ामोशी थी, तवील ख़ामोशी। यूँ जैसे दूर बहुत दूर से जल तरंग की आवाज़ सुनकर सदियों से जागी रूह को नींद आने लगी हो, ठीक वैसा वक़्त कार्टर रोड में गुज़रने लगा था। बाज़दफ़ा ऐसा भी वक़्त आता जब उनकी सुनने को कोई दूसरा न रहता। बाज़दफ़ा ऐसा भी वक़्त आता जब वह ख़ामोशियों से बातें करतीं।

मेरी फ़रियाद दूसरा न सुने
तुम सुनो ऐ बुतो, .ख़ुदा न सुने

एक ही रास्ता

जो रुकावट थी हमारी राह की
रास्ता निकला उसी दीवार से

मीना कुमारी की ज़िन्दगी के किसी भी पन्ने से कमाल अमरोही को अलग करके देखा ही नहीं जा सकता। कमाल से अलग होकर मीना मुक़द्दर की हो गयीं तो कमाल भी दर-ब-दर ही रहे। यह बात दीगर है कि उनके अहं, उनकी अना ने ताउम्र यह क़ुबूल करने से इनकार ही किया। महल पिक्चर्स की शोहरत मीना कुमारी के कारण ही थी। कारण यह भी था कि फाइनेंसर पैसा महल पिक्चर्स पर नहीं बल्कि मीना कुमारी पर लगाते थे। उन्हें मालूम था कि महल पिक्चर्स को स्वीकार करने का मतलब मीना कुमारी फ़िल्म की हीरोइन आप ही आप हो जायेंगी। सो मीना कुमारी के जाने से सबसे बड़ी दिक़्क़त ये आयी कि महल पिक्चर्स पर पैसे लगाने वाले रातोंरात ग़ायब हो गये।

दूसरी बात, कमाल अमरोही की अना किसी से काम माँगने में भी आड़े आती थी। वह पैदाइशी लेखक थे, मगर अपने अहं के हाथों मज़बूर होकर अपनी ही फ़िल्मों में उलझकर रह गये, जबकि उनके साथ के लेखक, अमान उल्लाह खान, पण्डित मुखराम शर्मा, नक़वी, वज़ाहत मिर्ज़ा, अली हैदर रज़ा इत्यादि ने कई-कई फ़िल्में लिखीं।

मीना कुमारी का चले जाना 'पाकीज़ा' का रुक जाना भी था। दोनों मीना और कमाल ने सन् 1958 अंग्रेज़ी कैलेंडर के पहले महीने में निहायत सादगी से 'पाकीज़ा' फ़िल्म की मुहूर्त की रस्म भी अदा की थी। सादगी की इन्तिहा यह थी कि कमाल और मीना कुमारी ने फ़र्श पर बैठे हुए ही हाथ उठाकर इस फ़िल्म की क़ामयाबी के लिए दुआ की थी।

1958 से लेकर 1964 तक के छह सालों में ऐसा नहीं था कि 'पाकीज़ा' का सफ़र मखमली ही गुज़रा था बल्कि यूँ कहें कि काँटों भरा ही था।

फ़िल्म की कुछ रीलें ब्लैक एंड व्हाइट में बनी ही थीं कि कलर फ़िल्मों का दौर आ गया। मीना कुमारी के ही कहने पर 'पाकीज़ा' को कलर फ़िल्म बनाने का जो फ़ैसला किया गया तो पुराना काम सारा ही बेकार गया। कभी फाइनेंसर भाग जायें, कभी तारिख़ों की समस्या आ जाये, कभी इनकम टैक्स की समस्या और कभी सेट पर कोई हादसा ही हो जाये। और फिर वह तारीख़ी दिन भी आया जिस दिन मीना कुमारी कमाल का घर छोड़ कर अलग हो गयीं।

ऐसा नहीं था कि कमाल अमरोही मीना कुमारी के चले जाने के बाद बैठ से गये थे। नहीं, बैठ जाना कमाल की फ़ितरत में ही नहीं था। मगर काम का तेज़ी से आगे बढ़ते जाना भी उनकी क़िस्मत में नहीं था। उन्होंने अपनी पूरी ज़िन्दगी में जितनी फ़िल्में बनायीं, उससे कहीं ज़्यादा फ़िल्में बनाते-बनाते छोड़ दीं, डब्बा बन्द कर दीं।

'पाकीज़ा' के शुरुआती दिनों की ही बात है। कमाल अमरोही ने महल पिक्चर्स के बैनर तले ही एक फ़िल्म 'क़सम' की घोषणा की और उसके डाइरेक्शन का भार 'दिल अपना और प्रीत परायी' के लेखकीय पर्यवेक्षक मधुसूदन को दिया। मधुसूदन अभी इस पर काम कर ही रहे थे कि अमरोहे से वापस लौट कर आये कमाल ने उन्हें बुलाकर घोषणा कर दी कि वह यह फ़िल्म नहीं बनायेंगे।

ख़ैर, 'क़सम' न बनने के फ़ैसले के बाद अमरोही ने अपनी ही एक कहानी पर फ़िल्म बनाने का फ़ैसला किया। उन्होंने फ़िल्म की स्क्रिप्ट लिखने की ज़िम्मेदारी मधुसूदन और अली सरदार ज़ाफ़री को सौंपी। 'पाकीज़ा' में मसरूफ़ होने की वजह से उन्होंने लेखन का कार्य इन दोनों को दिया। इस फ़िल्म का नाम 'शंकर हुसैन' रखा गया था। मीना कुमारी भी बज़ाहिर इस फ़िल्म की हीरोइन तय की गयीं। संजीव कुमार और फ़िरोज़ ख़ान के साथ मीना कुमारी की तय यह फ़िल्म भी तब अचानक ही कमाल अमरोही ने मुहूर्त के बाद बन्द कर दी। यह अलग बात है कि मीना कुमारी की मौत के बाद यह फ़िल्म अलग अदाकारों के साथ बनी।

'क़सम' और 'शंकर हुसैन' के बन्द होने के एक साल बाद मीना कुमारी अमरोही को छोड़कर चली गयीं और 'पाकीज़ा' का भविष्य भी अधर में लटक गया।

कमाल अभी एक परेशानी से उबर भी नहीं पाये थे कि इनकम टैक्स चोरी के मामले में तलब हो गये। आमदनी से ज़्यादा ख़र्चा दिखा कर उन्होंने कुछ टैक्स की चोरी की थी, जिसे बाद में उन्होंने बिना किसी हीला-हवाले के मान लिया और हर्जाना भी भर दिया।

क़िस्सा कोताह, बुरे वक़्त की मार चारों ओर से पड़ रही थी और कमाल अमरोही बेबस थे। अमरोही की बेबसी और मीना कुमारी की बेज़ारी का एक ही इलाज था—'पाकीज़ा'।

'पाकीज़ा' अमरोही का ख़्वाब था और इसकी सारी तवज्जो इसी बात पर थी कि 'पाकीज़ा' दोबारा शुरू होनी चाहिए।

कमाल अमरोही के लिए यह सोचना भी मुहाल था कि वे 'पाकीज़ा' की जितनी शूटिंग कर चुके हैं, वह सब ख़त्म करके किसी दूसरी अदाकारा को लेकर नये सिरे से फ़िल्म बनायें। एक तो माली हालत अब ऐसी बाक़ी नहीं थी कि वह ऐसा कोई नया तज़ुर्बा करने की सोच सकें, दूसरी बात यह थी कि उन्हें मालूम था कि 'पाकीज़ा' से अगर मीना कुमारी का नाम निकल गया तो डिस्ट्रिब्यूटरों की नज़र में इस फ़िल्म की कोई अहमियत नहीं रहेगी और वो उसे नहीं उठायेंगे। मीना कुमारी के घर छोड़ कर जाने के बाद कई माह तक 'पाकीज़ा' का काम बिल्कुल ठप होकर रह गया। एक वक़्त ऐसा भी आया कि कमाल संजीदगी से सोचने लगे कि फ़िल्म जितनी बन चुकी थी, उसे वहीं छोड़ दें और उसे पूरा करने का ख़याल दिल से निकाल दें। वैसे भी वे यह फ़िल्म मीना कुमारी के लिए बना रहे थे और मीना कुमारी अब उनके साथ नहीं रही थीं। वो अब दिल-शिकस्ता थे और टूटे हुए दिल के साथ ये फ़िल्म बनाना उनके लिए और भी मुश्किल हो गया था। एक साल तक फ़िल्म जहाँ थी, वहीं लटकी रही। आख़िरकार जब दिल कुछ सँभला तो उन्होंने एक बार फिर फ़िल्म के बारे में सोचना शुरू किया।

जिन दिनों मीना कुमारी कमाल को छोड़ कर गयी थीं, उन दिनों भी उनके पास काम की कमी नहीं थी और फिर तो जब वह कमाल के नियन्त्रण से छूटीं तो निर्माताओं ने उनके आगे फ़िल्मों का ढेर लगा दिया।

क़िस्सा-कोताह, सन् 60 के दरमियानी सालों में मीना कुमारी के पास काम की कोई कमी नहीं थी, बल्कि आवश्यकता से अधिक ही काम था। मीना कुमारी बतौर अदाकारा अपने उरूज पर थीं, मगर कमाल अमरोही

का मसला यह था कि 'पाकीज़ा' की डेट्स के लिए मीना के पास कौन जाये? कमाल अमरोही की खुद्दारी इजाज़त नहीं देती थी कि वे अपनी उस बीवी के पास फ़िल्म के लिए डेट माँगने जायें, जो उन्हें छोड़कर चली गयी थी।

इस दौरान एक और मसला भी खड़ा हो चुका था। अशोक कुमार को 1958 में 'पाकीज़ा' के हीरो के तौर पर लिया गया था, लेकिन अब वह उम्रदराज़ दिखाई देने लगे थे और उन्हें हीरो के किरदार मिलने बन्द हो चुके थे। वो ज़्यादातर कैरेक्टर रोल में नज़र आने लगे थे।

वक़्त रेत की तरह फिसलता जा रहा था। हाथ ख़ाली होते जा रहे थे। कमाल अमरोही को अहसास हो चला था कि खुद्दारी और अहंकार में अन्तर है। खुद्दारी आदम की पहचान है, मगर अना शैतान की हँसी। वह जान गये थे कि इस अहंकार की लड़ाई में अगर सबसे बड़ी हार किसी की है तो वह उस शाहकार की है, जिसका नाम 'पाकीज़ा' है और जिसकी क़ामयाबी के लिए दो हाथ एक साथ उठे थे, जिसमें एक हाथ तो उनका था और दूसरा मीना कुमारी का। उन्हें अब अहंकार छोड़ कर दूसरे हाथ की तलाश थी। सो इसी कारण उन्होंने आख़िरकार 25 अगस्त, 1968 को मीना कुमारी को ख़त लिखा—

महजबीन,

मार्च, 64 की पाँचवीं तारीख़ से आज 15 अगस्त तक जैसे एक उम्र तुम्हें घर से गये हो गयी हैं।

"इस दौरान मैंने कितनी बार चाहा कि तुम्हारी दिक़्क़तों का कोई हल निकल आये और तुमने कितनी बार चाहा कि मेरी उलझनें सुलझ जायें, मगर न जाने क्यों हम दोनों की नेक ख़यालियाँ पूरी न हो सकीं।

"इस दौरान तुम्हारे नोटिसों की भरमार से ही महल पिक्चर्स की क़ानूनी हैसियत बार-बार डाँवाँडोल होती रही। इसी दौरान ही वे तमाम प्रोड्यूसर्स जिनकी पिक्चरों में तुम काम कर रही हो, तुम्हारे मुतालबात (माँगें) और महल पिक्चर्स से अपने मुआहिदों के मा-बैन (बीच) भटकते रहे। बार-बार उन्हें तुम्हारी ज़िद पर ग़ुस्सा आता रहा और इस दौरान महल पिक्चर्स सरकशियों के ख़िलाफ़ अपना मुक़द्दमा तैयार करती रही।

लेकिन मेरा दिल यह किसी तरह गवारा न कर सका कि तुम्हारे और महल पिक्चर्स के दरमियान किसी तरह की मुक़दमेबाज़ी हो।

आख़िरकार मेरे लिए इसके सिवा कोई और चारा न रहा कि मैं अपनी-तुम्हारी दास्ताने-मुहब्बत का आख़िरी वर्क़ लिखूँ और इस दास्ताने-अलम को इसी वक़्त ख़त्म कर दूँ।

वह आख़िरी वर्क ये क़ानूनी दस्तावेज़ हैं जो इस ख़त के साथ मुंसलिक (नत्थी) हैं, जिसके ज़रिये मैंने वे तमाम शेयर, जो महल पिक्चर्स में मेरे नाम हैं, तुम्हारी तरफ़ मुन्तकिल (परिवर्तित) कर दिये हैं।

इस तरह महल पिक्चर्स, महल पिक्चर्स की जुमला इमलाक (सम्पत्ति), महल पिक्चर्स के तमाम बैंक एकाउंट्स, महल पिक्चर्स की 'पाकीज़ा', 'पाकीज़ा' का सामान, कमाल स्टूडियोज़ और उसके मुतसल्लकात तुम्हारे तमाम कॉन्ट्रैक्ट, उनके मुआवज़े, तुम्हारी मुकम्मल क़ानूनी मुस्तक़बिल—ये सब और वेरावली स्टेट के जुमला हक़ूक़ हैं।

''और इसके साथ हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी हीरोइन, सबसे मशहूरो-मक़बूल फ़िल्म स्टार मीना कुमारी भी तुम्हें सौंप दी है। इसके साथ ही तुम्हारे ज़ेवरात और कपड़े-लत्तों की हिफ़ाज़त के फ़र्ज़ से सुबकदोशी (छुटकारा) का यह इस्तीफ़ा भी है। इसके बाद मेरे पास मीना की—तुम्हारी तेरह साल अजदवाज़ी ज़िन्दगी की कोई मुश्तर्का (मिली-जुली) चीज़ बाक़ी नहीं रह जाती और तुम्हारा कोई नामो-निशान मेरी ज़िन्दगी में नहीं बचता।

''शायद तुम जानती होगी कि अमरोहा में मेरे चन्द बोसीदा आबाई मकान मसकूना के अलावा मेरे या मेरे किसी रिश्तेदार के नाम से कोई जायदाद नहीं है। फिर भी तुम्हें या तुम्हारे किसी वकील को ऐसा गुमान न हो तो उसकी छानबीन करने और उस पर दावा करने का तुम्हें अख़्तियार है।

''मुम्बई, अमरोहा या किसी और शहर में मेरा कोई बैंक एकाउंट नहीं है। हो तो तुम उसकी जवाबफ़हमी कर सकती हो। अलबत्ता सेंट्रल बैंक मुम्बई के हेड ऑफ़िस में मेरे नाम एक लॉकर है, जिसे मैंने तक़रीबन दो साल से इस्तेमाल नहीं किया। इसकी तस्दीक आख़िरी इस्तेमाल की तारीख़ से हो जायेगी। इस लॉकर को इस्तेमाल और इसकी जाँच करने का मुख़्तारनामा उसकी चाबी के साथ हवाले कर रहा हूँ।

''इस मुख़्तारनामे के बाद बस एक 'पाकीज़ा' की तकमील का मसला मुअल्लिक (शेष) रह जाता है।

'''पाकीज़ा' की तकमील के लिए तुम्हारी एक ही शर्त है कि तुम मुझसे तलाक़ लिये बग़ैर हरगिज़ मुकम्मल नहीं करोगी। मेरा ख़याल है कि यह गिरह भी अब खुल जाने वाली है, क्योंकि जैसे ही तुम इस अमारत (उत्तरदायित्व) के बोझ से मुझे सुबकदोश कर दोगी, मैं तुम्हें निकाह के बन्धनों से रिहा कर दूँगा। इसके बाद अगर तुमने चाहा कि मैं तुम्हारी 'पाकीज़ा' के मुकम्मल करने में तुम्हारा साथ दूँ तो यह मेरी ऐन मसर्रत का बायस होगा।

''मेरी दरख़्वास्त है कि 'पाकीज़ा' जिस पर चालीस लाख रुपये की लागत लग चुकी है, जिस पर न जाने कितने लोगों का मुस्तकबिल मुनहसिर है, जिसके साथ न जाने कितने इन्सानों की दुआएँ हैं, हो सके तो इसे अधूरा मत छोड़ो। तुम्हारे पास बेहतर जराये हैं। तुम्हारे पास ताक़त है, बॉक्स ऑफ़िस है और फिर सबसे अहम यह कि 'पाकीज़ा' में तुम्हारी वह अहमियत और ज़रूरत है जिसका कोई नेमुल-बदल (पूर्ति) नहीं।

''मुझे यह भी यक़ीन है कि तुमने 'पाकीज़ा' की तक़मील का बीड़ा उठा लिया तो उसे प्रोड्यूस करने की दूसरी तमाम ज़िम्मेदारियाँ बरादरम महमूद अली बख़ुशी क़ुबूल कर लेंगे। 'पाकीज़ा' जो भँवर में फँसे एक जहाज़ की मानिन्द डूबती जा रही है, तुम्हारी रहनुमाई में अपने साहिल से लग जायेगी। बस, और कुछ नहीं।

''मेरा दिल तुम्हारी तरफ़ से बिल्कुल साफ़ है। इसमें तुम्हारा बख़्शा हुआ अब कोई मलाल नहीं, मगर यह शिकायत दिल के किसी गोशे में ज़रूर दुबकी रह गयी है कि तुमने मुझे बताया नहीं कि बाकर साहब से झगड़े के बाद तुम अपने घर क्यों नहीं आयीं?

''तुमने ही तो अपने जाने से सिर्फ़ दो रोज़ पहले अपने एक ख़त में उन्हें लिखा था कि 'बाकर भाई, आप मेरे बाप की जगह हैं और आप ही मेरे बड़े भाई की तरह हैं।' शायद यह कभी नहीं हुआ होगा कि किसी बीवी ने मायके वालों से झगड़ा कर अपना ससुराल छोड़ा हो। यह इतनी अजीब बात एक नन्ही-सी फाँस की तरह मेरे दिल में खटकती रह गयी है।

''लेकिन ख़ैर, वक़्त एक दिन इस पर भी ख़ाक डाल देगा। अब चलते-चलते एक चीज़ तुमसे माँगनी है, यह इनायत कि अगर मेरी कोई भी (औक़ात) तुम्हारे दिल में हो तो वे सब दौलतें-बख़्शीशें मुझसे वापस

ले लो और मुझे इस इल्जाम से बरी कर दो कि मैंने अपने फ़ायदे में तुम्हें लूट लिया और तुम्हें सिर्फ़ तीन कपड़ों में फ़ुटपाथ पर खड़ा कर दिया।

''ख़ुदा करे, तुम हमेशा ख़ुशो-ख़ुर्रम रहो और हर बला से महफ़ूज रहो।

फ़क़त तुम्हारा[1], मुख़्लिस सैयद अमीर हैदर।[2]''

(कमाल अमरोही)

मीना कुमारी को ख़त मिला। इस भावुक पत्र के उत्तर में मीना ने स्वयं कोई पत्र नहीं दिया। वह न तो टेलीफ़ोन पर उनसे बात करना चाहती थीं और न ही मिलना। और तो और, स्वयं वह कमाल से पत्र द्वारा सीधे सम्पर्क भी नहीं रखना चाहती थीं।

अतः मीना ने कमाल के पत्र के उत्तर में अपने वकील से पत्र भिजवाया। इस पत्र में न तो मीना ने कमाल अमरोही की निन्दा की, न उन्हें भला-बुरा कहा। मीना के वकील ने जो उत्तर दिया, वह इस प्रकार था–

''डियर सर,

मैं अपनी मुवक्किला मिसेज़ मीना कुमारी के लिए आपके मुवक्किल कमाल अमरोही के ख़त तारीख़ 25 अगस्त, 68 की फ़ोटो कॉपी के वसूल होने की तस्दीक करता हूँ। अपनी मुवक्किला के निर्देशानुसार मुझे ख़त का यह जवाब देना है–

''महज़बीन इस अनुरोध के इज़हार से प्रभावित हुई है जो श्री कमाल अमरोही ने उसकी समस्याओं के लिए किया है। उनकी नेक तमन्नाओं पर भी श्री कमाल अमरोही का शुक्रिया जवाब में उन्हीं जज़्बात को प्रकट करना चाहती हैं।

''मीना कुमारी को यह जानकर दुख हुआ कि मैसर्स महल पिक्चर्स को अनावश्यक परेशानी उठानी पड़ी और वह अदालती कार्रवाई के सिलसिले में कमाल अमरोही के बयान से इत्तेफ़ाक़ रखती हैं, लेकिन मीना कुमारी को अफ़सोस है कि कमाल साहब ने उसके स्वभाव को जानते हुए भी उनकी तरफ़ उँगली उठाई है, मगर मीना कुमारी कमाल साहब पर किसी बात का इल्ज़ाम लगाने का इरादा नहीं रखतीं। साहित्यिक भाषा की आड़ में छिपा के चालाकी से किये गये व्यंग्यों की परवाह किये बग़ैर मीना कुमारी कमाल साहब पर किसी और के ख़िलाफ़ कोई भेदभाव या बदले की भावना नहीं रखतीं। मीना कुमारी का ख़याल है कि बर्दाश्त

की स्टेज पर उसकी ज़िन्दगी का ड्रामा बन चुका है। कमाल अमरोही ने मीना के साथ बरसों गुज़ारे हैं और वह जानते हैं कि मीना कुमारी के पास धन-दौलत का कभी कोई महत्त्व नहीं रहा। कमाल साहब भली-भाँति जानते हैं कि मीना कुमारी न तो महल पिक्चर्स के शेयर्स में दिलचस्पी रखती हैं और न किसी दूसरी जायदाद वग़ैरह में। कमाल साहब ने जो शानदार पेशकश की है, उसके लिए मीना कुमारी आभारी हैं, लेकिन मीना इसे स्वीकार करने से आभारपूर्वक क्षमा चाहती हैं।

मीना कुमारी कमाल साहब के बिना पर उनमें उच्च व्यवहार के प्रकाश का आभास करते हुए भावनाओं के साथ यह कहना चाहती हैं कि कमाल साहब की तरफ़ से सही और श्रेष्ठ क़दम यह होगा कि वह इनकम टैक्स की समस्त ज़िम्मेदारियाँ स्वीकार लें जो मीना पर बेवजह कस दी गयी हैं, जिसे कि कमाल साहब और सारी दुनिया जानती है कि मीना ने कोई रकम वसूल नहीं की। मीना कुमारी इस बात पर ज़ोर देना चाहती हैं कि वह क़ानूनी ज़िम्मेदारियों के विस्तार से उलझना नहीं चाहतीं। वह सिर्फ़ यह बताना चाहती हैं कि उन्होंने कमाल साहब के लिए स्वयं को वक़्फ़ करके जो निःस्वार्थ सेवा की, उसका बदला टैक्स की भारी ज़िम्मेदारियाँ नहीं।



पाकीज़ा

वैसे अगर कमाल साहब इस बुलन्द हिम्मत को दिखाने पर तैयार न हों या इनकम टैक्स विभाग के कारण कुछ सुझायी न देता हो तो मीना कुमारी उस आय पर जो उसने कभी नहीं देखी, टैक्स अदा करने के लिए अपनी बाक़ी सारी ज़िन्दगी काम करने को तैयार हैं।

मीना कुमारी को यह जानकर दुख हुआ कि कमाल साहब इस ग़लत अनुमान के कारण परेशान हो रहे हैं कि वह 'पाकीज़ा' में तब तक काम नहीं करेगी, जब तक उसे तलाक़ न मिल जाये।

''कमाल साहब जानते हैं कि मीना ने ऐसी कोई शर्त नहीं लगायी। दरअसल, वह यह महसूस करती हैं कि 'पाकीज़ा' पर ख़र्च किया गया रुपया व्यर्थ नहीं जाना चाहिए और रुपये-पैसे से ज़्यादा उसे उस फ़िल्म के निर्माण के लिए उन लाखों लोगों की आशाओं का ख़याल है जो इस महान फ़िल्म को देखने के लिए बेचैन हैं। वह नये कॉन्ट्रेक्ट के मुताबिक़ स्वतन्त्र कलाकार के रूप में 'पाकीज़ा' में काम करने को तैयार हैं।

''मीना को यह कहकर फुसलाया गया है कि 'पाकीज़ा' की उसके बिना पूर्ति नहीं। ख़ैर, वह अपने इस अवसर से कोई अनुचित लाभ उठाना नहीं चाहतीं और काफ़ी उदारता के साथ क़ुबूल करती हैं कि उसका होना ज़रूरी नहीं।

''मीना कुमारी बाकर अली, कमाल साहब या अपने कारणों के बारे में कुछ कहना नहीं चाहतीं क्योंकि सारी दुनिया सच्चाई को जानती है।

''महजबीन का ख़याल है कि ज़िन्दगी जैसे भी बीतेगी, गुज़ारनी है। इल्जामात, भेदभाव व घृणा कितनी भी की जाये, उससे दिल का बोझ हल्का नहीं हो सकता। वह कमाल साहब या किसी और के प्रति कोई बुरा इरादा नहीं रखतीं। मीना कुमारी पुनः उनकी भेजी हुई शुभकामनाओं के लिए आभारी हैं और उत्तर में ऐसी ही भावना व्यक्त करने की इच्छुक हैं।''

(किशोर शर्मा)

अर्धांगिनी

बिछड़ के तुझसे मुझे है उमीद मिलने की
सुना है रूह को आना है फिर बदन की तरफ़।

इस ख़त के साथ भी कोई सीधा रास्ता निकलता नज़र नहीं आया क्योंकि मीना कुमारी ने पहले भी कभी 'पाकीज़ा' में काम करने से इनकार नहीं किया था और न ही अब कर रही थीं। परेशानी वहीं की वहीं थी कि आख़िर यह पैग़ाम ज़ुबानी तौर पर मीना के पास कौन ले जाये और कौन उनके, कमाल अमरोही और 'पाकीज़ा' की बीच से क़ानूनी पेचीदगियों के बग़ैर बातकर सके। बात रख सके। कमाल अमरोही का अहं उन्हें यह बात आमने-सामने कहने से रोक देता था। हालाँकि वह मीना के घर छोड़कर चले जाने के बाद भी ईद पर उनसे मिलते और ईदी देते थे, मगर न उन्होंने कभी इस बात को सामने रखा और न ही मीना ने कभी यह बात करने में दिलचस्पी दिखायी। सो, अहं टकराते रहे। दोनों ही दिलों में 'पाकीज़ा' को लेकर सवाल उठते, घुमड़ते और बैठ जाते। वक़्त दोनों ही जानिब लाजवाब किये रहता।

मगर वक़्त अगर लाजवाब करता है तो वक़्त ही जवाब भी तलाशता है। वक़्त की ज़ुबान नहीं होती। उसके अफ़राद होते हैं। उसके लोग होते हैं। और इन्हीं लोगों की ज़ुबानी वह सारे काम कराता है, जो वह चाहता है। वक़्त परत चढ़ाता गया। अहं की धूल-गर्द बैठती गयी। दोनों ही की ज़िन्दगी में लोग आते गये और अपना काम निकाल कर निकलते गये। दोनों ही अलगाव के इस दरमियानी वक़्त में घाव खाते रहे, सँभलते और खड़े होते रहे, मगर दोनों ही को वक़्त ने सीख भी दी और राह भी दिखाई।

पहली राह—सुनील दत्त और नरगिस। सुनील दत्त और नरगिस, सन् साठ के बुढ़ाते सालों में यूँ ही किसी दिन कमाल से मिले और कमाल ने यूँ ही उन्हें तब तक हुई 'पाकीज़ा' की शूटिंग के कच्चे हिस्से दिखा

दिये। फ़िल्म के उन हिस्सों को देखकर दत्त दम्पति अवाक् रह गये और पूछ बैठे, "यह तारीख़ी (ऐतिहासिक) सिनेमा अब तक बनी क्यों नहीं? जवाब भी उन्हें ख़ुद से ही मिलना था। जवाब वे जानते भी थे और फिर उन्होंने ख़ासकर नरगिस ने यह भरोसा दिलाया कि वह मीना से इस बाबत बात करेंगी।

दूसरी राह—संगीतकार ख़य्याम और उनकी पत्नी जगजीत कौर की बाहमी पहचान थी—मीना कुमारी से भी और कमाल अमरोही से भी। जगजीत कौर से मीना वे सारी बातें साझा कर लेती थीं जो वह किसी और से नहीं कह पाती थीं। ख़य्याम साहब भी कमाल अमरोही की फ़िल्म में संगीत दे रहे थे और मीना कुमारी उनके साथ एक प्राइवेट एल्बम की तैयारी कर रही थीं। संगीतकार के रूप में मीना और कमाल दोनों ही ख़य्याम को आला दर्जा देते थे। सो, उन्होंने भी 'पाकीज़ा' को पूरा कर देने की बात मीना के सामने रखी।

तीसरी राह—वक़्त। 1968 आते-आते मीना कुमारी का फ़िल्मी करियर भी डांवाडोल होने लगा था। उन्हें बतौर हीरोइन किसी बड़ी फ़िल्म की ज़रूरत थी क्योंकि बदलते वक़्त के साथ उनकी माँग भी बहुत कम हो चुकी थी। ऊपर से उनकी सेहत भी ख़राब थी और ख़राब सेहत की ख़बरें फ़िल्म इंडस्ट्री में तैरने लगी थीं, जिस कारण उन्हें बाहरी फ़िल्मों का मिलना भी प्रभावित हुआ था।

कौन-सी राह ऐसी हुई जो मीना के ज़ेहन में उतर गयी, यह कहना तो मुश्किल है या यूँ कहें कि इन सारी ही बातों ने उनके ज़ेहन तक घर बनाया तो ग़लत नहीं होगा। मगर एक दिन ऐसा हुआ कि उन्होंने 'पाकीज़ा' में काम करने के लिए 'हाँ' कह दी।

और फिर कमाल और उनके घर को छोड़ने के क़रीब पाँच साल बाद, 16 मार्च, 1969 को मीना कुमारी 'पाकीज़ा' की शूटिंग के टूटे हुए सिलसिले को दोबारा जोड़ने के लिए स्टूडियो पहुँचीं। कमाल अमरोही ने उनका इस्तिक़बाल किया, उन्हें पेड़ा खिलाया और उनके आमद की बाक़ायदा दस्तावेज़ी फ़िल्म बनवायी।

मार्च, 1969 से लेकर दिसम्बर 1971 तक कमाल अमरोही और मीना कुमारी, दोनों ने 'पाकीज़ा' के सिलसिले में बड़ी मेहनत की। दोनों के पास वक़्त भी था। कमाल सिर्फ़ इसी फ़िल्म पर ध्यान दे रहे थे

और मीना के पास भी इसे छोड़कर इक्का-दुक्का फ़िल्में ही थीं, जिनमें उनका रोल भी छोटा ही था। लिहाज़ा, वह अपना पूरा और बड़ा समय 'पाकीज़ा' को दे सकती थीं।

मगर 'पाकीज़ा' तो फिर 'पाकीज़ा' ही थी। इतनी आसानी से शाहकार नहीं बना करते। परेशानियाँ ही उन्हें बुलन्द-ओ-बाला करती हैं। उनकी राह मुश्किलों से ही निकलती है।

पहले भी 'पाकीज़ा' तमाम मुश्किलों में फँसती ही रही। फ़िल्म शुरू करते वक़्त ही एक ज्योतिषी ने कमाल को बताया था कि यह फ़िल्म पूरी नहीं हो पायेगी। तमाम दिक़्क़तें इसकी हमराह होंगी, इसलिए यह फ़िल्म बनाने का ख़याल तर्क कर दो। मगर कमाल जैसे शख़्स जिन्हें ख़ुद पर भरोसा हो, वह नजूमियों, ज्योतिषों पर भरोसा नहीं करते। उन्होंने काम जारी रखा। फ़िल्म का कुछ भाग शूट हो गया तो रंगीन फ़िल्मों का दौर आ गया। मीना कुमारी ही की दरख़्वास्त पर कमाल ने 'पाकीज़ा' को ब्लैक एंड व्हाइट में बनाने का ख़याल छोड़कर कलर बनाने का फ़ैसला किया। राजेन्द्र कुमार, दिलीप कुमार, सुनील दत्त इत्यादि के द्वारा फ़िल्म ठुकरा दिये जाने पर आख़िरकार फ़िल्म में धर्मेन्द्र बतौर दूसरे अभिनेता लिए गये। उनके साथ भी कुछ भाग शूट हो जाने के बाद जब धर्मेन्द्र और मीना कुमारी की आशनाई की ख़बरें फैलने लगीं तो कमाल धर्मेन्द्र को फ़िल्म से निकालकर दूसरा अभिनेता तलाश करने लगे और निराशा का आलम इस क़दर गहरा था कि एक दफ़ा तो परेशानी से ऊबकर कमाल ने ख़ुद को भी बतौर नायक रखने की सोची, मगर जल्द ही वह इस सच से दो-चार हो गये कि निर्देशन और अभिनय दो अलहदा चीज़ें हैं और हर आदमी हर काम नहीं कर सकता।

जब परेशानियाँ ख़त्म होने का नाम नहीं लेतीं तो इन्सान टोटकों और अन्धविश्वास के सहारे भी अपना ही लेता है। कमाल को उनके बड़े भाई ने बताया कि फ़िल्म के नाम में ही समस्या है तुम इसे बदल कर देखो। फ़िल्म दौड़ने-भागने लगेगी। कमाल ने यह करके भी देखा। 'पाकीज़ा' के ही एक संवाद से उधार लेकर फ़िल्म का नाम 'लहू पुकारेगा' रख दी, मगर ऐसे टोटकों से न फ़िल्म का काम आगे बढ़ना था, न ही बढ़ा।

फ़िल्म बनने में देरी से जो परेशानियाँ लाज़िम आती हैं, वे भी आयीं। फ़िल्म से जुड़े कई कलाकार अब इस दुनिया में नहीं रहे। सन् 1958 के

अशोक कुमार और सन् 1968 के अशोक कुमार में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ आ गया। यही हाल मीना कुमारी के साथ भी था। ऊपर से वह बीमार थीं तो उनके साथ दोहरी परेशानी यह भी थी उनसे न सिर्फ़ एक साथ मजीद काम लेना दुश्वार था बल्कि उनके बेडौल हो चुके शरीर और बेनूर हो चुके चेहरे को भी सँवारना था। कमाल ने यह सब बख़ूबी किया। पहले 'पाकीज़ा' की स्क्रिप्ट में रद्दोबदल कर अशोक कुमार के किरदार को कम किया और उसकी जगह दूसरे किरदार के रूप में राजकुमार साहब को ले आये। न सिर्फ़ यह बल्कि मीना कुमारी के बॉडी डबल के रूप में उन्होंने बिलकीस और पद्मा खन्ना के शॉट्स इस तरह फ़िल्माये कि आज भी फ्रेम-दर-फ्रेम रोककर यह बता पाना मुश्किल होता है कि यह मीना कुमारी नहीं हैं। तब की तो बात ही और थी।

संगीत की भी परेशानी आयी। सन् सत्तर के शुरुआती दिन से ही पश्चिमी धुनों पर आधारित संगीत का चलन शुरू हो गया था। इस कारण यह भी दुविधा थी कि पचास के दशक में दिये गये ग़ुलाम मुहम्मद की मौसिक़ी को देखने-सुनने वाले कितना पसन्द करेंगे, मगर कमाल के पास इसका अपना ही जवाब था। उन्होंने आलोचना करने वालों से कहा—"आपकी बात जायज़ है। फ़िल्मों के संगीत मुकम्मल तौर पर बदल चुके हैं और मैं आपकी बात मान भी लेता अगर ग़ुलाम मुहम्मद ज़िन्दा होते, मगर उनके इन्तकाल के बाद, उनकी ग़ैरहाज़िरी में यह पाप नहीं कर सकता, इसलिए संगीत तो उन्हीं का रहेगा।"

बहरहाल, 'पाकीज़ा' की शूटिंग दोबारा शुरू हुई। कमाल गीतों की शूटिंग, मंज़र, चाँद-तारे, झरने और जहाँ ज़रूरत हो पद्मा खन्ना तथा बिलकीस के बैक पोज़ का उपयोग कर के पहले ही पूरी कर चुके थे। 'चलो दिलदार चलो' गीत में मीना कुमारी की कमी कमाल ने चाँद-तारे, झरने और नाव में बैठी पद्मा खन्ना को चुनरी ओढ़ाकर पूरी की थी, वहीं 'आज हम अपनी दुआओं का असर देखेंगे' में सारी तेज़ नृत्य मुद्राएँ चुनर से ढकी हुई पद्मा खन्ना ने की हैं। बस क्लोज़ अप में मीना कुमारी के कुछ दृश्य सम्पादित किये गये हैं, इसलिए मीना कुमारी का काम उतना ही रह गया था जिसके बग़ैर काम नहीं चल सकता था। यह कमाल की सलाहियत ही थी गाने में मीना की ग़ैर मौजूदगी खलती नहीं है।

बेशुमार मुश्किलों का सामना करते और 'अल्लाह-अल्लाह' करते आख़िरकार 1971 में फ़िल्म मुकम्मल हो गयी। एडिटिंग का काम होते-होते साल गुज़रा। जनवरी 1972 तक 'पाकीज़ा' की चर्चा पूरे देश भर में थी। अख़बारात और रिसालों में इसके बारे में क़यास लगाये जाने लगे थे। फ़िल्मी पण्डितों को सबसे ज़्यादा शक इस बात का था कि फ़िल्म में मीना कुमारी का जिस क़िस्म का किरदार है, क्या वह इस किरदार में खरी उतरेंगी? क्या फ़िल्मों के पूरी तौर से बदल गये माहौल में 'पाकीज़ा' दर्शकों को लुभायेगी?



अन्तिम दृश्य

कम-ओ-बेश 15 बरस के इन्तज़ार के बाद वो फ़िल्म जो सिनेमा स्कोप, मगर ब्लैक एंड व्हाइट बननी थी, तकरीबन डेढ़ करोड़ रुपये की लागत से कलर में तैयार होकर रिलीज़ हो रही थी। 3 फ़रवरी, 1972 को बम्बई के मराठा मन्दिर सिनेमा हाल में 'पाकीज़ा' का प्रीमियर रखा गया। बाक़ायदा सफ़ेद कपड़ों में ऑर्केस्ट्रा के साथ प्रीमियर की शुरुआत हुई। 'पाकीज़ा' लिखी लाल रंग के चमकते बोर्ड लगाये गये। नावों द्वारा पहले ही बम्बई के समन्दरों में फ़िल्म का प्रमोशन किया जा रहा था। चटख़ लाल रंग से ही मराठा मन्दिर पर 'पाकीज़ा' का बोर्ड लगा। फ़िल्म के प्रीमियर पर बी.आर. चोपड़ा, सप्रू, राजकुमार, वीना, नादिरा, डेविड,

नौशाद, नरगिस, सायरा बानो, माला सिन्हा, वहीदा रहमान, फ़रीदा जलाल, कबीर बेदी, अनिल धवन, नवीन निश्चल, लीना चन्द्रावरकर जैसे सितारों ने शिरक़त की। प्रीमियर शो देखने के लिए मीना कुमारी भी आयीं। उस वक़्त किसी को गुमान भी नहीं था कि यह उनकी ज़िन्दगी का आख़िरी प्रीमियर शो है। प्रीमियर के दौरान एक पत्रकार ने कमाल से पूछा, ''पाकीज़ा में क्या ख़ास है?'' कमाल ने कहा, ''पाकीज़ा में मीना कुमारी हैं।'' अभिनेता राजकुमार के साथ वह सिनेमा हाल में दाख़िल हो गयीं। प्रीमियर देखकर लोगों ने फ़िल्म की बहुत तारीफ़ की, मगर पहचान के लोगों की पसन्दगी और दर्शकों की पसन्दगी में फ़र्क़ होता है। लोगों की पसन्द अगले दिन आनी थी।

फ़िल्म की रिलीज़ के दूसरे दिन अख़बारों में 'पाकीज़ा' के बारे में जो ज़िक्र थे, वह ख़ासे मायूसकुन थे। कमाल यह बात पहले से जानते थे। रिलीज़ से पहले वितरकों को दिखाये गये शो में वितरकों का ठण्डा रवैया देख कर वह समझ गये थे कि फ़िल्म को लेकर ज़्यादा उत्साह बाक़ी नहीं है और शुरुआती दिनों में हुआ भी यही। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने उसे 'ज़ाया' करार दिया और फ़िल्मफेयर ने उसे सिर्फ़ एक 'स्टार' दिया, लेकिन उर्दू के रिसाले फ़िल्म की तारीफ़ों से भरे पड़े थे। उर्दू की इन मैगज़ीनों के ख़याल में एक लम्बे अरसे के बाद बतौर हीरोइन मीना कुमारी ने धमाकाख़ेज़ वापसी की है।

बहरहाल 'पाकीज़ा' आज की फ़िल्म नहीं थी। वह कल समझ में आनी थी। वह कल ही समझ में आयी। उसने मीना कुमारी का पसीना लिया था। मीना कुमारी में जान अब भी बाक़ी थी। 'पाकीज़ा' को उसी का इन्तज़ार था।

दुसरी तरफ़ फ़िल्म 'गोमती के किनारे' की शूटिंग रुकती-चलती वहाँ तक आ गयी थी कि अब मीना यदि शूट नहीं भी कर पातीं तो फ़िल्म पूरी की जा सकती थी। मीना बहरहाल शदीद बीमार थीं और अब की अस्पताल से आने के बाद उन्हें अहसास हो गया था कि उनके पास साँसें भी गिनती की ही हैं। सो, उन्होंने वह करना सही समझा, जिसके लिए उनकी साँसें बाक़ी थीं।

अस्पताल से आते ही उन्होंने निर्माता को फ़ोन कर कहा कि उनकी तारीख़ें उपलब्ध हैं। वह बचा हुआ जो कुछ है, शूट कर सकते हैं।

इंडस्ट्री चाहे कितनी भी बेरहम हो, बेग़ैरत तो नहीं ही है। निर्माता ने जिसे अधिकांश पैसे मीना ने ही दिये थे, कहा–

"आप आराम करें, अगर काम करने की ज़िद करेंगी तो हमें दुख होगा।"

मीना एक अनबुझ मुस्कुराहट के साथ बोल गयीं–"अगर आप शूट नहीं करेंगे तो आपको जीवन भर दुख रहेगा।"

मीना की ज़िद के आगे अली बख़्श, इक़बाल बानू, ख़ुर्शीद, कमाल की नहीं चली तो प्रोड्यूसर की क्या बिसात हुई!

28 दिसम्बर, 1971 को मीना अपना अन्तिम दृश्य शूट करने आयीं। काँपती देह की कमज़ोरी भी उन्होंने निश्छल मुस्कुराहट के भीतर छुपा ली। मगर दृश्य जब तक शूट होता तब तक पीला पड़ गया मीना का शरीर थोड़ा-सा अस्थिर हो गया। वह चक्कर खाकर गिर पड़तीं। इससे पहले उनकी नर्स ने उन्हें सँभाल लिया। मीना रुकीं। नर्स से अपनी दवा लेकर हलक से नीचे उतार कर दोबारा हँस पड़ीं...ख़ुदा पर! ख़ुद पर, ख़ुदाई पर! जाने किस पर?



मीना आपनी बहनों के साथ

बहरहाल, वह मीना का सीन था। कहें तो वह मीना का ही दिन था। अन्तिम दृश्य में वह नवोदित नायक समीर के गले लगीं जो फ़िल्म

में उनके बेटे का किरदार निभा रहे थे। बेटे ने माँ को गले लगाया। दृश्य पूरा हुआ। डायरेक्टर ने 'कट' कह दिया।

मीना जी कैमरे से दूर हुईं। शूट पर मिठाइयाँ बँटवाते हुए, साथ-साथ हँसते और रोते हुए (यह काम वह बख़ूबी कर लेती थीं) उन्होंने कहा—''मेरा काम पूरा हुआ!''

अन्तिम बार स्टूडियो से बाहर जाते हुए वह मुड़ीं। स्टूडियो को आँख भर निहारा और फिर कभी स्टूडियो न लौट आने के लिए कार से निकल गयीं।

24 मार्च, 1972 का दिन था। ख़ुर्शीद, मीना कुमारी और मधु तीनों बहनें अपने बान्द्रा वाले फ़्लैट में ताश खेल रही थीं। मीना कुमारी बाज़ी जीतती दिखाई दे रही थीं। शायद इसलिए मधु पत्ता फेंकने से पहले गहरी सोच में थीं। आख़िरकार मीना कुमारी बोलीं—''लगता है, ये बाज़ी ख़त्म होने के इन्तज़ार में मुझे मौत ही आ जायेगी।'' सबसे बड़ी बहन ख़ुर्शीद उन्हें मुन्ना ही कहकर पुकारती थीं, वे मीना कुमारी की बात सुनकर बोलीं—

''मुन्ना, तुम आजकल अक्सर ही मरने की बातें किया करती हो। मुझे ये बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। अगर मौत आनी ही होगी तो सबसे पहले मुझे आयेगी क्योंकि मैं सबसे बड़ी हूँ।'' मगर मधु ने शायद बात को मज़ाक़ का रंग देने के लिए कहा—

''भई, सबसे छोटी होने की वजह से मेरा फ़र्ज़ है कि मैं सबसे पहले मरूँ।'' दोनों की बात सुनकर मीना ने पत्ते रख दिये और यह उदास करने वाली बात ख़ुशगवार लहजे में बोलीं—

'तुम दोनों तो बच्चों और ख़ानदान वाली हो। तुम पर उनकी ज़िम्मेदारियाँ हैं। तुम्हें अभी ज़िन्दा रहना चाहिए। मेरा क्या है? मेरा तो न कोई बच्चा है न कोई ज़िम्मेदारी।' यह बात मौजूद किसी भी बहन को अच्छी नहीं लगी।

''आप पर ही तो सबसे ज़्यादा ज़िम्मदारियाँ हैं। आपने हम सबकी ज़िम्मेदारियाँ उठा रखी हैं।'' मधु ने कहा

''अरे छोड़ो इन बातों को।'' मीना कुमारी ने बेपरवाही से हाथ हिला कर कहा—''सब अपने नसीब का खाते हैं। मेरा मरने की बातें करना

इसलिए भी ज़्यादा सही लगता है कि कि मैंने तो अपने लिए मक्का से कफ़न भी मँगवाकर रखा हुआ है।''

मीना कुमारी इन दिनों मरने की बातें शायद इसलिए भी करने लगी थीं कि उनकी सेहत ठीक नहीं रहती थी। हर थोड़े दिनों बाद उन पर एक अजीब-सी बीमारी का हमला होता। उनकी बाजू और टाँगें सूज जातीं। उनके लिए हरकत करना भी बहुत मुश्किल हो जाता। इस दौरान उनका ज़्यादा वक़्त बिस्तर में लेटकर गुज़रता। इन दिनों में उनकी मुलाज़िमा एक पाँव पर खड़ी रहकर उनकी ख़िदमत करती, मगर ख़िदमत और हिकमत भी उनकी बिगड़ती सेहत को सँभाल नहीं पायी और तकलीफ़ के इन्हीं दिनों में से किसी दिन उन्हें यह अहसास हो गया कि इस फ़ानी दुनिया में अब उनकी साँसें ज़्यादा दिनों की बाक़ी नहीं रहीं। सो, उन्होंने अपनी वसीयत कर दी। वसीयत, जो बाद के दिनों में भी काफ़ी रंज और झगड़े का कारण बनी, यूँ थी–

मैं महज़बीन उर्फ़ मीना कुमारी, मुम्बई भारत निवासी इस समय फ़्लैट नं. 111, लैंडमार्क, कार्टर रोड, बान्द्रा, बम्बई-50 में निवासित, यह अपना अन्तिम मृत्युलेख व वसीयतनामा अपनी स्वेच्छा व ख़ुशी से बनाती और सूचित करती हूँ।

''मैं मुम्बई के श्री चाँदबहादुर सक्सेना और लायंस क्लब इंटरनेशनल मुम्बई के सभापति को अपने इस मृत्युलेख का उत्तरसाधक (एक्ज़ीक्यूटर) नियुक्त करती हूँ।

''मैं अन्य सम्पत्ति के अतिरिक्त निम्नलिखित सम्पत्तियों की अधिकारिणी हूँ और मैं प्रत्येक के सामने लिखे अनुसार इस सम्पत्ति को अपनी मृत्यु के बाद देना चाहती हूँ–

1 (क) फ़्लैट नं. 111, लैंडमार्क 11वाँ माला, कार्टर रोड, बान्द्रा, बम्बई–50

(ख)–251 पाली हिल रोड, बान्द्रा, मुम्बई-50 स्थित ज़मीन,

(2)–मनरूर अल्ताफ़, (3) मंजूर अल्ताफ़ उर्फ़ गुड्डी, (4) दरख्शाँ उर्फ़ कुड्डो, (5) सोनिया शर्मा, (6) उनके मामा के सब अविवाहित लड़के और लड़कियाँ (क्रमांक 6 के सब व्यक्तियों को एक भाग माना जायेगा।) इस प्रकार धारा 4 में लिखित सब सम्पत्ति को छह बराबर भागों में बाँटकर ऊपर लिखे प्रकार से दिया जायेगा। उपर्युक्त विभाजन के लिए दो

व्यक्तियों का नामांकन किया जायेगा। इन दो व्यक्तियों में से एक अप्पा, यदि वह जीवित हों, तथा दूसरा एक व्यक्ति सब प्राप्तकर्ताओं की अनुमति से नियुक्त किया जायेगा। यदि अप्पा जीवित न हुईं तो दोनों व्यक्ति सब प्राप्तकर्ताओं की सर्वसम्मति से नियुक्त किये जायेंगे। प्रत्येक प्राप्तकर्ता के हिस्से में आने वाला धन आगे लिखे हुए तरीक़े से दिया जायेगा। 25 प्रतिशत शिक्षा के लिए ख़र्च, 40 प्रतिशत विवाह के लिए ख़र्च और 35 प्रतिशत दहेज अथवा लड़कों को शादी के बाद दिया जायेगा। उपयुक्त विभाजन के लिए नियुक्त व्यक्ति प्रत्येक प्राप्तकर्ता के हिस्से का रुपया उसके ही नाम से किसी बैंक में जमा करेंगे और बैंक को ऊपर लिखे हुए अनुपात में पैसा देने का निर्देश देंगे। यह सब मेरी तरफ़ से और मेरे नाम में दिया जायेगा।

''मेरी व्यक्तिगत डायरी जिसमें मेरे जीवन के बारे में और कविताएँ लिखी हुई हैं, यह श्री गुलज़ार सिने निर्देशक को दी जायेगी पूर्ण। उन्हें कविताएँ प्रकाशित करने का अधिकार होगा और उसकी आय का जो चाहे कर सकेंगे।

ऊपर लिखी हुई सम्पत्ति व पूँजी व अन्य सब चल व अचल सम्पत्ति जो भी और जहाँ भी हो और जो मीना की हो और जो कि उनके क़ब्ज़े में और अधिकार में हो और अन्य सब सम्पत्ति और पूँजी जो उन्हें इसके बाद प्राप्त हो अर्थात् सब चल व अचल सम्पत्ति, जो भी और जहाँ भी हो, जिसके ऊपर उन्हें मृत्यु के समय मालिकाना अधिकार हो, मैं इस वसीयतनामे के द्वारा देती हूँ। ये सब सम्पत्तियाँ ऊपर लिखी हुई धाराओं में उपयुक्त स्थान पर जोड़ दी जायेंगी और उस प्रकार विभाजित की जायेगी। यह विभाजन ट्रस्ट, व्यक्तियों में मीना के आयकर, अन्य सब क़र्ज़ और उत्तरदायित्व जो भी हों, के देने के बाद किया जायेगा।

''इसके प्रमाण में मैं, महजबीन उर्फ़ मीना कुमारी आज 6 मार्च, 1972 को मुम्बई में दस्तख़त करती हूँ।''

श्रीमती महजबीन उर्फ़ मीना ने इस अपने आख़िरी वसीयतनामे पर हमारे व हम में से प्रत्येक के सामने दस्तख़त किये और हमने एक-दूसरे के सामने प्रामाणिक गवाह के रूप में अपने नाम लिखे।

द. महज़बीन उर्फ मीना कुमारी। (1) द.—वकील। (एस. ए. शेट्टी) 6. 3.—72. (2) द. सी.बी. सक्सेना 6.6.72।

सी. बी. सक्सेना, स्वर्गीय मीना कुमारी का सचिव, लैंडमार्क, 175 कार्टर रोड, बान्द्रा, मुम्बई–50।

ख़ैर, इस वसीयतनामे से मतलब उसे, यह जिसके काम की हो। हम मीना के आख़िरी दिनों की ओर बढ़ चुके हैं। जब यह सम्पत्ति मीना के ही काम न आयी तो यह वसीयत दरयाफ़्त करना हमारे किस काम का?

मीना तमाम उम्र तकलीफ़ में रहीं, मगर उसका रत्तीभर अहसास उन्होंने अपने चेहरे पर होने नहीं दिया। अपने आख़िरी दिनों में भी यह अदाकारी वह सफलतापूर्वक निभा गयीं। काफ़ी तकलीफ़ में थीं, लेकिन पूरी कोशिश कर रही थीं कि उनके चेहरे से तकलीफ़ का इज़हार न हो। उनका पेट फूला हुआ था, जैसे इसमें पानी भर गया हो। उन्हें इस हालत में देखना भी ख़ासा तकलीफ़देह था। वो बड़ी मुश्किल से बात कर पाती थीं। उन्हें तो यह भी नहीं मालूम था कि वह अपने जीवन में आख़िरी हफ़्ते में दाख़िल हो चुकी हैं।

दुनिया एक सराय

अब मुझको रुख़्सत होना है अब मेरा हार-सिंगार करो
क्यूँ देर लगाती हो सखियो जल्दी से मुझे तय्यार करो

आख़िरी हफ़्ता

25 मार्च, 1972 को मीना कुमारी की तकलीफ़ बहुत बढ़ गयी। जिस्म को ज़रा-सी हरकत देना भी उनके लिए मुहाल हो गया। ख़ुर्शीद, उनकी बड़ी बहन, डॉक्टरों के कहने पर दवाएँ दे रही थीं और दीगर हिदायत पर भी अमल कर रही थीं। इस दौरान हालत ज़रा सँभली तो मीना कुमारी ने ख़ुर्शीद से कहा—



आख़िरी पलों में मीना और मधु

"आपा, मेरा ख़याल है, मैं अब अपने आख़िरी वक़्त में हूँ। इत्मीनान है कि सारे काम निपटाकर जा रही हूँ। ख़याल है कि मेरा आख़िरी वक़्त

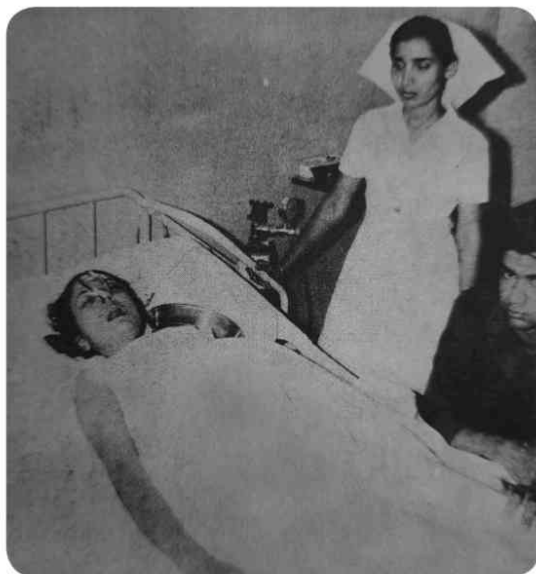
अब ज़्यादा दूर नहीं। मुझे ख़ुशी है कि मैं सारे काम निपटाकर जा रही हूँ। कोई काम अधूरा नहीं रहा। मेरे पास जो भी बचा-खुचा है, वह मैं तुम्हारे और तुम्हारे बच्चों के लिए छोड़कर जा रही हूँ। बस, इतना ही कि मेरी ग़लतियों को माफ़ करना।'' मीना ने कहा और दोनों बहनें ज़ार-ओ-क़तार रो पड़ीं। रोते-रोते ही मीना की आँखें लग गयीं। रोने से ही उन्हें चैन आता था और अबकी दफ़ा जो चैन आया तो वो सो गयीं। यह वह आख़िरी नींद थी जो वह चैन से सोयी।

और फिर उसी रात उनकी तबीयत बिगड़ गयी। ऑक्सीजन का इन्तज़ाम घर पर भी रखने की हिदायत डॉ. शाह की थी। उन्हें ऑक्सीजन लगा दी गयी। सुबह डॉक्टर शाहिद को बुलाया गया। ख़ुर्शीद ने कमाल अमरोही को भी उनकी हालत से बाख़बर कर दिया।

कमाल को मीना की गिरती हालत का अन्दाज़ा था, मगर उन्हें इस आख़िरी वक़्त पर बुलाया जायेगा या उन्हें आख़िरी वक़्त पर केवल सन्देशा देने के क़ाबिल समझा जायेगा, इसका इमकान उन्हें नहीं था। ख़ैर, वो फ़ौरन आ गये। डॉक्टर शाहिद के ख़याल में मीना कुमारी की हालत गम्भीर थी। उन्होंने मशवरे के लिए एक और सीनियर डॉक्टर मोदी को बुला लिया। दोनों इस नतीजे पर पहुँचे कि उन्हें किसी ऐसे अस्पताल में दाख़िल कर दिया जाये जहाँ ज़्यादा सहूलियतें मौजूद हों। मीना कुमारी अस्पताल जाने के लिए तैयार नहीं थीं। बचपन से ही जिसके भाग्य में हॉस्पिटल, मर्ज़, दवाइयाँ, ऑपरेशन ही लिखें हों उसका अपने आख़िरी वक़्त में इन सब चीज़ों से ऊब जाना बहुत लाज़िमी है। मीना कुमारी ख़ुद से हार चुकी थीं मगर डॉक्टरों को अभी आस बाक़ी थी। डॉ. शाहिद ने सेंट एलिज़ाबेथ नर्सिंग होम में उन्हें दाख़िल कराने के इन्तिज़ामात कर लिए और उनके लिए एक प्राइवेट कमरा बुक करा लिया।

28 मार्च को सुबह दस बजे जब मीना कुमारी को अस्पताल ले जाने की तैयारियाँ हो रही थीं और एम्बुलेंस के लिए फ़ोन कर दिया गया था, तो मीना कुमारी ने ख़ुर्शीद से पूछा कि घर में कितने पैसे हैं? ख़ुर्शीद ने देखने और कुछ जगहों पर ढूँढ़ने के बाद बताया कि घर में सिर्फ़ एक सौ रुपये मौजूद हैं। क्या क़यामत थी कि वो औरत जिसने ज़िन्दगी में लाखों कमाये और लाखों लुटाये, उसके घर में इस वक़्त सिर्फ़ सौ रुपये थे। मीना कुमारी सोच में पड़ गयीं कि इन हालात में वो कैसे एक

निहायत महँगे अस्पताल में दाख़िल होने जा सकती थीं? ज़कात करते वक़्त जिसका हाथ हमेशा ऊपर रहा हो, अल्लाह कभी उसके हाथ माँगने को नहीं फैलाने देता। मीना ने तमाम उम्र फ़राख़दिली से लोगों की मदद की थी तो इस आख़िरी वक़्त में उन्हें किसी के आगे पैसे के लिए हाथ फैलाना पड़े, यह ऊपर वाले के इन्साफ़ में भी सही नहीं होता।



अब दामन-ए-दिल छोड़ दो बेकार उम्मीदों

ऐसे ही वक़्त में मीना कुमारी की तबीयत की ख़बर सुनकर 'दुश्मन' फ़िल्म के निर्माता प्रेम जी ने अपने एक आदमी को दस हज़ार रुपये लेकर फ़ौरन भेज दिया। प्रेम जी पर मीना कुमारी के पैसे बकाया थे। पैसे लेकर आये आदमी ने बताया कि मीना कुमारी के उन पर पैसे बकाया हैं और वह उन्हें देने ही आये हैं।

मीना को थोड़ी राहत हुई। वह आख़िरी बार शृंगार को बैठीं। ख़ुद से ही तैयार हुईं, थोड़ी देर कमरे में मौजूद एक-एक चीज़ को निहारा और फिर अपनी बहन ख़ुर्शीद से कहा—

''आपा! इस दफ़ा मैं वापस नहीं आने की। मेरे बाद मेरे इस कमरे को ताला लगा देना। मेरे मरने के बाद मुझे यहाँ एकदफा ज़रूर ले आना और फिर मुझे माँ-बाबूजी की क़ब्र के सामने दफ़न कर देना।''

मीना की इस बात से तो पत्थर भी रो देता, ख़ुर्शीद तो फिर भी अपनी बहन थी, बड़ी बहन। वह ज़ार-ओ-क़तार रोने लगी। मीना ने उन्हें सँभाला और घर से बाहर आ गयीं। आख़िर दफ़ा घर को और घर वालों को 'ख़ुदा-हाफ़िज' कहा और लिफ़्ट में दाख़िल हो गयीं।

कार्टर रोड के कुछ हिस्से में ये ख़बर फैल चुकी थी कि मीना कुमारी को अस्पताल ले जाया जा रहा है। एम्बुलेंस के इर्द-गिर्द भी लोग जमा हो चुके थे जो दुखी चेहरे लिये ख़ामोश खड़े मीना कुमारी को एम्बुलेंस में बिठाये जाने का मंज़र देखते रहे।

डॉक्टर शाह को बड़ी मुश्किल से सेंट एलिज़ाबेथ नर्सिंग होम में प्राइवेट और एयर कंडीशंड कमरा मिला था। काग़ज़ी कार्रवाई के बाद मीना कुमारी को दाख़िल किया गया और सबसे पहले उनके पेट से पानी निकाला गया, जिसके बाद उनकी तबीयत में बेहतरी आयी। कमाल अमरोही को भी इस दौरान मीना कुमारी के अस्पताल में दाख़िल होने की ख़बर मिल चुकी थी। वो शाम को पाँच बजे के क़रीब अपने बेटे के साथ अस्पताल पहुँचे और बेटे को वेटिंग रूम में बैठाकर खुद मीना कुमारी के बेड पर आ बैठे। उनके चेहरे पर उदासी साफ़ देखी जा सकती थी।

क्या अजब था कि उनकी मुहब्बत का आग़ाज़ भी अस्पताल के किसी बिस्तर से शुरू होकर अपने अंजाम तक भी अस्पताल के किसी बिस्तर पर ही आ पहुँचा था। वो मुहब्बत अब ख़्वाब-ओ-ख़याल हो चुकी थी। दरियाओं में न जाने कितना पानी बह चुका था। सात सालों का यह फ़ासला सात जन्मों से कम नहीं था। कमाल यूँ ही टेक लगाये मीना के सिरहाने बैठे रहे और फिर चन्द लम्हों बाद मीना ने अपना सर कमाल अमरोही के कन्धे पर लगा दिया और बहुत धीमी आवाज़ में बोलीं—

''मैंने दुनिया देख ली, चन्दन। अब मुझे इस दुनिया से और कुछ नहीं चाहिए। अब मेरे लिए यही काफ़ी है कि आपकी बाँहों में जान दे दूँ। कमाल अमरोही की आँखों में भी आँसू तैर गये। चश्मे की आड़ में ही उन्होंने अपने को मज़बूत दिखाया, चश्मा उतारकर साफ़ किया। उन्हें भी बीते सात सालों की कमी जतानी थी। गुज़रे सात सालों से जो ख़ला वह महसूस कर रहे थे, ज़ाहिर करना था। माफ़ी दरयाफ़्त करनी थी, रोना था। पेशानी चूमनी थी। मगर इससे पहले कि वे कुछ बोल पाते, वक़्त पूरा हो चला था।

नर्स आयी और उसने आते ही सबको बाहर जाने का हुक्म सुना दिया। उसका कहना था कि रात को मरीज़ के पास कोई नहीं रहेगा। कमाल बुझे मन और भारी क़दमों से बाहर निकल गये। उस चहारदीवारी में रह गयी तो सिर्फ़ मीना कुमारी अकेली, कमज़ोर, दर्द से कराहती और छत ताकती हुई आँखों के कोरों से आँसू ढलकाती मीना कुमारी। उन्होंने महसूस किया कि मौत का फ़रिश्ता अस्पताल में इसी कमरे में बैठा उनकी राह तक रहा है। उन्होंने उसे देखकर मुस्कुराने की कोशिश की, मगर नाकामयाब रहीं।

30 मार्च तक मीना कुमारी की हालत बद-से-बदतर हो गयी। उनके शरीर की हालत ऐसी थी कि कोई भी दवा कारगर नहीं हो रही और अगर दवा असर नहीं करेगी तो मीना का बचना मुश्किल होता जायेगा। यही सोच कर डॉक्टरों की एक टीम ने उनकी हालत के बारे में सलाह मशवरे के लिए मीटिंग की और सभी इस बात पर एक राय हुए कि लंदन की हेपैटोलॉजिस्ट शैला शेरलॉक से एक बार फिर राबता किया जाये। शायद वह ही कोई राह सुझा दें, मगर मीना के लिए ऊपर वाले ने दूसरी ही राह बना रखी थी। वह राह जो इस मिट्टी की दुनिया को छोड़ कर उन तक पहुँचती है।

सो, डॉ. शैला शेरलॉक ने दवा तो सुझाई, मगर वह भी मीना के दावे को लेकर पुरउम्मीद नहीं थीं। वह तो इसी बात पर हैरतज़दा थीं कि मीना अभी तक ज़िन्दा कैसे है? ख़ैर, शैला ने जो इंजेक्शन बताया, वह सिर्फ़ यूरोप में उपलब्ध था। जो किया जा सकता था, वह किया जा रहा था। प्रो. कुकर और अच्छे दोस्त ओ.पी. रलहन ने लंदन अपने एक दोस्त को तलब कर कहा कि दवा लेकर फ़ौरन बम्बई की फ्लाइट पकड़ो। दोस्त ने तेज़ी दिखायी और आने वाली पहली फ्लाइट पकड़ ली, मगर मौत की रफ़्तार से तेज़ भला कौन-सी रफ़्तार होती?

मीना कुमारी अपनी आख़िरी साँसों में हैं, इस बात की ख़बर अमूमन पूरी बम्बई को ही हो चुकी थी। इसलिए क्या दोस्त, क्या निर्माता और क्या अख़बार वाले, सबके फ़ोन लगातार ही आ रहे थे। आ रहे फ़ोन का जवाब देने में ख़ुर्शीद और बेगम पारा बेज़ार हो ही रही थीं कि इसी वक़्त ख़ुर्शीद को मीना कुमारी की चीख़ सुनाई दी। वो घबरा कर उल्टे क़दम दौड़ी-दौड़ी कमरे में आयीं तो देखा, मीना कुमारी नाक में लगी अपनी

नलियों और सुइयों समेत बेड पर उठ बैठी थीं। ख़ुर्शीद को देखकर उन्होंने दोनों बाज़ू फैलाये, गोया उनसे लिपट जाना चाहती हों। उसी हालत में वो डूबती-सी आवाज़ में बोलीं—

"आपा! मैं मरना नहीं चाहती।" ख़ुर्शीद ने उन्हें बाँहों में भर लिया और चुपके-चुपके रोने लगीं। ख़ुर्शीद अपनी गुड़िया को, अपनी मंजु को, अपनी प्यारी बहन को ढाढ़स दे पातीं, यह कह पातीं कि पागल! चुप कर हम तुझे जाने थोड़े ही देंगे? उससे पहले ही मीना कुमारी की गर्दन उनके कन्धों पर ही निढाल हो गयी। वो कोमा में चली गयीं। दूसरे रोज़ वो दोपहर तक कोमा में रहीं। कमाल का हाल पागलों का-सा था। वह अपनी बात कहने को चेहरा ढूँढ़ते और फिर एक ही बात दुहराते—

मीना जा रही है। कोई उसे रोक ले! मगर वह जानते थे कि देर हो चुकी है। बहुत देर। जब उन्हें मीना को रोकना चाहिए था, तब अहंकार की मार ने रास्ता रोक लिया था। अब जब वह मीना को रोक नहीं सकते तब सिवाय आँसू और पछतावे के उनकी झोली में कुछ नहीं था।

बेगम पारा ने ही डॉक्टरों से मीना के बचने की उम्मीद की बाबत पूछा। डॉक्टर ने घोर निराशा में कहा कि उम्मीद कोई बाक़ी नहीं। अगर घरवाले सहमत हों तो ऑक्सीजन का पाइप निकाल दिया जाये। बेगम पारा ने कमाल से बात की। उन्होंने कहा कि जब बचने का कोई उम्मीद बाक़ी ही नहीं रही तो फिर मीना के जिस्म को तकलीफ़ देने से क्या फ़ायदा? बेहतर हो कि मीना को मुक्त कर दिया जाये।

डबडबाये कमाल से मीना का दर्द यूँ भी देखा नहीं जा रहा था, पर उन्होंने एक ज़हीन काम किया। उन्होंने कहा कि उनकी इजाज़त हैं, मगर बेहतर हो कि मीना की बहनों से भी इजाज़त ले ली जाये।

मीना की छोटी बहन मधु ने जब इस बाबत सुना तो उन्होंने फ़ौरन ही इनकार कर दिया। मीना जिस ऑक्सीजन के सहारे बाक़ी थीं, वह कौन निर्मोही निकाले जाने का पाप लेता? मौत कुछ देर और दरवाज़े पर खड़ी रही। मौत दरवाज़े पर खड़ी रही क्योंकि कमरा मीना के चाहने वालों से भरा था। चाहने वाले सबों ने मान लिया था कि मीना का अब-तब लगा है।

इन्सान को आख़िरी आस ऊपर वाले की ही होती है। मीना की साँसें एक दफ़ा हिचकियों में आयीं तो बेगम पारा ने आख़िरी पुकार लगायी—

''ख़ुदा के लिए कोई कहीं से आब-ए-ज़मज़म ले आये। उनके मुँह पर आब-ए-ज़मज़म के छींटे दो, होश में आ जायेंगी।'' सब किया गया, मगर होनी, कमरे में मौत का रूप धरे आन बैठी थी और सिर्फ़ वही थी, जो चेहरे पर बिना कोई शिकन लिये ठीक वक़्त का इन्तज़ार कर रही थी।

अचानक ही ख़ुर्शीद ने देखा कि मीना की पलकों में हल्की-सी हलचल हुई है।

''मुन्ना! ख़ुर्शीद चिल्लाई!

''मंजु!'' कमाल बेज़ार हुए! कमरे में मौजूद सभी लोगों ने देखा कि मीना की आँखें खुलीं।

मीना की आँखें खुलीं। चन्द पलों के लिए कमरे के हर कोने, हर चेहरे का जायज़ा लिया। शायद मौत के उस फ़रिश्ते को तलाश किया जो अव्वलीन से ही उनके पीछे लगा था। एक बेनूर-सी थकन आँखों में आयी और फिर आँखें बन्द हो गयीं।

हमेशा के लिए।

ठीक तीन बजकर पच्चीस मिनट पर मौत का फ़रिश्ता मीना कुमारी को अपने साथ लेकर चल दिया और छोड़ गया मिट्टी का वह शरीर, जिस पर मौजूद लोग दहाड़ें मार कर रो रहे थे।

देश की महान अभिनेत्री मीना कुमारी की कहानी ख़त्म हो चुकी थी। मगर...

चराग़ कहाँ रोशनी कहाँ

रहता नहीं इंसान तो होता नहीं गम भी
इक रोज जमी ओढ के सो जायेंगे हम भी।

हर कोई इस तरह दहाड़ें मार-मारकर रो रहा था जैसे मीना से उसका सबसे क़रीबी रिश्ता हो। वह यूँ गयीं जैसे कोई सुरीली तान छेड़ते हुए ही सितारे का तार टूट जाता है। जैसे कोई नग्मा अधूरा रह जाता है, जैसे ख़ामोशी से दिल टूट जाता है, जैसे...

लेकिन वे अपने दिल में कोई पछतावा लेकर इस दुनिया से रुख़सत नहीं हुई। वह जो भी थी, जैसी भी थी, उन्होंने किसी से कोई शिकवा नहीं किया, किसी को कोई इल्ज़ाम नहीं दिया। मक़बूल अदाकारों की मौत की ख़बर जंगल की आग की तरह फैलती है। इसीलिए जब सात बजे के क़रीब एम्बुलेंस मीना कुमारी की मय्यत लेकर लैंड मार्क बिल्डिंग के सामने पहुँची तो वहाँ लगभग डेढ़ हज़ार लोगों का जमावड़ा मौजूद था। हुजूम को क़ाबू में रखने के लिए पुलिस के इन्तज़ामात करने पड़े। कमाल अमरोही, ख़ुर्शीद के पति अलताफ़ और बाकि लोग स्ट्रेचर पर मीना कुमारी के मुर्दा जिस्म को उठाये, एक-एक सीढ़ी निहायत एहतियात और आहिस्तगी से चढ़कर ग्यारहवीं मंज़िल पर पहुँचे। हैरत की बात थी कि लोग सीढ़ियों में भी दोनों तरफ़ ग्यारहवीं मंज़िल तक खड़े थे। राहदारियों में लोग भरे हुए थे। वे सब मीना कुमारी और उनके घर वालों के लिए अजनबी थे, लेकिन मीना कुमारी इन सबके लिए अजनबी नहीं थीं। शायद वो उनके दिलों में बसती थीं। मीना कुमारी को उनके उस बेड पर लिटा दिया गया जिस पर शायद उन्होंने बहुत-सी रातें गुज़ारी थीं। वे हमेशा के लिए सोते हुए भी उतनी ही ख़ूबसूरत और पुरसुकून लग रही थीं, जितनी असली ज़िन्दगी में थीं। फ़िल्म इंडस्ट्री की हर क़ाबिल-ए-ज़िक्र शख़्सियत उस वक़्त इस फ़्लैट में इस इमारत में मौजूद थी। प्राण, भारत भूषण, अरुणा ईरानी,

राजकुमार, शशि कपूर, राजेन्द्र कुमार, संजीव कुमार, अमिताभ बच्चन, अनिल धवन, नवीन निश्चल, रणधीर कपूर, समीर, विनोद खन्ना, शत्रुघ्न सिन्हा, नासिर ख़ान, वहीदा रहमान, नन्दा, राखी, लीना चन्दावरकर, जया भादुड़ी, फरीदा जलाल, हेलन, नसीम बानो और न जाने कौन-कौन था। अपने वक़्त के तमाम बड़े प्रोड्यूसर, डायरेक्टर और म्यूज़िक डायरेक्टर भी थे। लंदन में जिस शख़्स को इंजेक्शन ख़रीदकर पहली फ्लाइट से आने की हिदायत दी गयी थी, वो भी इंजेक्शन लेकर आ पहुँचा, लेकिन इस वक़्त मीना कुमारी के इन्तिक़ाल को आठ घण्टे हो चुके थे।

मीना के फ़्लैट से एक-एक सीढ़ी एहतियात से उतरकर उनका जनाज़ा नीचे लाया गया। कमाल अमरोही और उनके बेटे जनाज़ा उठाने वालों में शामिल थे। मीना कुमारी के बेजान वजूद को उसी कफ़न में लपेटा गया था जो उन्होंने अरसा पहले मक्का से मँगवाकर बड़े जतन से रखा हुआ था। जनाज़ा जब आहू के शोर में सड़क पर पहुँचा तो सामने से तेज़ रफ़्तारी से एक स्याह मर्सिडीज़ रुकी। इसमें से दिलीप कुमार उतरे। उनका चेहरा दुख से सना हुआ था और आँखें नम थीं। वे बम्बई से बाहर कहीं गये हुए थे, उसी वक़्त वापस पहुँचे थे। उन्हें मीना कुमारी के इन्तिक़ाल की इत्तिला मिली थी और जनाज़े पर आ गये थे। वे मीना के सफ़र आख़िरत में उनके साथ मय्यत गाड़ी में बैठे। हुजूम पुलिस के क़ाबू में नहीं आ रहा था। हर कोई मीना कुमारी का आख़िरी दीदार करना चाहता था। एक मय्यत गाड़ी, दस-पन्द्रह कारों और हज़ारों पैदल लोगों के साथ जनाज़े का क़ाफ़िला रहमत बाग़ क़ब्रिस्तान पहुँचा, जहाँ मीना कुमारी के लिए क़ब्र तैयार थी। वहाँ भी जनाज़े की आमद की ख़बर पहले ही से पहुँच चुकी थी। आख़िरी रस्म के बाद कमाल अमरोही के दो बेटों की मदद से मीना कुमारी को क़ब्र में उतार दिया गया और वे भी दूसरे अनगिनत मशहूर और गुमनाम लोगों की तरह सुपुर्द-ए-ख़ाक़ हो गयीं। दिलीप कुमार और कमाल अमरोही समेत तमाम लोगों ने मुट्ठियों में मिट्टी भर कर क़ब्र में डालीं और नम आँखों से फ़ातिहा पढ़ा। और इस तरह मीना कुमारी मिट्टी के बिस्तर पर मिट्टी की चादर ओढ़कर मिट्टी के साथ ही सो गयी।

मीना शायद ख़ुद के लिए ही लिख भी गयी थीं–

क्या लिये जाते हो तुम काँधे पेयारो।
इस जनाज़े में तो कोई भी नहीं हैं।
दर्द है कोई, न हसरत है न ग़म है
मुस्कुराहट भी अलामत है न कोई आह का नुक़्ता
और निगाहों की कोई तहरीर
न आवाज़ का क़तरा
क़ब्र में क्या दफ़न करने जा रहे हो
सिर्फ़ मिट्टी है ये मिट्टी
मिट्टी को ही मिट्टी में दफ़नाते हुए रोते क्यों हो?

यूँ होता तो क्या होता

मीना कुमारी ट्रेजेडी क्वीन थीं। सो, उन्होंने अपना जीवन उसी तरह गुज़ारा और उसी तरह चली भी गयीं। लेखक ने ऐसी कोई हद खुद के लिए नहीं बाँधी। लिहाज़ा, वह किसी और तरह भी सोच सकता है और इस फ़ानी दुनिया के आगे की बात भी सोच सकता है और एक रोज़ वह नींद में यह सब देख लेता है....

वह देखता है कि एक कार चलती जा रही है। बीमार सी-ही सही, मगर पुरकशिश दिखती मीना कुमारी कार की अगली सीट पर आँखें बन्द किये बैठी हैं। कार के शीशों से पहाड़ी हवाएँ, चीड़ और देवदार के पेड़, बादल और ख़ुद पहाड़ पीछे भागते-से दिख रहे हैं। पहाड़ी हवाएँ मीना की आँख के कोरों से बग़ावत कर निकल आये आँसू की एक बूँद से खेल रही हैं। ड्राइविंग सीट पर बैठा उनका सहारा बन्द आँखें किये नीम होश मीना को देखता है और अपनी बायीं बाँह आगे कर देता है। मीना उन मज़बूत बाँह की टेक पर सो जाती हैं। गाड़ी चलती जाती है।

गाड़ी बहुत धीमे-से एक पहाड़ी मैदान में ही रुकती है, इतने धीमे-से कि मीना की नींद में ख़लल न पड़े। मीना हालाँकि उठ गयी हैं। वह अपने सहारे के सहारे ही बाहर निकलती हैं। दोनों खड़े सामने पहाड़ों को देख रहे हैं। वक़्त उन्हें पीछे से देख रहा है। सामने पहाड़ों को लीलते बादल हैं। सूरज को लीलती शाम है और नीचे जंगल को लील लेने को आतुर रात होने को ही है।

अपने सहारे के कन्धे पर अपना सिर टिकाये मीना बादलों की नर्म छुअन को पर्वतों, पेड़ों, शाखों से होते हुए अपने चेहरे पर महसूस करती हैं। इस वक़्त दोनों किसी भी वहम-ओ-गुमान से दूर हैं। दुनियावी परेशानी दुनिया के साथ पीछे छूट चुकी है। बाहम एक तवील ख़ामोशी है।

उनका सहारा उनके साथ है और यह उनका अपना पल है। धुन्ध बढ़ती जा रही है। दो साये जो अभी तक नज़र आ रहे थे, अब धीमे-धीमे धुन्ध में तहलील हुए जाते हैं। आँखों से अब कुछ नहीं दीखता। पीछे रह गयी कार से संगीत की आवाज़ आती है—

ये दामन अब न छूटेगा कभी चाहे ख़फ़ा तुम हो
कहाँ जाऊँ कि मेरी ज़िन्दगी का आसरा तुम हो।

ख़त्मशुद।

भाग-2

मीना, पस-ए-मंज़र



भारत भूषण

अभिनय से प्यार एक चीज़ है और प्यार का अभिनय दूसरी। फ़िल्मों में दोनों की ही ज़रूरत होती है और मीना कुमारी के पास ये दोनों आर्ट थे, जिन्होंने उसे सफल अभिनेत्री बनाया। लेकिन इन दोनों के अलावा भी एक चीज़ उसमें भरपूर थी, प्यार करने की कला से प्यार और इसी ने उसे ज़िन्दगी में गुमराह कर दिया।

मैं उसकी ज़िन्दगी में उस वक़्त आया, जब वह अपने इस शौक़ की कुछ सीढ़ियाँ चढ़ चुकी थी। कमाल अमरोही से उसका प्यार शादी की शक्ल अख़्तियार कर चुका था। शादी चोरी-छिपे हुई थी और खुले आम अपने पति के पास जाकर रहना उन्होंने अभी शुरू नहीं किया था। मेरे ख़याल से इसी दौरान उसे यह अहसास भी हुआ कि शादी का क़दम उसने जल्दबाज़ी में उठा लिया है।

'बैजू बावरा' शुरू हो चुकी थी और सेट पर दिन-रात का साथ हमें बहुत क़रीब ले आया था। इसलिए यह स्वाभाविक था कि मदद के लिए वह मेरी तरफ़ देखती।

क़ानून उसकी कोई सहायता नहीं कर सका। मामला कुछ ऐसा ही पेचीदा था। इधर उसके पिता की बन्दिश उस पर बहुत सख़्त होती जा रही थी। उन्होंने ग़रीबी में दिन काटे थे और अब, जब बेटी 'सोने की चिड़िया' साबित होने को थी, वे डरने लगे थे कि कहीं यह उड़ न जाये। इन दोनों बातों ने उसके सामने एक ही रास्ता खुला छोड़ा था वह पति के पास चली जाये।

वह पिता के घर से न जाती तो भी हमारा साथ लम्बा चलने वाला नहीं था। किसी भी स्त्री-पुरुष का साथ विवाह के पवित्र धागे में बँधे बिना स्थायी रूप नहीं ले सकता और मैं पहले से विवाहित था।

उसकी ज़िन्दगी की एक ट्रेजेडी यह भी रही कि प्यार करने के शौक़ में या सहारे के लिए जब भी उसने हाथ बढ़ाया, ज़्यादातर किसी शादीशुदा की ही तरफ़।

'बैजू बावरा' हिट फ़िल्म थी और हिट फ़िल्म की जोड़ी अक्सर कई फ़िल्मों के लिए ले ली जाती है। इस फ़िल्म के बाद मीना कमाल अमरोही के पास चली गयी थीं। उस वक़्त कमाल साहब ने बहुत-सी चीज़ें बर्दाश्त कर लीं, लेकिन यह उन्हें बर्दाश्त नहीं था कि कोई प्रोडयूसर मीना के साथ मुझे हीरो ले। मशहूर प्रोड्यूसर-डायरेक्टर एल.वी. प्रसाद इन्हीं दिनों हम दोनों को लेकर फ़िल्म बनाने के लिए बड़े उत्साह से आये थे। उनके समेत हर प्रोड्यूसर कमाल साहब से इनकार पाकर लौटता रहा और 'बैजू' की हिट टीम फिर 'नहीं' के बराबर हो पायी। हम दोनों अलग-अलग, अपने-अपने क्षेत्रों में बिज़ी हो गये।

समय गुज़रता गया और नये-नये नाम मीना के सन्दर्भ में सुनने में आते रहे। किसके साथ उसके सम्बन्ध कहाँ तक रहे, मैं क्या कहूँ?

लेकिन मैं इसे भाग्य की विडम्बना ही समझता हूँ कि फ़िल्म जगत् में एक साथ मशहूर होने, नज़दीक आने और फिर ज़िन्दगी के उतार-चढ़ाव देखने के बाद हम दोनों बान्द्रा की एक ही बिल्डिंग में ऊपर नीचे के फ़्लैटों में रहने पहुँच गये। उसका बेडरूम मेरे बेडरूम के ठीक ऊपर है। और जब वह बीमार थी, रात के दो-दो बजे तक उसके कमरे की हलचलों से मैं जान लेता था, उसे कितनी तकलीफ़ है? ये बातें मुझे बहुत दुखी करती थीं, पुराना साथ याद आता था, लेकिन जब-जब भी मैं तबीयत का हालचाल पूछने गया, उसके साथ जुड़े किसी नाम की उपस्थिति या इन्तज़ार ने यही अहसास कराया कि मैं ग़लत समय पर आ गया हूँ।

अब यह भी कोई छिपी हुई बात नहीं है कि शराब की लत उसे ले डूबी। उसकी शराबनोशी के क़िस्से मैंने जब भी सुने, मुझे भोली-भाली शक्ल वाली वह मीना याद आती रही जो शराब के सख़्त ख़िलाफ़ थी, जिसे इससे नफ़रत थी और जो मुझे 'बैजू बावरा' के सेट पर शराब की बुराइयों पर बाक़ायदा लेक्चर दिया करती थी। उसी मीना की पीने की बढ़ी हुई आदत की बात मुझे चौंकाती नहीं है। बचपन में वह प्यार को तरसी, जवानी में पाँव धरते ही प्यार के नाम पर ठगी गयी, फिर कहीं से सच्चा प्यार पाने की प्यास लिए हर किसी को भरपूर प्यार बाँटती रही,

बिना यह देखे-सोचे कि कौन कितने के लायक है और अनजाने ही प्यार करने की कला के प्यार में ऐसी उलझती चली गयी कि उसे रोग ही बना बैठी।

बदले में मिला क्या? हर किसी ने उसे क्षणिक सुख की साथी बनाया, उसके नाम का फ़ायदा उठाया और अपनी राह आगे गया। वह अपने लिए कोई रास्ता नहीं पा सकी। तब अगर फ्रस्ट्रेशन के किसी गहरे क्षण में उसने ग़म भुलाने को प्याला उठा लिया तो क्या ताज्जुब! किसी ने उसे नहीं बताया कि शराब ने आज तक कोई ज़ख़्म नहीं भरा।

राजेन्द्र कुमार

आज मेम साहब हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनकी यादों के फूल दिलों में महक रहे हैं, जिसकी वजह से ऐसा महसूस नहीं होता कि वह हमसे दूर हो गयी हैं। मुझे आज भी यह कल की ही बात लगती है जब निर्माता-निर्देशक देवेन्द्र गोयल ने 'चिराग कहाँ रोशनी कहाँ' के मुहूर्त के दिन फ़िल्म की हीरोइन मीना कुमारी से मेरा परिचय कराया था। मैंने हाथ जोड़कर कहा था–

''मेम साहब, मैं नया आदमी हूँ। आपके साथ कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यह मेरे लिए गर्व की बात है। मैं आपका फैन हूँ। उस समय से जब से मैंने आपको मोतीलाल और स्वर्णलता के साथ एक नन्ही-मुन्नी बच्ची के रूप में 'प्रतिज्ञा' में देखा था।''

''अल्लाह! आप तब से मेरी फ़िल्में देखते हैं!'' मेम साहब ने आश्चर्य से और हर्ष के मिले-जुले स्वर में कहा था।

''अब आपसे एक ही विनती है कि अब जब कि मुझे आपसे कुछ सीखने का अवसर मिला है तो उसमें कंजूसी न करियेगा।''

''अरे, यह आप क्या कह रहे हैं? हमने आपकी फ़िल्में देखी हैं। आप बहुत अच्छा काम करते हैं।' मेम साहब ने शायद मेरी हौसलाअफ़ज़ाई की ख़ातिर कहा था।

मेरे दिल में मीना जी के लिए सदा ही आदर रहा। पता नहीं कौन-सी भावना थी कि मैंने उन्हें पहली मुलाक़ात में 'मेम साहब' कहकर सम्बोधित किया और फिर आख़िरी दम तक इसी नाम से उन्हें पुकारा। अगर मैं कहूँ कि उन जैसी महान अभिनेत्री नहीं देखी, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। मैंने जब तक उनके साथ काम किया, उनमें आम हीरोइनों की सी नख़रेबाज़ी नहीं देखी। मैंने उनके साथ न कभी कोई हेयर ड्रेसर देखी और न निजी मेकअप मैन। वह इतनी सादगी पसन्द

और बनावट से दूर थीं कि बस पाँच मिनट में मेकअप कर लेती थीं और अपने हाथ से कंघा कर के सेट पर पहुँच जाया करती थीं। कभी-कभार फ़िल्म 'बन्दी' के समय कोई सीन कमज़ोर देखतीं तो आहिस्ता से कह देतीं, ''यह सीन दोबारा करिएगा! आपने रिहर्सल में जो एक्सप्रेशन दिये थे, वे टेक में नहीं आये।'' कभी किसी के सामने ग़लती नहीं निकाली, जो कहना हुआ, एकान्त में कह देती थीं।

एक दिन की बात है कि हम लोग 'अकेली मत जइयो' की शूटिंग कर रहे थे कि उन्हें सेट पर आने में देर हो गयी। मैं मेकअप रूम में गया तो देखा, वह रो रही थीं। मेरे पूछने पर वह फट पड़ीं और फूट-फूट कर रोने लगीं और बोलीं—''अब मुझसे बर्दाश्त नहीं होता। ये ज़्यादतियाँ, ये पाबन्दियाँ कहाँ तक सहन करूँ? अब सब्र का पैमाना लबरेज़ हो चुका है, पता नहीं कब छलक जाये।''

''कुछ भी हो मेम साहब, कमाल साहब को छोड़ियेगा मत! यह मेरा छोटा-सा मशविरा है।''

फिर एक दिन सुना कि मेम साहब ने कमाल साहब को छोड़ दिया है। मुझे बहुत दुख हुआ। सारी दुनिया को उनसे सहानुभूति थी। कुछ कहने-जताने और कमाल साहब को बुरा-भला कहने महमूद के घर उनके पास गयीं, किन्तु मैं नहीं गया और न ही मैंने कुछ कहा, क्योंकि मैं कमाल साहब को इतना ही जानता था कि वे मेम साहब के पति हैं, इससे ज़्यादा नहीं। इसलिए मैं कमाल साहब के बारे में कहने का अधिकार नहीं रखता था। इसके बावजूद मुझे मेम साहब का अपना घर छोड़ना अच्छा न लगा। एक दिन महमूद मिला तो कहने लगा—''मीना जी आपकी शिकायत कर रही थीं कि सब मिलने आये'', लेकिन आप नहीं आये।'

मैंने महमूद से कहा—''मेम साहब से कहना, याद है, मैंने उन्हें मशवरा दिया था कि वह घर कभी न छोड़ें। मुझे उनका इस तरह अपना घर छोड़ना अच्छा नहीं लगा।''

इसके बाद वह मुझे एक पार्टी में मिलीं तो कहने लगीं—''हमने आपको हमेशा अपना हमदर्द और दोस्त समझा, सभी ऐसे वक़्त में हमारे पास आये लेकिन आप नहीं आये।''

मैंने कहा—''महमूद से आपका पैग़ाम मिल गया था और मेरा सन्देश भी आपको मिल गया होगा, मेम साहब! हम हिन्दू लोग शादी-ब्याह को

संयोग की बात मानते हैं। ऐसे रिश्ते क़िस्मत से तो होते हैं। यह संयोग ही है कि आपका जोड़ कमाल साहब के साथ लिखा था।''

मेम साहब ने मेरी बात का कोई जवाब नहीं दिया। वह दरअसल कानों की बड़ी कच्ची थीं। उनके आगे-पीछे रहने वाले जो बात कान में डाल देते थे, वह अमर हो जाती थी। हर व्यक्ति अपने हलवे मांडे के लिए उनसे चिपका हुआ था, इसीलिए कोई नहीं चाहता था कि वह कमाल साहब के यहाँ रहें।

यह यक़ीनन है कि मेम साहब जब तक कमाल साहब के यहाँ रहीं, एक बीवी की तरह रहीं। कमाल साहब उनके पति थे और हर कोई घर की इज़्ज़त परदे में रखता है। यह दुरुस्त है कि उन पर कुछ पाबन्दियाँ थीं और प्रतिबन्ध प्रकट रूप से कष्टजनक अवश्य होते हैं, किन्तु इससे एक तरह का भ्रम बना रहता है और घर की बात बाहर नहीं जाने पाती। परदे में आदमी चाहे कुछ भी करे, नंगा क्यों न नाचे, किन्तु वह ऐब या दोष नहीं कहलाता, किन्तु वही काम घर की चहारदीवारी के बाहर समाज के सामने सरेआम करे तो ऐब बन जाता है। मेम साहब कमाल साहब के यहाँ शराब पीती थीं या नहीं, मुझे इसकी जानकारी नहीं है। अगर पीती भी होंगी तो इतनी आज़ादी से नहीं, पति-पत्नी बैठकर एकाध पेग ले लेते होंगे तो उसमें कोई ऐब की बात न थी। यही कारण है मेम साहब ने कमाल साहब का घर छोड़ा तो उनके जीवन का शीराजा बिखर गया। मैं जब कभी यह सुनता कि मीना जी शराब पीती हैं तो मुझे बड़ा आश्चर्य होता था, क्योंकि प्रायः जब कभी शाम को शूटिंग की थकान दूर करने के लिए मैं और बाकर साहब एक-आध पेग ले लिया करते तो मेम साहब मुझे रोका करतीं—''यह आप क्या पीते हैं? यह ज़हर है, इसे मत पिया कीजिए।''

आश्चर्य यही है कि वह ज़हर को जानते हुए क्यों उपयोग करने लगी थीं?

'दिल एक मन्दिर' मेरी मेम साहब के साथ आख़िरी फ़िल्म थी। इसके पश्चात् उनके साथ काम करने का अवसर नहीं मिला। इसलिए जब कभी मुलाक़ात हो जाती तो घर पर बुलातीं और मैं समय मिलने पर पत्नी के साथ उनके यहाँ चला जाया करता। अधिक आना-जाना इसलिए नहीं रखता था कि उनके इर्द-गिर्द रहने वाले किसी तीसरे आदमी के प्रवेश को अच्छा नहीं समझते थे। उनको सदा डर लगा रहता था कि कहीं हमारा

पत्ता न कट जाये। हमारी रोटी न छिन जाये। हमें मेम साहब से कोई लालच नहीं था, अलबत्ता उनकी हालत देखकर दया आती थी। डॉक्टरों ने उन्हें शराब पीने से मना कर दिया था, किन्तु लोग कहते हैं कि उनकी नज़रों में भला बनने के लिए लोग उन्हें चोरी-छिपे शराब मुहय्या करा देते थे। उनके मरने से शायद चार माह पहले मैं मिला था तो मैंने उनसे कहा था, ''आप शराब छोड़ दीजिए न? क्या रखा है इसमें?''

''कहाँ पीती हूँ? डॉक्टरों ने शराब ही नहीं पान भी छुड़वा दिया है।'' मेम साहब ने बड़ी निराशा भरी आवाज़ में कहा था।

लेकिन यह हक़ीक़त है कि वह इन दोनों चीज़ों को पूर्ण रूप से कभी छोड़ न सकीं और न छोड़ने का कारण यही था कि किसी ने चाहा ही नहीं कि वह छोड़ें।

'पाकीज़ा' की रिलीज़ के बाद जब मुझे उनकी तबीयत की ख़राबी का पता चला तो मैं पत्नी के साथ उन्हें देखने गया। देखा तो उनकी हालत बहुत ख़राब हो गयी थी। उन्हें लिवर की शिकायत थी जिसके कारण उनका पेट फूल गया था। मैंने यह देखकर उनसे कहा—''मेम साहब आप काले चनों का सूप पिया करो। यह इस रोग के लिए बड़ा मुफ़ीद है और आज़माया हुआ है।''

'हाँ-हाँ, हमारे बाबूजी भी इसका सूप पिया करते थे, लेकिन बनाकर कौन देगा?'' उन्होंने विवशता और निराशा के साथ कहा था।

''मैं बनाकर भेज दिया करूँगी।'' मेरी पत्नी ने कहा।

इसके बाद पन्द्रह-बीस दिन तक काले चनों का सूप नियमित रूप से उन्हें भिजवा दिया जाता था, लेकिन एक दिन मेम साहब की आया का फ़ोन आया कि अब सूप न भेजिएगा, अब हमें भी बनाना आ गया है। हम ख़ुद बना कर पिला दिया करेंगे। आपको बिना वजह तकलीफ़ देने से क्या फ़ायदा?

इस बात के कुछ अरसे के बाद मैं फ़िल्म 'गाँव हमारा शहर तुम्हारा' की आउटडोर शूटिंग के लिए बाहर चला गया जिसकी वजह से उनको देखने न जा सका, लेकिन जब शूटिंग से वापस मुम्बई आया तो पता चला कि मेम साहब की तबीयत बहुत ज़्यादा ख़राब है, लेकिन उस दिन सागर साहब की फ़िल्म 'ललकार' की शूटिंग थी और उनकी तारीख़ चूँकि तय हो चुकी थी, इसलिए सागर साहब ने कहा कि कल दोनों चलेंगे,

आप शूटिंग कर लो। इस पर मैंने अपने सेक्रेटरी से कहा कि वह मेरी ओर से मेम साहब की तबीयत पूछ आये और उनसे कह दे कि मैं कल आऊँगा। उसे ताक़ीद की कि लिली के सफ़ेद फूलों का गुलदस्ता ज़रूर लेकर जाये। दरअसल, मेम साहब को लिली के श्वेत फूल बहुत पसन्द थे। इसलिए मैं जब भी उनसे मिलने जाता तो लिली के श्वेत फूल ले जाना कभी न भूलता।

उस दिन मैं मेकअप कर रहा था कि ख़बर आयी कि मीना कुमारी का देहान्त हो गया। मेरी आँखों के सामने एकदम अँधेरा-सा छा गया। कानों को विश्वास न आया। मुझसे ऐसी हालत में काम नहीं हो सकता था। मैं सीधा अस्पताल गया तो पता चला कि उनका मृत शरीर कार्टर रोड ले जाया जा चुका है। फिर मैं कार्टर रोड चला गया। वहाँ जो कुछ देखा उससे भी तकलीफ़ हुई। वह उम्रभर बेक़रार बेचैन, ज़िन्दगी गुज़ारती रहीं, लेकिन मर कर भी उनकी आत्मा को शान्ति न मिली। इसका बड़ा अफ़सोस है!

कुछ लोग जब दुनिया में आते हैं तो झोली फैलाये हुए आते हैं, लेकिन वह झोली भर कर आयीं और लोगों को अपनी भरी झोली ख़ाली करने के लिए आमन्त्रित करती रहीं। लोग आते और उनकी झोली से मुट्ठियाँ भर-भर कर ऐश-ओ-इशरत के सामान ले जाते और बदले में दर्द-ग़म उनकी झोली में डाल जाते। वह दूसरों को ख़ुशियाँ बाँट कर उनके ग़म अपने दामन में समेट लेतीं। वह सारे ज़माने को मुहब्बत और खुलूस बाँटती रहीं और ख़ुद दो शब्द मुहब्बत के लिए तरसती रहीं। उन्हें कोई ऐसा न मिला, जिसके कन्धे पर सिर रखकर वह अपना दुख-दर्द कह सकतीं, दिल की भड़ास निकाल सकतीं।

यह कुदरत का अन्याय नहीं तो क्या है कि उन्हें दुनिया की तमाम नेमतें दीं, लेकिन सच्ची और निःस्वार्थ मुहब्बत के दो बोल सुनने को तरसती चली गयीं। आज एक दुनिया उनसे अपनी मुहब्बत जता रही है और उनकी तारीफ़ करते नहीं थक रही है। काश! यह मुहब्बत, यह खुलूस उन्हें ज़िन्दगी में मिल जाता। इसको न कदरी-ए-आलम का सिला कहते हैं।

''मर गयी वह तो ज़माने ने बहुत याद किया।''

कमाल अमरोही

जाने किस सहारे की तलाश थी? पूरा छिला हुआ एक केला मुट्ठी में दबा था। कुछ खाने से मुँह सना हुआ। बदन पर मैली-सी सलवार-क़मीज़।

"यही है मेरी बेटी महज़बीन!" उसके अब्बा मास्टर अली बख़्श ने मेरा परिचय कराया। जब तक मैं ग़ौर से उसे देखता, वह भाग गयी, घर में परदे के पीछे छिप गयी।

उन दिनों मैं सोहराब मोदी के मिनर्वा मूवीटोन में लेखक था। हमें एक छोटी बच्ची की ज़रूरत थी और मोदी साहब ने मुझे दादर के मास्टर अली बख़्श की उस बेटी को देखने भेज दिया था। मुझे वह लड़की बहुत पसन्द आयी, पर किसी वजह से उसे वहाँ काम न मिल पाया। तब भी मुझे वह भविष्य की बहुत बड़ी अदाकारा मालूम पड़ी थी।

जब मुझे दादर से गुज़रना होता, तो मैं बस में उसके मकान वाली तरफ़ बैठता और अपने दोस्त से यही कहता। वह मुझ पर हँसा करता था।

वक़्त बीतता गया। धीमे-धीमे मैं उस बच्ची को भूल गया। लगभग आठ साल बीत गये। जवान होकर वह लड़की धार्मिक फ़िल्मों में हीरोइन बन गयी थी...पर मुझे मालूम न था कि यह उन्हीं मास्टर अली बख़्श की महज़बीन है।

फ़िल्मकार की ओर से 'अनारकली' बनाने की बात थी और अनारकली के रोल के लिए मधुबाला से बात बनकर बिगड़ चुकी थी। एक बार मैंने बॉम्बे टाकीज़ के स्टूडियो में इस लड़की को काम करते देखा था। मुझे यह लड़की एकदम जँच गयी, पर निर्माताओं और निर्देशकों को वह पसन्द न थी।

बात बनती-बिगड़ती यहाँ तक पहुँची कि मैं उस फ़िल्म का राइटर-डायरेक्टर और मीना कुमारी हीरोइन। अब तक उन्होंने कुछ फ़िल्में

और साइन कर ली थीं, शूटिंग में बिज़ी रहने लगी थीं। महाबलेश्वर से जब वह से लौट रही थीं, उनकी कार का ज़बरदस्त एक्सीडेंट हो गया। वे घायल होकर पाँच महीने पूना में इलाज कराती रहीं।

उन्हें देखने मैं एक बार गया, दो बार गया और तीसरी बार जब पहुँचा, वे मौसम्बी का रस पीने से इनकार कर चुकी थीं। मेरा इसरार उन्होंने मान लिया। वे लेटी थीं। हाथ का सहारा देकर मैंने उन्हें बिठाया, अपने हाथ से रस पिलाया और ख़ुद उस रस में पूरा घुल गया। गिलास ख़ाली होने तक मैं भी ख़ाली गिलास जैसा ही था, जिसका दिल अपना नहीं रह गया था।

अच्छी होकर वे मुम्बई लौट आयीं। बहुत-सी वजहों से 'अनारकली' बन नहीं सकी, लेकिन पूना में जो सिलसिला शुरू हुआ था, यहाँ उसमें ज्वार आ गया। मास्टर अली बख़्श को बेटी की हरकतों पर कुछ शक़ हो गया। वे उन पर नज़र रखने लगे, तो मीना ने उनके सो जाने के बाद मुझे फ़ोन करने का सिलसिला बनाया। गर्मी के बावजूद वे लिहाफ़ लेकर सोती थीं, क्योंकि उसके अन्दर से टेलीफ़ोन आसानी से किया जा सकता था और जब तक चाहें, बात हो सकती थी। एक घण्टे की बातचीत से शुरुआत हुई थी और फिर सुनने में शायद गप्प लगे, रात ग्यारह बजे से सुबह चार बजे तक फ़ोन की लाइन मिली ही रहती थी।

मीना को मैं आज भी उसी शिद्दत से प्यार करता हूँ जैसा तब करता था। इतनी देर हम क्या बातें करते थे, मुझे ख़ुद भी नहीं मालूम, लेकिन मैं जानता हूँ, आज भी वह सामने हों तो बातों का सिलसिला टूटने में नहीं आयेगा।

मैं शादीशुदा हूँ और मेरे बच्चे भी हैं। यह बात मैंने उनसे छिपाई नहीं थी, फिर भी मुहब्बत बढ़ती रही और एक रोज़ हमने चुपचाप शादी कर ली। मैं शिया हूँ और मीना सुन्नी थीं, इसलिए शादी दोनों की रस्मों के मुताबिक़ हुई। शिया निकाह और सुन्नी निकाह दोनों थे। इसके कुछ दिन बाद वे मेरे साथ रहने चली आयीं। वे अपने आप को शिया मानने लगी थीं और कई जगह उन्होंने यह बात कही भी थी। यहाँ तक उन्होंने शिया होने के नाते करबला से अपने लिए कफ़न तक मँगाकर रखा था।

मीना कुमारी को मैंने तलाक़ दे दिया था, मीना ने मुझसे तलाक़ ले लिया था। मीना की शादी किसी और से कराई गयी कि मैं फिर उससे

निकाह कर सकूँ—पचीसों क़िस्म के क़िस्से हैं जो फैले हुए हैं, बल्कि फैलाये गये हैं। तलाक़ के बारे में आम लोगों में बहुत ग़लत फहमियाँ हैं। वे समझते हैं कि ख़ाविन्द ने कह दिया तलाक़ तो तलाक़ हो गया। दरअसल तलाक़ निकाह की ही तरह अहम चीज़ है, मज़ाक़ नहीं है। काज़ी की मौजूदगी इसमें भी ज़रूरी होती है। फिर सुन्नी तलाक़ के मुक़ाबले शिया तलाक़ के कायदे-क़ानून और ज़्यादा सख़्त हैं। यह बदक़िस्मती की बात रही कि कुछ ग़लत असर में आकर उन्होंने मेरा घर छोड़ दिया, लेकिन यह सरासर ग़लत है कि हमारे बीच कभी तलाक़ हुआ था। उनसे मेरी शादी हुई थी। वे मेरी क़ानूनी बीवी थीं, ज़िन्दगी भर और मरते दम तक भी। मौत के बाद की सारी रस्में इसलिए शिया रिवाज़ से हुईं और सबके सामने हुईं, जिनमें हिन्दू थे, ईसाई थे, पारसी और मुसलमान भी थे—शिया-सुन्नी दोनों। अगर उनसे मेरा पहले कभी तलाक़ हो गया था तो क्यों वे मेरे घर में रहती रहीं? क्यों उनके गुनाह बख़्शने के लिए मुझसे कहा गया और क्यों उनकी मय्यत उठाने के पहले मेरी इजाज़त लेना ज़रूरी समझा गया।

वे मेरी क़ानूनी बीवी थीं और इस्लाम क़ानून बीवी को इस बात की इजाज़त नहीं देता कि ख़ाविन्द के रहते वह अपनी वसीयत कर सके। वे अपनी वसीयत कर गयी हैं। उन्हें जो अच्छा लगा, उन्होंने किया और अगर अब कोई यह समझता हो कि उनका पैसा या माल-असबाब हड़प जाने का मेरा कोई इरादा या मंशा है, वह तो ग़लतफ़हमी में है। मुझे यह करना हो तो उस वसीयत को ग़ैरक़ानूनी ठहराकर आज भी कर सकता हूँ, पाँच बरस के बाद भी कर सकता हूँ, लेकिन जैसा मैंने कहा, मुझे उनसे बेपनाह मुहब्बत थी। मैं ऐसा कोई काम नहीं करना चाहता, जिससे उनकी रूह को तकलीफ़ पहुँचे, उनकी नेकनामी को बट्टा लगे।

यह इल्ज़ाम मुझ पर बार-बार लगाया गया है कि मैंने उन्हें पूरी तरह निखरने का मौक़ा नहीं दिया। मैंने उन्हें दबाकर रखा, उन्हें वे रोल करने की छूट नहीं दी, जो वे करना चाहती थीं।

किरदार को समझने की क़ाबिलियत उनमें इतनी थी, जितनी बहुत ही कम आर्टिस्टों को होती है। हिन्दुस्तानी औरत का तो वे जैसे 'सिम्बल' ही बन गयी थीं। यही वजह थी कि उनकी मौत पर हर घर की औरत की आँखों में आँसू आ गये, फिर वह चाहे माँ थी, बहन थी या बेटी थी।

इतना ऊँचा दर्जा किसी-किसी को ही हासिल होता है, लेकिन बाहर लोग-बाग उनके दिमाग़ में एक बात बार-बार भरते रहते थे—''मीना जी, आपको ग्लैमर रोल भी करने चाहिए। यह क्या आप हर फ़िल्म में आँखों में आँसू और हाथों में बच्चा लिए दिखायी देती हैं!''

जब-जब इन बातों के प्रसार में आकर उन्होंने ऊटपटाँग करना चाहा, मैंने मना किया। 'एक ही रास्ता' में उन्हें स्वीमिंग कॉस्ट्यूम पहनाने की कोशिश हुई, पर मैंने साफ़ इनकार कर दिया था। मैं जानता था, उनकी जो इमेज बन चुकी है, स्वीमिंग सूट उसमें फिट नहीं होता। वे पहले इस बात को नहीं मानती थीं, इसलिए एक फ़िल्म की रोल में हीरो के साथ साइकिल पर बैठी उलटती-पलटती कुछ कर गुज़रीं। फ़िल्म जब रिलीज़ हुई तो उनके ख़िलाफ़ इतने ख़त आये कि वे ख़ुद घबरा गयीं यह क्या कर दिया मैंने! तब एक ही बात पूछी मैंने उनसे, ''जब एक रोल में यह हाल है तो जब सोलह रोल यही करेंगी, तब क्या होगा?''

मीना की ज़िन्दगी की कहानी वही थी जिसे इतिहास ने हर मज़हब में बार-बार दोहराया है। मीराबाई को ज़हर क्यों दिया गया? इसीलिए कि दुनियादारी के लिहाज़ से उनके क़दम ग़लत थे। मीना में भी कुछ कमज़ोरियाँ थीं, यह मैं मानता हूँ, लेकिन यह ट्रेजेडी तो हर बड़े आर्टिस्ट की है कि वह कहीं-न-कहीं बेहद कमज़ोर है। इस कमज़ोरी की वजह से उससे नफ़रत नहीं की जाती। जिन लोगों का ख़याल है कि मैं उसे मारता-पीटता था या टॉर्चर करता था, उन्हें मेरा एक ही जवाब है—मेरी फ़िल्म 'पाकीज़ा'। फ़िल्म बनाना इबादत है और उसमें यह नहीं चलता कि मन में कुछ है और आप बनाये कुछ और जा रहे हैं। मुझे मीना से मुहब्बत थी, इसलिए 'पाकीज़ा' के हर फ्रेम में प्यार का रंग आ सका। उससे नफ़रत होती, तो कहीं-न-कहीं उभर ही जाती। उसे 'पाकीज़ा' नाम मैंने ही दिया। फ़िल्म की हीरोइन यूँ चाहे कुछ भी थी, मन से एकदम पाक-साफ़ थी। ठीक यही मीना भी थीं। हालात ने उनसे चाहे जो भी करा लिया, पर वे उस सब के ऊपर थीं— सही मायनों में 'पाकीज़ा'! उनसे नफ़रत का, उन्हें टॉर्चर करने का सवाल ही कहाँ उठता है?

एक्टिंग का जो आर्ट मीना को इतना ऊँचा ले गया, वह कहीं भी अपनी मेहनत से बनाया हुआ नहीं था। वह तो बस पैदाइशी था, क़ुदरत का दिया हुआ। उनकी नानी बंगालन थीं और एक्ट्रेस भी।

पुराने समय की फ़िल्म 'रोटी' में उन्होंने काम किया था। नाना थे मशहूर शायर प्यारेलाल शाकिर मेरठी, जो लखनऊ में रहने लगे थे और क्रिस्तान थे। मीना के पिता हारमोनियम के मास्टर थे। मीना ने नानी से एक्टिंग ली और लिया मिज़ाज का वह बंगालीपन, जो उनमें एक अलग निखार लाया, अपनी अलग-अलग अदा लाया। नाना से पोयट्री ली, पिता से म्यूज़िक मिला और यह सब आर्ट मिलकर मीना कुमारी बन गये।

मीना कुमारी अपनी मर्ज़ी से मेरे साथ आयी थीं, लेकिन मेरा घर उन्होंने छोड़ा उन लोगों की बातों में आकर, जिनका इंटरेस्ट ही इसमें था कि वे किसी सही असर में न रहें। मेरे यहाँ से जाने के बाद की कहानी उनके डाउनफ़ाल और सेल्फ डिस्ट्रक्शन की कहानी है। जाने किस क़िस्म के सहारे की तलाश में वे यहाँ-वहाँ भटकती रहीं और बार-बार धोखा खाती रहीं और आख़िर फ्रस्ट्रेशन में शराब की ओर झुक गयीं।

गोविन्द सिंह

एक नन्ही-मुन्नी बड़े प्यारे चेहरे वाली लड़की को कैमरे के सामने लाया जाता है। तमतमाते बल्बों की तेज़ रोशनी, पार्क लैम्पों से निकलने वाली लपटों के बीच लाकर खड़ा कर दिया जाता है। नन्ही गुड़िया ज़रा भी हिचकती नहीं है। बख़ूबी अपना काम अंजाम देती है। देखने वाले हैरत में पड़ जाते हैं। फिर हर देखने वाला उसकी तारीफ़ करने लगता है।

शाबाश महज़बीन!

लेकिन नन्ही-मुन्नी महज़बीन अपनी इस तारीफ़ से ख़ुश नहीं होती। यह तो उसके लिए मामूली काम था। वह ख़ुश होती है चॉकलेट पाकर। चॉकलेट पाना मुश्किल काम था। घर की हालत ऐसी न थी कि उसको चॉकलेट दी जा सके। इस तरह एक नन्ही-मुन्नी कली, ग़मगीन चेहरे वाली लड़की को सिर्फ़ चॉकलेट के लालच में कैमरे के सामने लाया गया। वह हर काम करने के लिए तैयार होने लगी। शायद उस समय तक उसको इस बात का पता न था कि वह तो केवल चॉकलेट पाती है, पर इस तरह उसके कन्धों पर घर का सारा भार आ गया है। कैमरे के सामने बोलती, ठुमकती तो उसमें नक़लीपन बिल्कुल न होता। ऐसा लगता, वह कैरेक्टर उसके अन्दर ज़िन्दा हो गया है। वही ज़िन्दगी जीने लगती वह। उसका चेहरा गुलाब-सा खिला रहता था, पर हमेशा ग़म में नहाया-सा मालूम पड़ता। ऐसा लगता, गुलाब के इस सुन्दर फूल को किसी ने अभी-अभी आँसुओं से भरी बाल्टी में डुबोकर निकाला है। अपने चेहरे से भी वह महज़बीन लगती थी। अपने नाम के मुताबिक़ उसकी सूरत भी थी, पर दर्द की जीती-जागती तस्वीर लगती, ग़म की शहज़ादी!

परदे पर नाचने वाली तस्वीरों पर उसके क़दम बराबर बढ़ते चले जा रहे थे, पर उसके ज़ख़्मों को भरने वाला कोई नहीं था। तन्हा वह ज़िन्दगी

का सारा दर्द उठाये चल रही थी। जवानी ने न सिर्फ़ उसके जिस्म को सँवारा वरन उसकी कला को भी ऐसा सँवारा कि लोग उसके दीवाने हो गये। हर पात्र में वह जैसे अपना ख़ून, अपनी जान भर देती और दर्शकों के दिलो-दिमाग़ पर वह इस तरह छाने लगी कि वह उनको उनकी नींद में भी चौंकाने लगी।

वक़्त ने उसको मीना कुमारी बना दिया। वह मीना तो बन गयी, पर कच्ची उम्र में उसके जिस्म पर दर्द की जो नक्काशी हो गयी थी, वह मीना कुमारी रात के अँधेरे में जुगनुओं की तरह टिमटिमाने लगी। वह प्यार को कोई नाम नहीं देना चाहती थी। वह प्यार के किसी रिश्ते को कोई इल्ज़ाम नहीं देना चाहती थी। वह प्यार को प्यार ही रहने देना चाहती थी। कोई उसे पुकारा करता हमेशा। वह हमेशा मौजों का सहारा लिए बढ़ती, पर साहिल आने तक उसकी नैया डुबो दी जाती थी। लेकिन कोई आवाज़ दे रहा था, *डुबो देंगे नैया, लेकिन तुझे ढूँढ़ ही लेंगे*। और 'बैजू बावरा' से भोले उस नौजवान ने उसे जब ढूँढ़ लिया तो फिर उसके प्यार को ईंटों से चुन दिया गया। वह नौजवान उसके दिल के 'भारत' का 'भूषण' न बन सका। घायल बुलबुल पिंजरे में सर पटक-पटक कर रह गयी। पिंजरे की तीलियों ने उसको और घायल कर दिया।

लेकिन क़िस्मत ने जो कमाल उसकी ज़िन्दगी में, उसकी अदाकारी के इतिहास में लिख छोड़ा था, उसको पाने से कौन रोक सकता था? उससे उमर में कई साल बड़ा पर अपने लेखन से जवां और ज़ख़्मों के मरहम को जानने वाला कमज़ोर से जिस्म वाला शख़्स उसके इर्द-गिर्द मंडराने लगा। सुकून मिला और उसने अपने सारे 'पाकीज़ा' जज़्बात सरेआम उसको सौंप दिये। वह दुल्हन बन गयीं, कमाल अमरोही की बीवी।

बीवी के बावजूद वह एक बेहतरीन अदाकारा तो थीं ही। उसकी अदाकारी फिर भी फीकी न पड़ी। सिनेमा की चमकती अँगूठी पर उसकी मीना कुमारी सबसे अलहदा दिखाई पड़ती थी। प्यार का सुकून तो मिला, पर किलकारियाँ न पायीं। वह कला की भूखी थी। हर कलाकार उसकी ज़िन्दगी को गुलज़ार करने वाला लगता। कला के लिए उसका यह लगाव कब जिस्मानी रिश्ते में बदल जाता था, शायद उसको खुद इसका अहसास न हो पाता था। उसके दिल से दिल पर जब ज़माना, अफ़वाहों और

थोड़ी-थोड़ी सच्चाइयों के पत्थर फेंकने लगता तो वह बिलबिला जाती थी। उसके ज़ख़्म तब नासूर बनकर रिसने लगते थे।

उसका शादीशुदा रिश्ता वक़्त के साथ-साथ ज़ख़्म बन गया। उसकी ज़िन्दगी को गुलज़ार करने वाला कोई न था, पर एक सोने की क़लम लिए, जवाहरातों के हरूफ़ लिए उसकी ज़िन्दगी को गुलज़ार करने आ गया। यह सहजधारी सिख युवक गुलज़ार उसके दिल का मीना हो गया।

गुलज़ार मीना बन गया। ज़माने ने इस मीना को नोच डाला। बाकर अली ने ईंटों की दीवार खड़ी कर दी, उसको चुनने के लिए पर उसने इस दीवार से छलाँग लगा दी और बाहर आ गयी वह। रिश्ता तोड़ लिया उसने। वह फूल से पत्थर हो गयी। उसके फूल से शरीर को पत्थर से भस्म का साथ मिल गया। पथरीला जाट गुलज़ार कर सका उसकी ज़िन्दगी और देखते-देखते एक अदना-सा कलाकार इस फूल के संग-साथ से बहुत बड़ा हीरो बन गया।

यह उसके जीवन की कितनी बड़ी ट्रैजिडी है कि ख़ुद खोटी रह गयी वह, पर जिसके जिस्म को उसने छुआ, वह कंचन हो गया। कमाल हो या गुलज़ार या धर्मेन्द्र सब कंचन हो गये, पर वह पत्थर ही रह गयी। एक मामूली-सा पत्थर, पर दुनिया क्या जान पाती कि वह मामूली पत्थर नहीं, वह पारस पत्थर है, जिसके स्पर्श से हर लोहा कंचन बन जाता है। इस सच्चाई के बावजूद अपना सुकून मिटाकर भी वह लपककर इब्तदा-ए-इश्क़ में रोयी नहीं। वह अकेली ही अपनी मंज़िल पर चली और कारवाँ बनता गया। शादी होने की तमन्ना में वह हमेशा नाशाद रही। अपनी पलकों पर वह साये सजाये रही, पर उसकी रातें रोशन न हो सकीं। प्यार की प्यासी मीना कुमारी की प्यास न बुझ सकी। वह प्यास सागर पी जाने वाली प्यास थी। छोटे-छोटे नदी-नालों, तालाबों से उसकी प्यास बुझने वाली न थी। वह सागर की तलाश में उसके पास पहुँचने तक में भटकती रही। उसे सागर न मिला। छोटे-छोटे नदी-नाले, तालाब केवल उसका हलक गीला कर सके, प्यास बढ़ाते ही रहे और चले गये।

उसने कभी किसी का बुरा नहीं चाहा। कमाल अमरोही की फ़िल्म 'पाकीज़ा' को उसने अनबन के बावजूद पूरा किया। उससे मिलने के लिए होटल में आये कमाल ने कहा, ''घर चलो मंजु। घर लौट चलो।''

उसने साफ़ कहा, ''मेरा अपना कोई नहीं है। जिस्म सबने चाहा है, मन किसी ने नहीं। अब तो मौत ही मेरी अपनी है।''

कमाल चुपचाप उठकर चले गये। अपने मन की तमाम घुटन और शरीर की बीमारियों के बावजूद वह अपना काम करती रही। उसने 'पाकीज़ा' पूरी कर दी। 'मेरे अपने' में गुलज़ार ने जैसे उसके मन का सारा दर्द अपनी क़लम के माध्यम से उसके द्वारा बोले गये संवादों में उड़ेल दिया है। 'गोमती के किनारे' में सड़क पर पड़े मिले अनाथ लड़के के प्रति उसकी ममता, उसका लगाव जैसे उसके अपने सम्पूर्ण जीवन की गहरी सच्चाई है। 'पाकीज़ा' में अपनी कला को चरम सीमा पर पहुँचा देने वाली मीना कुमारी कहती, ''होंठों पर मुस्कुराहट तो ज़रूर है, पर दिल पर जो बीत रही है, वह क्या तुम जान सकोगे...।'' 'सात फेरे' में उसने जैसे अपना कलेजा निकाल रख दिया है। सात फेरे लगाकर जब पत्नी बन जाती है तो कहती है, ''सात फेरे'' ही औरत को किसी की बीवी नहीं बना देते हैं। सात फेरे के अलावा भी दिल-से-दिल का एक फेरा होता है।''

उसने फ़िल्मी दुनिया का हर गुंचा अपने बेहतरीन अभिनय से ख़ूबसूरत और शानदार बना दिया है। तलाश करती हुई उसकी झील-सी आँखें और दर्द के हर उतार-चढ़ाव के साथ हिलने वाला उसके तराशे हुए संगमरमरी चेहरे पर ऐसा लगा है कि रात के सन्नाटे में, सूने कमरे में कोई मोमबत्ती बस जलती जा रही है, पिघलती जा रही है, जलती जा रही है, पिघलती जा रही है। बूँद-बूँद गल रही है, बूँद-बूँद जल रही है। उफ़! रात की वीरानियों में इस तरह तिलतिल जलना कब तक उसका शरीर झेल सकता है? ग़म ग़लत करने के लिए उसने शराब का सहारा लिया, शायरी का सहारा लिया। उसने अपनी नज़्में, ग़ज़लें गुनगुनायीं, रिकॉर्ड बने, पर पाखी-सा उड़ाता मन कहीं ठौर न पा सका। सागर के किनारे कोई उसको न ले जा सका।

जाने क्यों कला वहाँ अपनी पूरी सच्चाई के साथ रहती है जहाँ जिस्मानी भूख बहुत रहती है। दुनिया के हर बड़े कलाकार के साथ उसकी जिस्मानी हरकतों-करतूतों का एक बहुत बड़ा पुलिन्दा बाँधकर रखा गया देखा है, सुना है लोगों ने, इसलिए हमेशा हैरत से दुनिया ने न जाने क्या कहा है।

मीना कुमारी इससे कैसे बच सकती थी, सबने उसकी गिरती हालत, उसकी ठण्डी सूरत देखकर उसका हाल पूछा, पर किसी ने उसके दिल का हाल न पूछा। वह शोक़ में डूबी हुई एक ग़ज़ल बनकर रह गयी।

दिल और जिस्म साथ-साथ नहीं चला करते। उसे ब्लड कैंसर ने दबोच लिया। अस्पताल की सारी छटपटाहट को मीना ने पी लिया और इस बीमारी के दौरान भी उसकी आँखों को सागर की तलाश थी।

अशोक कुमार

जिस बीमारी की कोई दवा न हो, उस बीमारी का सबसे अच्छा इलाज है—मौत। मीना का मर्ज़ लाइलाज था, यह मुझे मालूम हो गया था। एक्टिंग के मामले में वह मुझसे कितना आगे है, यह मैंने बहुत बाद में जाना, तब जबकि मुझे उसी से पता चला। उसे भी मालूम था, वह ज़्यादा दिन जीती नहीं रहेगी।

वह इंग्लैंड में अपनी बीमारी का इलाज कराके लौटी थी। जानकी कुटीर से उसका बुलावा पाया—"सारी दुनिया ने मेरा इलाज कर लिया, एक बार आप भी आकर देख लेते...।"

देखने पर मैं उसे एकाएक पहचान नहीं पाया। चेहरा इतना चौड़ा हो गया था, पाँव मोटे-मोटे। ज़ाहिर था, गुर्दों ने काम करना बन्द कर दिया है और शरीर की गन्दगी साफ़ नहीं हो रही। इसके अलावा, जिगर की हालत यह जैसे सिका हुआ पापड़, जिसे ज़रा-सा हाथ लग जाये तो बिखर जाये।

इस हद तक पहुँचे हुए रोग की क्या दवा होती भला? कोई और होता तो मैं ऐसे मरीज़ को हाथ भी न लगाता। पर यह तो मीना थी, और मीना से भला मैं कैसे कहता—"मीना तुम बचोगी नहीं।"

मैंने कहा—"तुम बिल्कुल चंगी हो जाओगी, बशर्ते कि तुम कुछ चीज़ों से सख़्त परहेज़ का वादा करो। मैं दवा तभी दूँगा।"

"मुझे मंजूर है।" उसने कहा था।

पाँच-छह महीने गुज़र गये। उसकी हालत सुधर रही थी। उसके इंग्लैंड से लौटने के बाद से मैं उसका इलाज करता रहा, यह बात सिर्फ़ गिने-चुने लोग जानते हैं। मैंने अपनी तरफ़ से यह बात किसी को बतायी नहीं थी और शायद आगे भी कभी न बताता, लेकिन पहली बार 'माधुरी' में यह सब दे रहा हूँ। 'माधुरी' पत्रिका से मेरे सम्बन्ध शुरू से घरेलू रहे हैं।

वह शायद काफ़ी नियम से रह रही थी। शरीर पर चढ़ पाया फ़ालतू मोटापा छँट गया था। वह फिर से फ़िल्मों में काम करने लगी थी।

यह दावा मैं नहीं कर रहा कि अगर वह इसी तरह रहती तो बिल्कुल स्वस्थ हो जाती, लेकिन इतना ज़रूर है कि पाँच-सात साल आराम से काट सकती थी। अचानक एक रोज़ मालूम हुआ, मीना नर्सिंग होम में है।

मैं समझ गया, वह ज़्यादा संयम नहीं बरत सकी। उससे मिलने मैं तब गया जब वह नर्सिंग होम से घर लौट गयी थी। बिना बताये अचानक उसके कमरे में जा घुसा मैं। वह निढाल पड़ी थी फिर भी मुझे देखकर झट खड़ी हो गयी।

उसकी हालत और गन्ध ने सब कह दिया था। फिर भी मैंने पूछा—"लगता है, बहुत पीने लगी हो?"

"नहीं, मैंने पी नहीं है।" सब कुछ सच कह देने वाली आँखें झुकाकर वह साफ़ झूठ बोल गयी।

उस दिन ज़्यादा कुछ कहना बेकार जाता। कुछ ही दिन में मैं फिर उसी तरह गया, बिना उसे पहले से ख़बर दिये। बिस्तर पर बैठी वह बड़े शौक़ से तला हुआ, मिर्च, मसाले से भरा मांस खा रही थी।

जितना बिगड़ सकता था, मैं उस पर बिगड़ा। फिर ठण्डे मन से उसे समझाया। वह सब सुनती रही, जैसे आज्ञाकारी बच्ची की तरह अब से मेरी हर बात मान लेगी। मैं ख़ुद को झूठी तसल्ली दिलाकर लौट आया।

वह फिर नर्सिंग होम में दाख़िल हुई थी। जो डॉक्टर उसका इलाज कर रहे थे, उसकी बदपरहेज़ी से परेशान नज़र आये। मैंने तैश में उससे कहा—"मीना, तुम मर जाओगी, बचोगी नहीं।" वह पान खा चुकी थी, ऊपर से तम्बाकू फाँकने के पहले जैसे मेरी बात के जवाब में बोली—"थोड़ा-सा तम्बाकू खा लेने की इजाज़त दे देंगे?"

"ये सब चीज़ें तुम्हारे लिए ज़हर हैं, जानती हो तुम।" वह बहुत फीकी हँसी हँसकर बोली थी—"दवा खाकर भी मैं जीऊँगी नहीं, डॉक्टरों के बताये बग़ैर भी मैं यह बात जान गयी हूँ।"

भीतर ही भीतर मैं काँप गया था, लेकिन ऊपर से रोष ज़ाहिर करते हुए कहा—"तो फिर क्यों दवा खाने का ढोंग करती हो? क्यों मुझे भी और डॉक्टरों को भी परेशान किये रहती हो?"

''नहीं, किसी को परेशान करने के लिए नहीं। दवा तो मैं सिर्फ़ इसलिए खाती हूँ कि मेरी मौत कुछ आसान हो जाये, बहुत तकलीफ़देह न हो।''

और मेरा सारा ग़ुस्सा, वह बनावटी ग़ुस्सा काफ़ूर हो गया। मैं जानता था, यह औरत दिन-पर-दिन मौत के क़रीब सरकती चली जा रही है और उससे डर भी रही है। कोई दवा इसके लिए कुछ मायने नहीं रखती। पास बैठकर मैंने कहा—''मौत कभी तकलीफ़देह नहीं होती। मौत का ख़ौफ़ मन से निकाल दो। वह हमेशा आराम देने वाली ही होती है, भले ही बाहरी रूप से मरीज़ों को छटपटाता देखकर लगे कि कष्ट बढ़ रहा है।''

तब मैंने उसे अपनी आप-बीती सुनायी। जब मैं पेट के ऑपरेशन के लिए अमेरिका गया था और ऑपरेशन के बाद हालत गिरती चली गयी। एक शाम मुझे लगा कि बस अब सब ठीक हो गया है। मुझे नींद आ रही है। गहरी, मीठी, आरामदेह नींद। फिर जाने क्यों, नींद का वह झोंका टूट गया। मैंने आँखें खोलीं तो सामने खड़े परिवार के लोग रो रहे थे।

''क्या हुआ?'' मैंने पूछा था। मुझे तब किसी ने कुछ बताया नहीं। बाद में मालूम हुआ जब वह मीठी नींद महसूस कर रहा था, मेरा जिस्म ऐंठ रहा था। डॉक्टरों ने कहा था, मरीज़ दम तोड़ रहा है। उस बीमारी के दौरान सुना है। मैं तीन बार इसी तरह तड़पा, छटपटाया, शरीर ऐंठ गया। लोग मेरी तकलीफ़ बर्दाश्त न कर पाने पर कमरा छोड़कर बाहर निकल गये। लेकिन मैं ही जानता हूँ कि वे क्षण कितने आरामदेह थे? जब डॉक्टरों के मुताबिक़ मैं मौत की गोद में जा रहा था। तभी से मैंने रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता का मर्म जाना 'मौत क्या है? माँ की गोद-सी सुखदायी अनुभूति।''

सुनकर मीना को कैसा लगा था, मुझे नहीं मालूम, लेकिन कुछ समय बाद उसने दवा फिर माँगी थी। दवा की कुछ तेज़ खुराकें उसे दी जा सकती थीं, पर तेज़ दवा भी आख़िर कब तक? ख़ासतौर पर जब परहेज़ से ही परहेज़ बरता जा रहा हो, और इस तेज़ दवा के बाद! इसके बाद तो कोई दवा इससे ज़्यादा तेज़ बनायी भी नहीं जा सकती थी।

''मैं दवा दूँगा, लेकिन मैंने सुना कि अबके फिर बदपरहेजी है तो मैं फिर कभी तुम्हारे दरवाज़े नहीं आऊँगा।'' मैंने फ़ोन पर कहा और दवा

की तेज़ डोज भेज दी। लगभग हफ़्ते भर बाद चुपचाप गया, देखने कि उस पर क्या रिएक्शन हुआ है?

दरवाज़ा आज बन्द था और मेरे खटखटाने पर खुला तो असंयम पराकाष्ठा पर था। सभी जानते हैं, वह निम्फो थी।

मेरी सीमा यहीं तक थी। फिर कभी न जाने का प्रण दोहराकर मैं लौट आया। जब मालूम हुआ वह नर्सिंग होम में आख़िरी साँसों पर है, तब भी नहीं गया। खीज में, गुस्से में तना रहा। और जब स्टूडियो में सुना, मीना चल बसी, तो ख़ुद ही चटख गया। चौदह-पन्द्रह फ़िल्मों का सलोना साथ रह-रहकर मुझे कोंचने लगा, चल। चल...।

अर्थी घर से जा चुकी थी। क़ब्रिस्तान पहुँचा। कारों की भीड़ वहाँ जमा थी। मैं बहुत पीछे रह गया था। भीड़ को धकेलता हुआ मैं उसके पास तक जा पहुँचता, इसके पहले ही अन्तर ने आवाज़ दी, "तू देख सकेगा उसे? वह बरसों का साथ, छेड़खानियाँ, स्नेह, सलाह—मशविरा, आज जो मिट्टी बना पड़ा है, उसे आख़िरी बार ही सही, भरपूर नज़र देख लेने, सह लेने की हिम्मत है तुझमें"

बस, मैं वहीं से लौट आया।

नहीं।

नरगिस दत्त

चलो अच्छा हुआ।
चमर गयी मीना, बहुत अच्छा हुआ! मीना की 'बाज़ी' नरगिस को, उसे बहुत-बहुत बधाई हो। बधाई उस परवरदिगार को भी जो हम मिट्टी के खिलौनों का मालिक है।

मीना हमेशा प्यार से मुझे 'बाज़ी' (बड़ी बहन) कहकर पुकारा करती थी और उसके होंठों पर अपने लिए ये लफ़्ज़ बाज़ी सुनकर मेरे दिल में इतना प्यार उमड़ पड़ता था कि मैं खींचकर उसे गले लगा लिया करती थी। हमेशा खींचने से पहले उसे मुस्कुराते पाया और छोड़ा तो अपना कन्धा उसके आँसुओं से गीला पाया।

कुछ बोलती भी तो न थी वह कभी! उसके चेहरे पर उदासी व आँखों में आँसू तमाम दिल की बात कह दिया करते थे और मैं समझ जाया करती थी। गले लगी, वह बेज़ुबानी कह-कहकर रो दिया करती थी और मैं अनसुनी सुन-सुनकर।

मीना को मैं जितना जानती थी, वह तमाम न कहते बनता है, न लिखते। उसे बेहतर जानना मैं महसूस कर सकती हूँ, बयान नहीं। हाँ, मगर अहसास व महसूस से बाहर जितना कुछ मेरा थोड़ा जानना था, उसे जो कहते भी बने और लिखते भी वह अलबत्ता ज़रूर बयान करूँगी।

हम सबकी तरह मीना भी मिट्टी ही तो थी, पर वह थी जिसे हर जाने पहचाने ने खिलौने वाला बनकर इसे आज मिट्टी का यह खिलौना बनाया तो कल वो खिलौना और मीना को सच पूछो तो खिलौना बनते रहने की आदत ही सी हो गयी थी।

मीना कुमारी अदाकारी के मज़मून पर लिखी हुई एक किताब है जिसका आज की और आने वाले कल की, हर अदाकारी के लिए पढ़ लेना और फिर कुछ सीख जाना बहुत ज़रूरी है।

निजी ज़िन्दगी में मीना कुमारी ने जो ग़लतियाँ कीं, वह भी तो आज एक खुली किताब ही है। इसको भी पढ़ लेना और फिर कुछ सीख जाना बहुत ज़रूरी है।

मीना ने हमेशा हर किसी का भला ही किया है, बुरा किसी का नहीं किया सिवा एक के और वह एक है मीना कुमारी ब-ज़ात-ए-ख़ुद।

यहाँ कई बुतों को तराशा और ख़ुदा बनाकर छोड़ दिया। उन ख़ुदाओं को और उनकी होती पूजा को देखती हूँ। आज तो मानो मीना आहिस्ता-से कानों को लजा जाती है यह कहकर कि मेरे ही हाथों से तराशे हुए पत्थर आज महफ़िल में भगवान बने बैठे हैं।

इसे मेरी बदक़िस्मती कहिए या मुझ पर ख़ुदा का ज़ुल्म, जिसका मुझे तमाम उम्र अफ़सोस रहेगा कि मीना की बाज़ी उसके जाने से पहले उसे गले न लगा सकी।

मैं दूर जम्मू में सुनील और अजन्ता ट्रिप के साथियों के साथ फ़ौजी भाइयों के लिए शो करने गयी हुई थी, जहाँ यह ख़बर सुनते ही अपना दिल मसलकर रह गयी। दिल ने बार-बार यह कहा—''नरगिस, आज ही तो मौक़ा था मीना के उन तमाम आँसुओं का उधार उतार देने का जो उसने तेरे कन्धों पर बहाये।''

ख़ुदा एक लम्हे के लिए ज़िन्दा ले आओ उसे मेरे सामने, मैं किसी से न कहूँगी कि मैंने ये माँगकर तेरी ख़ुदाई में दख़लन्दाज़ी की।

कई बार सोचती थी कि आख़िर क्या बात है ऐसी जो दुनिया मीना कुमारी को 'ग्रेट ट्रैजिडी आर्टिस्ट' कहकर सराहती है और आज इतना बड़ा नाम है उसका, इतनी इज़्ज़त है, उसकी तो उसके मर जाने के बाद ही अहसास हुआ मुझे कि आख़िर ऐसी क्या बात थी?

आस-पास के हर जाने-पहचाने इस मिट्टी के खिलौने बनाने वालों ने उसकी ज़ाती ज़िन्दगी में इतनी बेचैनियाँ व इतने ग़म भर दिये कि एक वक़्त ऐसा आया कि मीना कुमारी के चेहरे पर से उदासी, ग़म व बेचैनी हटाये न हटती थी। ग़म नाक व आँख की तरह एक अंग-सा बन के रह गया उसके चेहरे पर।

और इस पर इस हक़ीक़त का फ़िल्म बनाने वालों ने ख़ूब फ़ायदा उठाया और ठीक उठाया और मीना कुमारी इस तरह 'ग्रेट-ट्रैजिडी आर्टिस्ट'

कहलायी जाने लगी, और उसकी इस ग्रेटनेस की क़ामयाबी का सेहरा उन खिलौने वालों के सिर है।

मेरी तरफ़ से उन्हें भी बधाई हो, बहुत-बहुत बधाई हो। मीना मर गयी।

बहुत अच्छा हुआ न?

क्यों?

सलमा सिद्दीक़ी

मुम्बई के एक नर्सिंग होम में मीना कुमारी ने अपनी ज़िन्दगी की आख़िरी साँस ली और हमेशा के लिए उसकी बेक़रार रूह को क़रार आ गया। इस तरह इस बड़ी आर्टिस्ट के चालीस साल के लगातार संघर्ष और दर्दनाक मुसीबतों का ख़ात्मा हो गया, ऊपर मौत का ज़िक्र बहुत डरावना होता है और जब मौत किसी ऐसी हस्ती को अपना शिकार बनाती है जैसी कि मीना कुमारी थी तो दिल को और भी ज़्यादा उदास और भयभीत हो जाना चाहिए था, लेकिन ऐसा क्यों हुआ कि जब मीना कुमारी की मौत की ख़बर सुनी तो अचानक दर्द ग़म के पीछे एक अजीब तरह का सकून भी मैंने महसूस किया।

कैसी बेदर्दी की बात है यह! और उससे भी ज़्यादा ग़ुस्सा दिखाने वाली बात है, इस भयानक और बेदर्द ख़याल को ज़ाहिर करना।

मगर मैं क्या करूँ? जब मेरे दिल ने कुछ ऐसा ही महसूस किया, इस बेदर्द ख़याल के पीछे अठारह साल की वह मुद्दत है शायद, जिसमें मैंने मीना कुमारी को देखा, जाना और अपनी तौर पर समझा भी।

ग्यारह साल पहले का वह दिन याद आता है जब मीना कुमारी से पहली बार आमना-सामना हुआ था। वह मुम्बई की मानसून में एक भीगा-भीगा सावन था, सुबह और दोपहर के मिलन का वक़्त था। जब पाली हिल की रेब्राँ बिल्डिंग की दूसरी मंज़िल की सीढ़ियाँ तय करके मैं मीना कुमारी के फ़्लैट में दाख़िल हुई थी। पहली मुलाक़ात मीना कुमारी के शौहर कमाल अमरोही से हुई। वे एक कमरे में, एक बड़े तख़्त पर, जिस पर सफ़ेद चाँदनी बिछी थी, गावतकिये का सहारा लिये अवध के नवाबों के अन्दाज़ में आधे बैठे और आधे लेटे हुए थे। पेंचवान से बहुत ही ख़ुशबूदार धुआँ उड़ रहा था। कमरे का वातावरण किसी हवेली की दालान की याद दिलाता था, जो मुम्बई के मॉडर्न फ़्लैट में एक बेजोड़ पैबन्द की

तरह नज़र आता था। पहले पहल इस तरह के माहौल में पहुँचकर अन्दर से मेरी तबीयत बहुत घबराई। जाने क्यों महसूस हुआ कि अभी कहीं से आवाज़ आयेगी, 'बा अदब, बा मुलाहिज़ा, होशियार!' लेकिन शुक्र है, इस तरह की कोई बात नहीं हुई और कमाल अमरोही से शरीफ़ाना तौर पर आदाब तसलीम वग़ैरह हुई।

मैंने फ़ौरन ही पूछा, "मीना कुमारी जी घर पर नहीं हैं?" कमाल अमरोही मेरी बेचैनी समझ गये शायद, उन्होंने बाई से पूछा, "क्या मंजु ने गुसल कर लिया!"—"मंजु?" मैं दिल-ही-दिल में कहने लगी—"अरे भई यह मंजु कौन है? और मुझे क्या मतलब किसी मंजु-बंजु से? हमें तो साहब मीना कुमारी को देखना था। साफ़ बात है मैं किसी मंजु-बंजु से नहीं मिलूँगी।" मैंने कृश्न चन्दर की तरफ़ झुककर धीरे-से कहा।

कृश्न जी हँसने लगे, फिर बोले—"मीना कुमारी ही का घर का नाम मंजो है।" उसी वक़्त बाई ने आकर कहा—"आइए, अन्दर चलिए।"

कमरे में दाख़िल होने पर सामने ही मीना कुमारी नज़र आयीं, वह गुसल कर बाहर निकली थीं। सफ़ेद गरारा और कुर्ता पहने हुए थीं। लम्बे, काले और चमकीले बाल खुले हुए थे। एक बड़ा-सा तौलिया उसकी पीठ पर लटक रहा था और काले बालों से रिस-रिसकर उजले पानी की बूँदें तौलिए में घुल रही थीं। इससे पहले मीना कुमारी को कई बार देखा, लेकिन उस दिन की मीना कुमारी की सूरत जैसे निगाहों में बस के रह गयी। कैसा मासूम और भोला-भाला, ख़ूबसूरत और दिल को लुभाने वाला यह चेहरा था।

पहली ही मुलाक़ात में वह बहुत बेतकल्लुफ़ी से बात करने लगीं—कोई हीरोइनों वाला नाज़ न नख़रा। मैं तो हैरान रह गयी। क्या उसे ख़बर ही नहीं कि कैसी महान अदाकारा है, सारे मुल्क में इसकी शोहरत से परे एक छोटे-से कमरे में बैठी सीधी-सादी घरेलू बातें कर रही है और साथ ही बालों में कंघी भी करती जा रही है। बड़ी कमअक्ल है यह हीरोइन तो। "अरे कुछ तो ठस्सा, नख़रा और रौब दाब होना ही चाहिए था, परन्तु मीना कुमारी तो न फ़िल्म की बात कह रही है न अदाकारी की, न अपनी किसी बड़ाई की। वह तो कह रही है कि उसे मुम्बई का मानसून का मौसम इतना ज़्यादा पसन्द है कि बरसात में वह मुम्बई के बाहर जाना ही नहीं चाहती और उसे खाने में बिरयानी इतनी पसन्द है कि जी

चाहता है रोज़ बिरयानी खाऊँ, मगर मोटी होने के डर से बिरयानी कैसे रोज़-रोज़ खा सकती हूँ?

और वह तो बात कर रही है फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' की और सरदार जाफ़री की, कैफ़ी आज़मी की और कृश्न चन्दर की, कुरतुलएन हैदर की और ख़्वाजा अहमद अब्बास की, किसी का शेर, किसी की कहानी सब कुछ याद है। शेर पढ़ती है तो आँखें बन्द कर लेती जैसे वह शेर उन शायरों का न हो, बल्कि खुद उसके दिल की भाप में से तप कर निकला हो या कहानी के जुमले उन कहानीकारों के न हों, बल्कि ख़ुद मीना कुमारी की क़लम से निकले हों। क्या अदब और इज़्ज़त है शायरों और अदीबों के लिए उसके दिल में?

अदाकारी का ज़िक्र हो तो निम्मी, नरगिस और सुचित्रा सेन की तारीफ़ में मुँह से फूल झड़ रहे हैं और अशोक कुमार, राज कपूर और दिलीप कुमार की एक्टिंग के ज़िक्र पर झूम रही है, जैसे मीना कुमारी के नाम की कोई हीरोइन कहीं है ही नहीं।

मीना कुमारी के बहुत बड़े दिल की यह छोटी-सी मिसाल थी। उनका दिल इतना बड़ा था कि अपने सिवा हर किसी के लिए तड़प उठता था। आज के ज़माने में दिल ने इस तरह का होना छोड़ दिया है और दिल नाम की चीज़ कंजूस की तिज़ोरी की तरह इन्सानी ढाँचे में बन्द रहती है। वह दिल भी अपने ही बारे में सोचता है, अपने ही लिए धड़कता है और अपने ही लिए जीता है। मीना कुमारी की बदक़िस्मती थी कि वह ऐसा चालू दिल नहीं पा सकी थीं और इसीलिए उनका दिल चालीस साल तक हर ज़रूरतमन्द के लिए तड़पता रहा।

लोग चाहे वे उसके ख़ून के साझेदार थे या दोस्त-यार और दावेदार थे, उसकी ज़िन्दगी में आते गये और उसकी उदारता, दरियादिली, मेहरबानी का चश्मा सबकी प्यास बुझाता रहा। दूसरों की ज़िन्दगी के पौधे उसके ख़ून से सिंचकर परवान चढ़ते रहे और वह खुद अपनी ही आग में सुलग-सुलगकर राख हो गयी और वह यूनानी देवमाला के उस पात्र की याद दिला गयी, जिसे देवताओं की आग चुराने की सज़ा में ज़ंजीरों से जकड़ दिया गया था और आदमख़ोर गिद्ध उसे नोचकर खाते रहते थे। मीना कुमारी ने भी देवताओं की वह आग चुरायी थी, जिसे नेकी, शरारत और हमदर्दी का नाम दिया जाता है और उस चोरी की सज़ा में उसको

भी समाज, कायदे-क़ानून की ज़ंजीरों में जकड़ दिया गया था और हालत और माहौल के गिद्ध उसे नोच-नोचकर खाते रहे।

अचानक एक दिन सुनने में आया कि मीना कुमारी अपने शौहर का घर छोड़ के कहीं चली गयी हैं। पहले तो इस ख़बर पर यक़ीन नहीं आया, इसलिए कि सिर्फ़ आठ-दस दिन पहले उनसे मुलाक़ात हुई थी और उस दिन वे बहुत ख़ुश थीं और मज़ेदार पान खा-खा के हमसे मज़ेदार गप चल रही थी। हाँ, अचानक बात करते-करते वह एकदम चुप हो जाती थीं, लेकिन यह चन्द सेकेंड के लिए होता, दूसरे ही पल वह पहले जैसी हो जातीं। उसी वक़्त टेलीफ़ोन की घण्टी बजी। वह ड्राइंग रूम से उठ कर पास के एक बहुत छोटे-से कमरे में चली गयीं जहाँ टेलीफ़ोन रखा हुआ था। बातचीत धीरे-धीरे और बहुत रुक-रुककर हो रही थी। मैंने बात तो नहीं सुनी, लेकिन उस वक़्त मीना कुमारी का चेहरा जिस तरह खिल गया था और उनकी आँखों में जो चमक और मिठास घुल गयी थी, उससे साफ़ अन्दाज़ा लगाया जा सकता था कि बात सिर्फ़ टेलीफ़ोन के तार से नहीं हो रही है, बल्कि किसी गहरे मज़बूत, अनजाने और अनदेखे जज़्बे के साथ दिल के तार छेड़े जा रहे थे। बात थोड़ी हुई, लेकिन मीना कुमारी की आँखों में यह ख़ुशी झलक रही थी जो एक पल को एक सदी में बदल गयी थी। मीना कुमारी टेलीफ़ोन पर बात ख़त्म करके जब ड्राइंग रूम में आयीं तो जैसे उनके क़दम फ़र्श पर नहीं, बादल के ऊपर पड़ रहे थे। मैं थोड़ी देर बैठ के चली आयी।

उस वक़्त मीना कुमारी किसी दूसरी ही दुनिया में थीं और उस वक़्त वह शायद अकेली रहना चाहती थीं।

हफ़्ते भर बाद ही पता चला कि वह अपना पाली हिल का फ़्लैट छोड़ के चली गयी हैं। फ़िल्म इंडस्ट्री में हर तरफ़ ख़बरें जंगल की आग की तरह लपक रही हैं। जितने मुँह और जितने फ़िल्मी अख़बार थे, सब इसी क़िस्से का ज़िक्र नमक-मिर्च लगाकर कर रहे थे।

कोई बहुत ख़ुश था कि मीना कुमारी ने अपने पिंजरे की तीलियाँ तोड़कर आज़ादी की साँस ली। कोई बहुत नाराज़ था कि क्यों मीना कुमारी ने ऐसा ग़लत क़दम उठाया? ख़ुद मीना कुमारी पर इसका क्या असर था, यह फ़ौरन पता न चल सका। मैंने जान-बूझ के उनसे मिलने से बचना चाहा। सोचा, कुछ वक़्त गुज़र जाये तो मिलना चाहिए।

इस तरह लगभग एक महीना गुज़र गया। एक दिन किसी ने मीना कुमारी का पैग़ाम दिया कि वह हमारी इस ख़ामोशी से दुखी हैं। मैंने ऐसे वक़्त उसके बहनोई महमूद के घर टेलीफ़ोन किया, लेकिन यहाँ से कोई दिल को तसल्ली देने वाला जवाब न मिला।

मीना कुमारी के बारे में तो कोई कुछ न बताता था। उल्टे, हमारे बारे में ऐसे-ऐसे सवाल किये जा रहे थे और हमारे बाप-दादा नाक-नक्शा, पेशा और सिर्फ़ हमारी मुलाक़ात का ही मक़सद नहीं, ज़िन्दगी का मक़सद भी पूछा जा रहा था कि कुछ तबीयत उलझ रही थी। और जब मैंने कृश्न चन्दर जी से कहा कि हमें बिना इत्तला के ही मीना कुमारी के घर पहुँच जाना चाहिए तो वे बहुत झुँझलाए। कहने लगे, ''क्या बेवकूफ़ी की बात है! जब मीना कुमारी टेलीफ़ोन पर बात करने नहीं आयी तो फिर मिलने क़िस्से जायेंगे?''

मैंने कहा—''मगर मीना कुमारी को पता क्या है कि किसने टेलीफ़ोन किया?'' कृश्न चन्दर जी बड़ी मुश्किल से चलने पर राज़ी हुए। रास्ते भर ऐसा मुँह फुलाये रहे कि मैंने उनकी तरफ़ देखना छोड़ दिया। एक बार टैक्सी के शीशे में इत्तफ़ाक से मेरी और उनकी आँखें चार हुईं तो मैंने घबरा के आँखें झुका लीं (शर्म से नहीं भई...)।

जब हम मीना कुमारी के बहनोई के घर पर पहुँचे तो दोबारा हमारा इंटरव्यू लिया गया। जब गोरखा, बैरा, नौकरानी सब हमारी जातपाँत पूछ चुके तो फिर बड़े जात के तरह-तरह के कुत्ते हमारे स्वागत को बढ़ रहे थे। यह दृश्य देख के कुछ नौकर-चाकर आगे बढ़े। उनका मक़सद हमें कुत्तों से बचाना नहीं था, बल्कि शायद कुत्तों को हमसे बचाना था। हमने मीना कुमारी से मिलने की बात की तो वे और भी शुबहा से हमें देखने लगे।

उन लोगों से हमारी बातचीत की भनक जाने किस तरह मीना कुमारी तक पहुँच गई। वह जल्दी-जल्दी लपक-झपककर हमारी तरफ़ बढ़ रही थीं। हमेशा की तरह बड़े प्यार से मिलीं और हमें अपने कमरे में ले गयीं। उस वक़्त उन्होंने रॉ-सिल्क की लुंगी और सफ़ेद चिकन का कुर्ता पहन रखा था। नीचे फ़र्श पर जब हम सब लोग बैठ गये तो मीना कुमारी से मैंने पूछा—''आप कैसी हैं?'' मीना ने बड़े शिकायत के अन्दाज़ में जवाब दिया, ''जी रही हूँ।'' मैंने कहा, ''आपसे मिलने को बहुत जी चाहता था, लेकिन...'' वे बोलीं—''लेकिन क्या?'' फिर ख़ुद ही बोलीं,

"ख़ैर अब कोई शिकायत नहीं है।" फिर चाय आ गयी थी और मीना कुमारी चाय प्यालों में उड़ेलती हुई बोलीं—"अब भी यक़ीन नहीं आता कि वहाँ से चली आयी हूँ।" मैंने इस जुमले का यह मतलब निकाला कि वह कमाल अमरोही के घर से निकल आने पर ख़ुश हैं। इसीलिए तो मैंने इस बारे में तफ़सील जानने के लिए बहुत सारी बातें पूछ डालीं। बातों के जवाब दिये। कुछ नाज़ुक सवालों के मीना ने कुछ जवाब नाज़ुक-सी मुस्कान से दे दिये, लेकिन इतना कुछ होने पर भी कमाल अमरोही के बारे में एक बात भी ऐसी नहीं कही, जिससे नफ़रत झलकती हो। यह बात मैंने हर मुलाक़ात में महसूस की। अमरोही से उनका रिश्ता अजीब था, अगर वह उनसे मुहब्बत न करती थीं तो उनके बारे में कोई बुराई क्यों नहीं सुन सकती थीं। यह बड़ा पेचीदा मसला है, यह कैसी नफ़रत थी कि कमाल अमरोही की हर परेशानी से परेशान हो उठती थीं और उनके साथ रहना भी नहीं चाहती थीं।

उस दिन भी कई तरह की बातें हुईं, लेकिन उन्होंने कोई इल्ज़ाम अपने शौहर पर नहीं लगाया। जो भी हुआ, उसकी वजह अपने आपको ठहराती रहीं या किस्मत को। वापसी का वक़्त आया तो कृश्न जी ने उनसे कहा, "मीना जी! जो हुआ सो हुआ अब चाहिए कि रुपया-पैसा जमा करें और अपनी कमाई को सेंत के रखें।"

मीना कुमारी ने एक ठण्डी साँस ली। मिनट-भर चुप रहीं, फिर बड़ी दुख भरी आवाज़ में, जो एक कराह से मिलती-जुलती थी, बोलीं—"मगर किसके लिए?"

इस मुलाक़ात के बाद भी मीना कुमारी से मुलाक़ातें होती रहीं और हर बार किसी नये घर में। तरह-तरह के क़िस्से भी उनके बारे में फैल रहे थे। कभी सुनते, "आजकल मीना कुमारी का उस हीरो के साथ सिलसिला चल रहा है।"

कोई कहता, "अरे, अब तो वह भी पुराना हो गया। सुना है किसी राइटर से चल रहा है।"

कोई कहता, "अरे साहब, फलाँ प्रोड्यूसर से गाढ़ी छन रही है इन दिनों तो...!"

कभी सुनने में आता, "मीना कुमारी बेतहाशा पीने लगी हैं...सेट पर भी नशे में रहती हैं।"

ये सब ख़बरें मिलती रहती थीं, मगर जब भी मीना कुमारी से मुलाक़ात होती, वह उतनी ही मासूम नज़र आतीं जैसा कि कुदरत ने उन्हें बनाया था। एक बार पता चला कि वे बँगले में बहुत बीमार पड़ी हैं और ऑक्सीजन दी जा रही है। दिल धक्-से हो गया। हम लोग वहाँ पहुँचे 'वह बिस्तर पर ख़ामोश लेटी थीं। ऑक्सीजन की नलकी नाक में लगी थी। हम लोग ख़ामोशी से कमरे में दाख़िल हुए और एक कोने में मैं ख़ामोशी से बैठ गयी। आँख खोली तो फ़ौरन इशारे से अपने पास बुलाया। मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया और कुछ इशारा किया। मैं नहीं समझी तो नर्स ने झुककर पूछा। बहुत धीरे-से बोलीं, "पान खिलवाओ इनको!"

मीना कुमारी पान और ज़र्दा बड़े शौक़ से खाती थीं और मैं भी पान की शौक़ीन हूँ। हमारे बीच पान भी बातचीत का एक हिस्सा हुआ करता था। जब महफ़िल में मीना कुमारी होती थीं तो पान हमेशा उनकी डिबिया से ही खाये जाते थे। जब हम लोग पान खा चुके तो ख़ुद भी पान खाने की ख़्वाहिश ज़ाहिर की। नर्स परेशान हो गयी। हम लोग भी ज़रा घबरा गये।

नर्स ने समझाया कि ऑक्सीजन की नलकी लगी है। ऐसे वक़्त में पान खाना मुनासिब नहीं है। मीना कुमारी ने एक झटके-से ऑक्सीजन की नलकी खींच दी और फिर बोलीं, "अब तो दो!" पान की गिलोरी मुँह में पहुँच गयी, तो फिर नर्स को इशारा किया कि 'ऑक्सीजन लगा दो!'

मीना कुमारी इस बीमारी से सँभलीं तो उन्हीं दिनों कृश्न चन्दर जी बहुत ज़्यादा बीमार हो गये। मीना अपनी सेहत की ख़राबी के बावजूद उन्हें देखने घर पर आती थीं। एक बार मुझे बहुत ज़्यादा परेशान देखा तो दूसरे कमरे में जाकर बोलीं, "घबराइए मत! कृश्न जी इंशा अल्लाह ज़रूर अच्छे हो जायेंगे। उन्हें इतनी दुआएँ मिल रही हैं। आख़िर ख़ुदा भी तो देख रहा है।"

मीना कुमारी तीन साल पहले बहुत सख़्त बीमार हो गयी थीं। बड़ी ही नाज़ुक हालत में वह लंदन इलाज के लिए ले जायी गयी थीं। सख़्त बीमारी से उठकर जब वह वापस मुम्बई आयीं और उनसे मुलाक़ात हुई तो वह बोलीं, "ख़ुदा मुझे इतनी उमर और ताक़त दे दे कि 'पाकीज़ा' पूरी हो जाये।"

फिर जब मीना कुमारी के नये फ़्लैट 'लैंडमार्क' में उनसे मुलाक़ात हुई तो बताने लगीं कि आजकल रोज़ शाम को कमाल साहब आते हैं। मैंने हैरत से कहा, "तो आप लोग मिलने लगे?"

बड़े दुख से बोलीं, "वह 'पाकीज़ा' के सिलसिले में बात करने आते हैं और 'पाकीज़ा' तो मेरी ज़िन्दगी है।" फिर रुक कर बोली, "हमारा मियाँ बीवी का रिश्ता नहीं रहा, लेकिन प्रोड्यूसर और हीरोइन का तो है न?"

उस दिन मीना कुमारी ने अपनी और कमाल अमरोही की पहली मुलाक़ात का हाल सुनाया और बताया कि किस तरह वह एक हॉस्पिटल में एक एक्सीडेंट के बाद भर्ती हुई थीं और किस तरह कमाल अमरोही के आने की राह देखती थीं। फिर ठण्डी साँस लेकर बोलीं—"ज़िन्दगी कितनी अजीब है?"

फिर बालकनी में रखे हुए कैक्टस के पौधों की तरफ़ देखकर बोलीं, 'बिल्कुल इन कैक्टस के काँटों की तरह।'

फिर ख़ामोशी से वह सामने समन्दर की लहरों को देखने लगीं और मैं सोचने लगी, कितनी समानता है समन्दर में और मीना कुमारी में! यह औरत भी कितनी गहरी है समन्दर की तरह, उसकी ज़िन्दगी में भी ज्वार-भाटा उठता है समन्दर की तरह।

और समन्दर की तरह यह औरत भी अपने सीने पर मनों बोझ उठाये रहती है। उसके दिल पर भी दर्द-ग़म की कश्तियाँ तैरती रहती हैं और वह अपनी उम्मीद की नाव को ख़्वाबों के पतवार से खेती रहती है।

मीना कुमारी की ज़िन्दगी में आने वाले लोग अपनी ज़रूरत और माँग की झोली लेकर उनके पास आते थे और मोतियों से दामन भर के वापस जाते थे। उनके दरवाज़े से कोई सवाली ख़ाली हाथ नहीं लौटा। रुपया, पैसा, शोहरत, हमदर्दी और मुहब्बत, जो कुछ भी उनके पास था, सब कुछ उन्होंने दूसरों पर न्यौछावर कर दिया और ख़ुद मुहब्बत की एक नज़र को तरसती रहीं। मुहब्बत की तलाश और प्यार की ख़ोज में वे यहाँ से वहाँ और इधर से उधर भटकती रहीं। वह ठण्डी छाँव की तलाश में सहरा-सहरा भटकती रहीं और सूखी चट्टानों में मीठे पानी का झरना ढूँढ़ती रहीं।

उन्होंने 'फूल' की तरफ़ हाथ बढ़ाया और 'पत्थर' से उनकी उँगलियाँ घायल हो गयीं। उन्होंने जिसे अपना समझा, वे पराये से भी ज़्यादा पराये निकले।

किसी ने उनकी निगाहों की गर्मी छीन ली, किसी ने गालों के गुलाब चुरा लिए, किसी ने तिज़ोरी की चाबी हथिया ली, कोई ज़ेवर ले भागा, कोई घर छीन बैठा। मीना यह सब कुछ देखती रहीं और जब ज़िन्दगी का हर अमृत उन्हें हराम हो गया तो उन्होंने दूसरों को माफ़ करने के लिए और ख़ुद को भुला देने के लिए शराब का सहारा लिया।

उनके 'शुभचिन्तक' और 'चाहने वाले' उन्हें शराब नाम का तेज़ाब पिलाते रहे। उनका दिल टुकड़े-टुकड़े और जिगर छलनी-छलनी हो गया। लोग उन्हें किस्तों में ज़हर देते रहे और वह किस्त-दर-किस्त मरती रहीं। परवर दिगार! किस-किस जन्म का क़र्ज़ चुकाना था उस मासूम रूह को कौन इस तरह किस्तों में टुकड़े-टुकड़े होकर मरता है?

कौन अपने लिए ऐसी मौत पसन्द करता है? अरे, ज़िन्दगी तुमने छीन ली, मौत तो उसे पसन्द की मर लेने दो—क्यों घेरते हो? क्यों उसके हिस्से बखरा करते हो? क्यों उसकी लाश पर लड़ते-झगड़ते हो? जैसे वह एक नाज़ुक दिलो-दिमाग़ की, नाज़ुक जिस्म की औरत न थी। एक मिठाई का काबा थी, जिसकी ओर हर तरह के चींटें-चींटियाँ क़तारों में बढ़ रही हैं—अपना-अपना हिस्सा लेने।

मीना कुमारी ने अपने इज़ारेदारों के ख़िलाफ़ कभी एक जुमला भी अपनी ज़बान से नहीं निकाला। ज़ुल्म, नाइन्साफ़ी और लालच के बन्दों की कभी बुराई नहीं की। शिकायत उन्होंने कभी किसी की नहीं की। कभी इस बारे में बात शुरू भी हुई तो वह एक बड़ी दुखी हँसी हँस के बात को टाल जाती थीं। वह सब कुछ समझती थीं, हर एक की नीयत और निगाह को पहचानती थीं और हर कड़वाहट को शहद भरे घूँट की तरह पी जाती थीं।

वह नादान और बेवकूफ़ बनकर दूसरों के फ़ायदे के लिए अनजान बनी रहती थीं, उन्हें दुनिया से और हालात से लड़ना नहीं आता था। इसलिए वह ख़ुद अपने आपसे लड़ लेती थीं। वह किसी की दुश्मन नहीं थीं। वह किसी को दुख नहीं दे सकती थीं, इसलिए ख़ुद हर दुख को सह लेती थीं। दूसरों के जख़्मों पर मरहम रखती थीं और ख़ुद अपने ज़ख़्मों पर नमक छिड़कती थीं। अपने को घुला-घुलाकर ख़त्म कर लिया, लेकिन दूसरों का गिला न किया।

अपना घर-बार छोड़कर वह किसी अनजाने ख़याल से टकराती रहीं। ख़्वाबों की दुनिया में वह बदनामी, ग़म और तन्हाई की सलीब उठाये भटकती रहीं और किसी नाज़ुक-सी बेल की तरह किसी मोटे पेड़ के तने से लगकर ज़िन्दगी बिता देने की दर्दनाक आरज़ू को अपने सीने से लगाये अपने दामन में काँटे बटोरती रहीं।

कहाँ थी वह मुहब्बत जो हर बार इस बेगुनाह औरत से क़तरा-क़तरा कर बच निकलती थी और कहाँ थी वह दोस्ती, जिसके लिए वह दुखी औरत ज़िन्दगी भर तरसती रही थी? मुहब्बत उसे न तो क़ानून के परदे से मिली और न ख़ून के रिश्ते में और न महबूब के सीने में।

वह जो मुहब्बत की प्यासी थी और जिसने एक बार कहा था, ''मुहब्बत का मज़ा मैंने भी चखा था सिर्फ़ अपनी माँ के आँचल में और बस, उसके बाद मेरे हिस्से की मुहब्बत पर लगा के कहीं आसमानों में खो गयी है।''

और–खोयी हुई उसी मुहब्बत की तलाश में मीना कुमारी ख़ुद आसमानों की बुलन्दियों में खो गयी हैं।

अर्जुन देव रश्क

मिट्टी के नीचे कौन ऐसे मेले लगे हुए थे कि मंजु (मीना कुमारी का नाम महज़बीन था। मंजु इसी का संक्षिप्त रूप है) चार कन्धों पर सवार होकर संगमरमर की क़ब्र में जाकर सो गयी।

लेकिन मंजु मरी नहीं। यह हमारे दिलों की गहराइयों में जमा है। उसे पराये दिलों में ज़िन्दा रहने के अदब आते हैं। उसकी यही एक अदा उसे ले डूबी।

मंजु एक स्नो व्हाइट थी जिसे फ़िल्म के जंगल में वे सात बौने नहीं मिले जो उसकी रक्षा करते।

उसकी रातों ने उसे सोने नहीं दिया। वह इंसोमैनिया की मरीज़ जो थी।

आख़िर क़ब्र की मटियाली बाँहों ने उसके अकेलेपन को अपनी बाँहों की लपेट में लेकर हमेशा की नींद में सुला दिया।

पच्चीस बरस पहले जब मंजु ने जवानी में क़दम रखा ही था, वह मुझे पार्टी में मिली थी। घर से बाहर आते हुए उसने मुझसे कहा, "वह कहकशा (आकाश गंगा) देखते हैं आप? मैं उसके एक-एक सितारे पर कमन्द फेंकूँगी।" उस दिन मैंने सोचा था कि आज परियों की एक नयी कहानी शुरू हो गयी है, लेकिन मंजु ने ख़ुद इस कहानी को अपने अंजाम तक पहुँचने नहीं दिया।

मंजु एक ऐसी 'स्नो व्हाइट' थी जो लूटने वालों को तरसती थी। उनका मरना उन चार दिनों का लुट जाना था, जो वह किसी से उधार माँगकर लाई थी। मंजु मरी नहीं, वह किसी का उधार लौटाने गयी है।

ज़िन्दगी और मौत में वह उधार ही लौटाती रही। मरने वालों की अदाओं को कोई कहाँ तक गिनवाये?

लंदन से लौटने के बाद खतों का ढेर मेरे सामने फेंकते हुए कहा था—"आप दिल्ली जा रहे हैं, मगर ये ख़त पढ़िए।" मैंने ख़त देखे तो सब मुहब्बतनामे थे, "मेरे नाम आपको ऐसे ख़त लिखते मौत आती है! लिखियेगा।" मैंने कहा—"लिखूँगा।" और दिल्ली से मैंने जो ख़त लिखा उसका मजमून यह था।

"बहरे अरब के किनारे, तुम्हें जमना के साहिल याद करते हैं।" इसके जवाब में उसने उसी ख़त की पुश्त पर लिखा था—"मैं आप को लानत भेजती हूँ।" मैं और मेरे आसपास के सब लोग ख़ूब हँसे थे।

एक बात मेरे दिल में बार-बार आती है। कहीं मैं खुफ़िया तौर पर उससे मुहब्बत तो नहीं करता था? शायद करता था, कौन नहीं करता था?

चाहने वालों का एक जलूस उसकी ज़िन्दगी में से गुज़रा था और हर किसी की चाहत की एक ही 'बुनियादी, वजह थी कि वह अपने चाहने वालों की समझ में न आने वाली एक पहेली थी।

सिने जगत एक खिलवाड़ है, इत्र में नहायी उकताहटों का जमघट है। एक ऐसी आज़ादी है, जिससे रिहाई नामुमकिन है। असम्भव आशाओं और न पूरे होने वाले सपनों का अभिशाप है। उदासीनता से लिपटी, घटती-छिपती अपेक्षाओं की दुनिया है, जिसका नाम 'शायद' होना चाहिए था। इस दुनिया से बाहर निकलने का एक ही रास्ता है—रेगिस्तानों की झुलसती हुई आग, तो मंजु ने जब हीरोइन के रूप में फ़िल्मी दुनिया में क़दम रखा, उसकी आँखों में सितारों की चमक थी। उसकी मौत का दिन 31 मार्च का दिन उन सितारों को डूबने की सालगिरह का दिन है। बच्चे, बूढ़े, जवान और अधेड़ सभी मरते हैं, लेकिन कभी-कभार कोई एक ऐसा मरता है, जिसकी मौत के पीछे जाना पड़ता है, जहाँ साये दूर-दूर तक फेंकते हैं।

मौत के कारण अपनी मंजु इतनी कम उम्र में ही क्यों चली गयी? उसे तो ज़िन्दगी से प्यार था। मौत के कुछ देर पहले उसने अपनी आपा से कहा था, "आपा, मैं ज़िन्दा रहना चाहती हूँ।"

मंजु की कहानी उजड़े सपनों और टूटी आशाओं की कहानी है, जिनके पीछे अदम्य कामुकता और असीम दयालुता का समुद्र लहराता था। इन दोनों का एक साथ होना अनिवार्य है और इसी अनिवार्यता की कोख से आशाओं और सपनों के मरे हुए बच्चे जन्म लेते हैं।

प्राचीन रोम की महारानी मेसेलाइना इसी रोग की पहली रोगिणी मानी जाती हैं और उन्हीं के नाम से निम्फ़ोमोनिया अर्थात् अदम्य कामुकता को 'मेसेलाइना कॉम्प्लेक्स' का नाम दिया गया है। इस रोग के रोगी को अपराधी समझने की बजाय असीम क्षमा और दया का अधिकारी समझा जाये क्योंकि रोग कुछ भी हो, अपराध नहीं माना जा सकता।

मंजु की दयालुता का एक पहलू और है जिसका निफोमोनिया से दूर का सम्बन्ध है भी और नहीं भी है। कमाल साहब से उसके तलाक़ की अर्ज़ी के बाद मैं उसे 'फ़िल्मफेयर' के लिए इंटरव्यू करने गया था। इंटरव्यू अभी आधा ही हुआ था कि नौकरानी ने अन्दर आकर किसी के आने की ख़बर दी और उसका नाम बताया। मंजु कुछ देर तक सोचती रही कि वह कौन है? वह उसे जानती तक नहीं थी। फिर भी उसने मुझसे कहा—''चलिए मिल लें।''

अपना परिचय कराने के बाद उस व्यक्ति ने एक पागलपन की बात यह कही कि वह आज़मगढ़ से आया है और उसे यह भी पता नहीं कि उसका आना उचित है भी या नहीं उसकी इकलौती बच्ची जो ग्यारह बारह वर्ष की थी, कुछ ऐसी बीमार थी कि डॉक्टरों ने उसकी बीमारी को लाइलाज घोषित किया था। व्यक्ति की आँखों में आँसू उमड़ आये और मंजु के मुँह से 'या अल्लाह!' जैसा कुछ निकला। जैसे कोई डूबी हुई आवाज़ पानी से उभरती है। फिर उस आदमी ने भर्रायी हुई आवाज़ में बताया कि जहाँ मुफ़्त दवा-दारू हो सकती थी, वह करा चुका, लेकिन अब उसके यहाँ रोटी के लाले पड़े हैं। वह दोस्तों रिश्तेदारों से थोड़ी-थोड़ी मदद लेकर मुम्बई पहुँचा है और मंजु को जाने बग़ैर पूछता-पाछता उसके घर आ गया है। अब वही उसका आख़िरी आसरा है। यह कह कर उसने मंजु से पाँच सौ रुपये की मदद माँगी।

मंजु ने उससे उसकी बेटी की बीमारी का नाम पूछा और फिर अपने कमरे में जाकर अपने डॉक्टर से टेलीफ़ोन पर पन्द्रह-बीस मिनट तक बात करती रहीं। जब वह बाहर निकलीं तो उनके हाथ में एक लिफ़ाफ़ा था। जिसको किनारों पर मोड़ दिया गया था, ताकि वह आसानी से खुल न जाये। उन्होंने लड़की के बाप से कहा कि वह पहली गाड़ी से आज़मगढ़ चला जाये और लड़की का इलाज रकम देकर किसी स्पेशलिस्ट से करवाये। इलाज में कम-से-कम ढाई हज़ार रुपये लगेंगे, इसके अलावा

लड़की की खुराक, घरवालों के गुज़ारे और अपनी दौड़-धूप पर उसके दो हज़ार रुपये और लग जायेंगे। बाक़ी करीबन पाँच सौ रुपये बचेंगे जिसे अपनी अनजानी ज़रूरतों के लिए अपने पास सुरक्षित रख सकता है। यह कह कर मंजु ने लिफ़ाफ़ा उसे देते हुए कहा, "इसमें पाँच हज़ार रुपये हैं। यह लेकर बाहर मेरी गाड़ी में बैठो। मेरा ड्राइवर तुम्हें तुम्हारे वतन जाने वाली गाड़ी पर चढ़ा कर आयेगा।" लिफ़ाफ़ा लेते हुए उस आदमी के होंठ और हाथ काँप रहे थे और उसकी आँखों के पीछे बन्द दरिया उबल कर बह निकला। "वह जो दुनिया का सबसे बड़ा डॉक्टर है, उसकी मंजु बोली, रहमत तुम्हारा साया बनकर तुम्हारे साथ-साथ रहेगी। अब जाओ, मैं तुम्हारी बच्ची के लिए दुआ करूँगी।"

मुझे मंजु की फ़ितरत के दोनों पहलू—कामुकता और दयालुता इस घटना में नज़र आये। उठते-उठते उसने उस आदमी से कहा था, "बच्ची ठीक हो जाये तो उसकी मुझे ख़बर देने के लिए तुम खुद मुम्बई आना।" इस वाक्य में 'ख़ुद' पर इसरार था, "मैं ज़रूर आऊँगा।" कहकर चला गया। वह आदमी चुस्त और गठीले बदन का था। उसका चेहरा एक लिहाज़ से ख़ूबसूरत भी था, एक लिहाज़ से नहीं भी, लेकिन कामुकता और दयालुता दोनों चेहरों की ख़ूबसूरती और बदसूरती कब देखती है!

कोई दस मिनट की ख़ामोशी के बाद मैंने मंजु के साथ अपने इंटरव्यू की छूटी हुई डोर को फिर पकड़ लिया और पूछा, "आपकी शादी हो चुकी है, लेकिन आप और कमाल साहब किसी वजह से अलग हो चुके हैं। क्या आप उनसे तलाक़ लेंगी? वे आपको तलाक़ नहीं देंगे, यह मैं जान चुका हूँ।"

इसके जवाब में मंजु ने काफ़ी देर सोचने के बाद कहा था—"तलाक़ तो दूर की बात है। जो शादी टूट चुकी, वह शायद हुई ही न होगी।" फिर वह काफ़ी देर तक खिड़की से बाहर शून्य में कुछ न देखने वाली आँखों से घूरने लगीं। उसके नथुने कभी ज़रा फैल जाते थे, कभी सिकुड़ जाते थे। इंटरव्यू का यह सिलसिला इसी बिन्दु पर रुक गया।

हालात से मजबूर होकर उसके माँ-बाप रंजीत होटल में एक बच्ची का रोल अदा करने के लिए उसे ले गये थे। शॉट एक-दो बार इसलिए नहीं हो सका कि डायरेक्टर के लाख समझाने पर सात वर्षीय मंजु को कैमरे के सामने, चारों तरफ़ जलती बत्तियों और घूरती आँखों के बीच

रोना नहीं आया। इस ख़याल से कि एक शॉट और ठीक न हुआ तो उसे एक्टिंग के जो पैसे रोज़ाना के हिसाब से मिलते थे, वे नहीं मिलेंगे और फिर घर में रोटी कैसे पकेगी? मंजु की माँ ने उसे कोने में ले जाकर कहा—"अगर तू रोयी नहीं तो पैसे नहीं मिलेंगे और तेरी गुड़िया-गुड्डे भूखे मर जायेंगे।" मंजु कैमरे के सामने अब जो पहुँची तो उसकी आँखों से गंगा-जमुना बह निकली। रंजीत स्टूडियो से क़ब्र तक मंजु गुड़िया-गुड्डे ही पालती रही, जिनकी बढ़ती हुई तादाद की भूख-प्यास ही मिटाती रही।

काम की अनुभूति व्यक्तित्व का मस्ती भरा इज़हार हो जाये तो समझ लीजिए कि व्यक्तित्व परवान चढ़ा। जीवन असीम स्वच्छन्दता के धारे को छू आया, किन्तु वही अनुभूति क्षणिक होकर रह जाये तो शरीर की हर वहशत झूठी, आत्मा का हर अग्नि-स्नान निरर्थक।

मेरा बार-बार मंजु की कामुकता की तरफ़ लपकना बुरा लगता है, लेकिन इसका क्या किया जाये कि वह जीवनभर एक चिरन्तन कामानुभूति की एक तड़प और क्षणिक अग्नि-स्नान के धड़के के बीच पेंडुलम की तरह झूलती रही।

प्रोविड स्टेंडहाल और वेलजेक जैसे महान लेखकों ने लिखा है। स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्धों का किसी छोटी या बड़ी बात से शुरू होकर ऊब और उकताहट के मरहलों से गुज़र कर उदासीनता की हद तक पहुँचना अनिवार्य है। मंजु को कदाचित् इसका ज्ञान नहीं था। शायद इसीलिए अपने अनेक प्रेम सम्बन्धों में किसी एक को भी वह कुछ ऐसा स्थान नहीं दे सकी जो क़ब्र तक साथ जाता। जब यह आख़िरी बार सेंट एलिज़ाबेथ नर्सिंग होम जाने के लिए अपने आख़िरी प्रेमी के साथ मिलकर कुछ साज़-सामान तैयार कर रही थी तो उसने अपने प्रेमी से मिन्नत की थी कि वह उससे ब्याह कर ले ताकि अगर उसकी क़िस्मत में मरना लिखा है तो वह सुहाग का जोड़ा पहने अपनी मौत का स्वागत करे।

एक मासिक पत्रिका में मैंने पढ़ा कि उसके प्रेमी ने उसका प्रस्ताव न ठुकराया, न उसे क़ुबूल किया। उसने केवल इतना कहा, "इस वक़्त मैं यह बात नहीं सोच सकता। पहले तुम ठीक हो जाओ, फिर देखेंगे।" ग़लत या सही, मैंने सुना है उस दिन से उस दिन तक जब मंजु मरी थी, उसके और उसके प्रेमी के बीच ख़ामोशी की एक दीवार खड़ी रही। मंजु का वह अन्तिम प्रेमी अपना दूसरा या तीसरा ब्याह रचा चुका है।

लेकिन मंजु की मौत के बाद होने वाली घुड़दौड़ में मैंने उसे रेसकोर्स में देखा था। वह जीत के टिकटों वाली खिड़की की तरफ़ तेज़ी से चला जा रहा था।

और मैं सोच रहा था कि जीवन भी एक घुड़दौड़ ही तो है, जिसमें कोई हार गया कोई जीत गया। हार-जीत के इस हंगामे की तह में डूबकर देखा जाये तो हारने-जीतने की तरह जीने-मरने वाले दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं बनता। कहाँ एक बहती हुई नदी, कहाँ दौड़ते हुए घोड़े? लगता है, न तो मंजु का प्रेमी रेसकोर्स में जीतने वाले घोड़े के पैसे वसूलने जा रहा था और न ही मंजु अपनी साँसों से बिछड़कर एक क़ब्र में जा लेटी थी। यह दोनों का समय था जो एक के लिए लपका चला जा रहा था, दूसरी के लिए रुक गया था। समय के इसी लपकने और रुकने के बीच के फ़ासले का नाम ज़िन्दगी है जो गतिशील है, साँस लेती है, बात करती है। देने वाला पाने की आशा इसलिए नहीं करता कि बाँटने का हक़ वही रखता है जो अपने लिए कुछ भी न रखे।

मंजु के बारे में एक बात मैं ख़ासतौर पर कहना चाहूँगा। वह झूठी थी, लेकिन उसके झूठ ने किसी को नुक़सान नहीं पहुँचाया और उसकी सादगी ने उसे पनपने नहीं दिया।

यहाँ तक जो मैंने लिखा है, मैं उससे असन्तुष्ट नहीं हूँ। इस लेख में (अब तक जो लिखा गया है) जहाँ सच पाता हूँ वह पूर्ण होते हुए भी मुझे अपूर्ण लगता है। यही हाल झूठ का है। यही हाल जीवन में क़रीब-क़रीब हर सच और झूठ का है। यह लेख मैंने उस मंजु के बारे में नहीं लिखा, जो वह असल थी बल्कि उस मंजु के बारे में लिखा जिस रूप में वह हम सब के सामने थी और उस मंजु को मैं उस हद तक जानता था, जिस हद तक कोई इन्सान किसी दूसरे इन्सान को जानने का दावा कर सकता है।

मंजु की शराबनोशी के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है। मैं अपनी झोंक में सिर्फ़ यही कहूँगा।

हुस्ने काफ़र शबाब का आलम
सर से पाँव तक शराब का आलम।

औरत को शराब कहना दुरुस्त है क्योंकि इन दोनों के बीच काग़ज़-सी पतली दीवार के सिवा कुछ भी नहीं है। फिर भी मैं जब भी उसे पीये हुए देखता था तो मुझे लगता था कि अंगूर के हर दाने में शैतान

छुपा हुआ है जो एक देवी को बदहवासी के कोहरे में छुपा देता था और देवी पलभर के लिए हमारी नज़रों से ओझल हो जाती थी।

यह तो हम सबने जान लिया कि वह क्या करती थी, लेकिन वह असल में थी क्या, यह हममें से बहुत कम लोग जान पाये।

मंजु के जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग उसकी शायरी थी। उसकी कुछ ग़ज़लों के एल.पी. रिकॉर्ड उसके घर पर मैंने एक मित्र के साथ सुने थे, लेकिन हम में से कोई उससे कह न सका कि वह जितनी अच्छी निगार हैं, उतनी अच्छी शायरा नहीं हैं। उसे शायरी से इतना गहरा प्यार था कि अगर उसका बस चलता तो वह बात-बात में कह पड़ती। उस वक़्त भी, जब वह दम तोड़ रही थी, उसके और उसके आख़िरी प्रेमी के बीच अगर दीवार न खड़ी होती तो वह अपने प्रेमी को शायद एक ही शेर सुनाती और न होने के समन्दर में डूब जाती।

अब नजा का आलम तारी है तुम अपनी मुहब्बत वापस लो
जब कश्ती डूबने लगती है तब बोझ उतारा करते हैं।

मंजु का जीवन 'ग्रीक ट्रेजेडी' की भाषा में लिखी गयी परियों की कहानी थी। 'पाकीज़ा' की शानदार सफलता भी उसकी मौत के तीन हफ़्ते बाद आयी। 'पाकीज़ा' उसकी आख़िरी फ़िल्म थी जिसमें उसने हीरोइन के रूप में काम किया था, वरना 'पाकीज़ा' की रिलीज़ से बहुत पहले वह एक डूबते हुए सितारे में बदल चुकी थी। अकेलेपन का जो अहसास एक डूबते हुए सितारे या भूली-बिसरी नायिका को होता है, उससे ज़्यादा अकेलापन और कहीं नहीं महसूस होता। उस खाई को अपनों की मुहब्बत भी नहीं भर सकती। वह अहसास गहरा ही होता जाता है, उस अहसास से उभरने के लिए सस्ते बलिदान का सहारा लेकर ऊँचाइयों की तरफ़ लपकने की कोशिश करनी पड़ती है। जब वे ऊँचाइयाँ हाथ नहीं आतीं, तब इन्सान अपने मन से पूछता है, "मेरे मन की शान्ति और चैन कहाँ खो गये?" वह फिर उसे नये सम्बन्धों की तलाश में लपकने-भटकने को मजबूर करता है। सच पूछो तो अदाकारी के आख़िरी दौर में मंजु के साथ भी यही हुआ। वह ऊँचाइयों से बिछड़ी तो प्यारे शब्दों और ख़ूबसूरत भाषा के इन्द्रजाल में उलझकर रह गयी। इस उलझावे से निकलकर अपने आप से पूछती होगी, "मैं इन्सानों के बजाय लफ़्ज़ों से दोस्ती करना कैसे सीख गयी?

ख़ूबसूरत लफ़्ज़ अच्छे दोस्त क्यों नहीं बनते? लफ़्ज़ डाइनामाइट की छड़ियाँ होते हैं। डाइनामाइट और दोस्त?''

मेरा मन पच्चीस वर्ष पीछे उस शाम की तरफ़ लपकता है जब उसने कहा था, ''मैं कहकशाँ के एक-एक सितारे पर कमन्द फेंकूँगी।'' सितारे तो दूर रहे, वह किसी एक निभने वाले दोस्त पर भी कमन्द फेंक न सकी।

अक्सर देखा गया है कि जो लोग एक न मिटनेवाली दोस्ती की तलाश करते हैं, वह आख़िरकार किसी वेश बदलकर आयी हुई दुश्मनी को गले लगा बैठते हैं। अपने आख़िरी दिनों में मंजु ने ऐसे ही दो-एक दुश्मन पाल लिए थे, जिनसे उसे दुख ही दुख मिला।

दोस्त वह होता है जो उस वक़्त अन्दर आता है जब बाक़ी दुनिया बाहर जा चुकती है। ऐसा दोस्त चाहे तो खाई से उभारकर आसमान तक पहुँचा दे या फिर ऐसा डुबोये कि डूबने वाला उभरने के स्वप्न से भी बिछड़ जाये।

कमाल साहब मंजु के जीवन में दोबारा उस वक़्त पहुँचे जब वह दुश्मननुमा दोस्तों द्वारा डुबोयी जा चुकी थीं। कमाल साहब का मंजु के जीवन में दोबारा पहुँचना उसके साथ उनका आख़िरी और न दोहराया जाने वाला पुनर्मिलन था।

हमारा ऊपर से बोलना अपने अन्दर को छुपाने की मुसलसल कोशिश है। मंजु की ख़ूबसूरत बोली और उसका डायरी लिखना इसी कोशिश के हिस्से थे।

मंजु जो झूठ बोलती थी, एक्ट्रेस थी, लेखिका थी, शायरा थी, कई प्रेमियों की प्रेमिका थी। लेकिन उसकी चेतना की तहों में छुपी हुई मंजु गंगा के पानी जैसी पवित्र थी। एक संसार बाहर वाली मंजु से अपने सम्बन्ध जोड़कर बिछड़ गया, अन्दर वाली मंजु तक कोई पहुँच नहीं सका। उसके किसी एक चाहने वाले ने गंगा के तीरे से निकला हुआ एक ख़ूबसूरत पत्थर उसकी क़ब्र पर रख दिया। वह पत्थर सैकड़ों-हज़ारों पत्थरों का प्रतीक लगता है जो और समन्दरों के किनारों से चुन-चुनकर जमा किया थीं। मैं विश्वास रखता हूँ कि अगर कोई मन, वचन, कर्म से पूरी कल्पना एक पत्थर में समो दे, तो पत्थर में भी आत्मा आ जाती है

उसके सोने के कमरे में पत्थरों का एक ढेर करीने से सजा हुआ या मेरा ख़याल है जब इन्सानों की भीड़ उसकी ज़िन्दगी से निकली थी तो

वह पत्थरों से बोलने-चालने लगती थी। उसके जीवन की 'ग्रीक ट्रेजिडी' यही थी कि वह पत्थरों की एक भीड़ से बिछड़ती और दूसरे पत्थरों के ढेर से जा मिलती थी।

आज का ज़माना सभ्य है। पढ़ा-लिखा है, सलीके और वफ़ारी का धनी है, लेकिन एक ज़माना पत्थरों का था, जब इन्सान पत्थरों पर बेहोश होकर सोता था। सभ्यता और पत्थर? मंजु होती तो चीख़ कर कहती, ''मुझे पत्थर चाहिए।'' कोई बतायेगा कि वे सात बौने किस कुरते में गुम हैं, जो पत्थरों से प्यार करने वाली मंजु की रक्षा करते?

प्रदीप कुमार

मीना जी की याद आते ही ज़ेहन में इतनी बातें और इतनी घटनाएँ ताज़ी हो जाती हैं कि मैं विचलित हो जाता हूँ। उनकी याद आते ही पलकें नम हो जाती हैं। मन भीग गया है। सोच रहा हूँ, उसके बारे में क्या कहूँ, क्या लिखूँ? एक बात हो तो बयान भी किया जा सकता है। हज़ार बातें हैं, हज़ार रंग हैं और सभी का अपना-अलग अन्दाज है, सभी का अपना अलग सम्मोहन है। सच कहूँ तो मीना को खोकर मैंने अपनी ज़िन्दगी की सबसे हसीं नज़्म खो दी है, लेकिन फिर लगता है, मीना नहीं मर सकती। कभी नहीं मर सकती। मुझे लगता है, वह कभी भी मेरे पास चली आयेगी'। मैं ही नहीं, मीना के चाहने वालों की संख्या करोड़ों में है। इस देश में करोड़ों लोग उसे प्यार करते थे। जिसे इतने सारे लोग प्यार करते हों, उस पर मौत की काली छाया कभी नहीं पड़ सकती। इसलिए मीना अमर है, उनकी मृत्यु कभी नहीं हो सकती। कभी नहीं, कभी नहीं।

लगता है, जैसे कल की ही बात हो। उनकी याद आते ही वक़्त जैसे ठहर गया हो। उनसे जुड़ी बातें मुझे ज्यों की त्यों याद आ रही हैं। 1952 में मेरी 'अनारकली' के साथ ही उनकी 'परिणीता' भी प्रदर्शित हुई थी। फ़िल्म देखने के बाद मुझे लगा जैसे शरदचन्द्र ने मीना को देखकर ही अपने उपन्यास की रूपरेखा तैयार की थी। इससे पूर्व मैं उसकी फ़िल्म 'बैजू बावरा' भी देख चुका था। इन दोनों ही फ़िल्मों को देखने के बाद मैं उसका दीवाना हो गया था। उस पर जैसे फ़िदा हो गया था, लेकिन तब तक हमारी मुलाक़ात नहीं हो पायी थी। इसी बीच स्व. हेमन गुप्ता ने एक फ़िल्म बनाने की योजना बनायी, जिसमें मैं और मीना साथ-साथ काम करने वाले थे। मैं हेमन जी के साथ-साथ मीना जी के घर आने-जाने लगा था। वो मुझे देखतीं, मैं उन्हें, किन्तु हमारी दोस्ती का आधार अभी तक मज़बूत नहीं हो पाया था क्योंकि बाद में यह फ़िल्म मीना जी को लेकर नहीं बनी।

इसके बाद में 1954 में जी.पी. सिप्पी साहब ने 'अदले जहाँगीर' के नाम से मुझे और मीना जी को लेकर एक फ़िल्म शुरू की और इस फ़िल्म निर्माण के दौर में हम दोनों एक-दूसरे को अच्छी तरह समझने लगे। बाद में तो हमने इकट्ठे काफ़ी फ़िल्मों में काम किया, जिनमें 'बन्धन' 'आरती', 'चित्रलेखा', 'भीगी रात', 'बहू बेगम' और 'नूरजहाँ' प्रमुख हैं। एक साथ फ़िल्मों में काम करते हुए, हम दोनों एक दूसरे के काफ़ी क़रीब आये। उन्होंने मुझे समझने की कोशिश की, मैंने उन्हें इस आधार पर मैं अधिकारपूर्वक यह दावा कर सकता हूँ कि मैं उनके निकटतम मित्रों में सबसे ज़्यादा क़रीब था। उन्होंने मुझे अपना पूरा विश्वास दिया। सारे रहस्य दिये और सारा प्यार दिया। उनके उस विश्वास, रहस्य और प्यार का रूप बिल्कुल निराला है, जिसकी किसी से कोई तुलना नहीं की जा सकती। हमने एक-दूसरे से कोई बात नहीं छिपाई। हम एक-दूसरे से कभी झूठ नहीं बोलते। मैं सिर्फ़ उनके साथ अपने सम्बन्धों का अहसास कर सकता हूँ, क्योंकि सम्बन्धों की पवित्रता को दूसरे लोगों ने इतनी गहरायी में अहसास किया हो, इसकी मुझे कम ही उम्मीद है, बहुत कम उम्मीद।

मीना के सन्दर्भ में ही मुझे गीता बाली की याद आ रही है। गीता के साथ भी मैं कई फ़िल्मों में हीरो की भूमिका कर चुका हूँ, बावजूद इसके कि वह मेरे हाथ में राखी बाँधतीं और भाई जैसा समझती थीं, लेकिन मीना अगर चाहती तो भी मैं उनसे राखी नहीं बँधवाता। अव्वल तो ऐसी बात होती ही नहीं क्योंकि हम एक-दूसरे को अच्छी तरह समझते थे। कमाल साहब से इजाज़त लेते हुए यह बात मैं खुलकर बताना चाहता हूँ कि हम दोनों एक-दूसरे के लिए एक आकर्षण महसूस करते थे लेकिन हम दोनों की अपनी-अपनी सीमाएँ थीं। मैं भी शादीशुदा था और वह भी। फिर भी हम अपनी सीमाओं के आख़िरी छोर पर एक-दूसरे के साथ थे, हमारे बीच दूरी नाम की चीज़ नहीं थी।

जहाँ तक मैं समझता हूँ, जब तक मीना मिसेज़ कमाल अमरोही रहीं, वह मुकम्मिल थीं। कोई अधूरापन नहीं था। इसी काल में उन्होंने अपने अभिनय और प्रतिष्ठा की बुलन्द ऊँचाइयों को स्पर्श किया, किन्तु जबसे दोनों अलग-अलग हुए, उसके बाद से सारा खेल ही बिगड़ गया। उनके आपसी अलगाव का मुझे कोई सही कारण नहीं सूझता। फिर भी लगता है, दोनों ने एक-दूसरे को समझने में भारी भूल की, जबकि हक़ीक़त यह है

कि दोनों एक-दूसरे से अलग होते हुए भी आपस में बिल्कुल क़रीब थे। कमाल साहब और मीना दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में जीनियस थे संवेदनशील थे, इसलिए दोनों अन्त तक क़रीब नहीं आ सके। शायद भौतिक विज्ञान के इस नियम को सच सिद्ध कर रहे थे कि समान ध्रुवों में आकर्षण नहीं होता। कमाल साहब से जब भी मैं मीना का ज़िक्र करता, वह ख़ामोश हो जाते कहीं खो जाते, और मीना की तो बात ही कुछ और है। अक्सर किसी संवाद अथवा दृश्य में हम उलझ जाते तो मीना कहती—"कमाल साहब होते तो यह ऐसा होता और चाहे जो हो लेकिन फिर भी उनका जवाब नहीं।"

मैं पूछता—"आप दोनों फिर से एक क्यों नहीं हो जाते? जीवन में हम ढेर सारी ग़लतियाँ करते हैं। समझ लीजिए आप दोनों का अलग होना भी एक ग़लती ही है।"

"नहीं, अब काफ़ी वक़्त निकल गया है, अब ऐसा नहीं हो सकता। छोड़िए, अब कोई और बात कीजिए।" मैं अब देखता कि उनकी पलकें भीग आयी हैं। सब कुछ सह सकता था, सब कुछ बर्दाश्त कर लेता, लेकिन मीना के आँसू बर्दाश्त नहीं होते। मुझे भी लगता जैसे किसी ग़लत प्रकरण को छेड़ दिया हो मैंने।

आज तो थोड़ी-सी सफलता प्राप्त करने के बाद किसी अभिनेता अथवा अभिनेत्री के पाँव ज़मीन पर नहीं पड़ते। वह अपनी इन्सानियत खो बैठता है। छोटे-बड़े का अदब भूल जाता है, लेकिन मीना जबकि हिन्दुस्तान ही नहीं दुनिया के पैमाने पर एक सफल, प्रतिष्ठित और बड़ी अभिनेत्री स्वीकृत हो चुकी थीं, उनमें अभिमान का लेशमात्र भी मैंने नहीं अनुभव किया। उन्हें पान खाने की आदत थी और उनके लाल होंठ देखते ही बनते। ग़ज़ब की बात तो तब लगती जब उनको हँसते हुए कोई देखे। उनसे अक्सर लोग एक-दूसरे की शिकायत किया करते। सब सुनतीं, फिर आश्चर्य से कहतीं—"अच्छा!" पान का पीक फेंकतीं और इसी पीक के साथ उस आदमी की शिकायत भी।

मीना को मैं हिन्दुस्तानी औरत के सौन्दर्य का अनूठा नमूना मानता हूँ। उसकी जैसी आँखें मैंने आज तक नहीं देखीं। अपनी आँखों से ही वह इतनी बातें कर जातीं कि शब्दों का मूल्य बेकार हो जाता। 'आरती' का वह दृश्य याद आ रहा है जब बैकग्राउंड में *कभी तो मिलेगी*

गाना बज रहा होता है। हम दोनों एक-दूसरे को देख रहे होते हैं। उनके देखने मात्र से ही दृश्य पूर्ण हो जाता। उनके शब्द इतने सधे निकलते और चेहरे पर भाव इतना वास्तविक रूप लेते कि दोनों ही शब्द और भाव जैसे मीना से भीख माँगते हों, ''पूर्णता दो।'' उनकी हँसी में पहाड़ी झरनों का संगीत मिलता। उनकी प्रशंसा के लिए सही रूप में मुझे उपयुक्त शब्द नहीं मिल रहे। मैं भटका-भटका-सा महसूस कर रहा हूँ। वाक़ई में वो प्यार की भूखी थीं, उनके पास मतलबी लोगों का हुजूम लगा रहता। उन्हें अपने ही पास के लोगों के बारे में जानकारी नहीं थी, लेकिन मुझे इस बात को लेकर फ़िक्र है कि हमारी मित्रता दिनों-दिन मज़बूत होती रही, क्योंकि बहुत-सी बातों में व्यावसायिक तौर पर भी हमारी आपस में समझदारी थी, बल्कि मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि मीना जैसी 'बोल्ड औरत' आज मुश्किल से मिलेगी। उस जैसी बस वही थी, दूसरी कोई नहीं हो सकती।

जब हम एक साथ फ़िल्में करते तो पारिवारिक वातावरण होता और किसी कारणवश हमें अलग भी होना पड़ता तो हमें कोई तकलीफ़ नहीं होती। धर्मेन्द्र के लिए उन्होंने मुझसे कई फ़िल्मों में काम करने से मना कर दिया। आज की बड़ी हीरोइन नये हीरो के लिए शायद ही ऐसा करती हो। वे कहतीं—''लैट दिस मैन कम अप—इस आदमी को ऊपर आने दीजिए। हमने तो कई पिक्चरें साथ की हैं और अभी फिर करते रहेंगे।''

मैं पूछता, ''आप इसे चाहती हैं क्या?''

''आप इतने 'डिटेल' में क्यों जाना चाहते हैं।'' और उसके बाद किसी बात को ज़्यादा जानने की ज़रूरत नहीं होती। ऐसी घटनाएँ उनकी उदारता का परिचायक हैं।

जहाँ तक हम दोनों के इकट्ठे काम करने की बात है, हमें बड़ा मज़ा आता। किसी तरह का कोई तनाव नहीं महसूस किया कभी। बातचीत के मामले में भी वे बेहद खुली होतीं 'भीगी रात' की शूटिंग की शाम में मेकअप करने के बाद मैं उनसे कहता—''इतनी जल्दी कमरे में बन्द होने से क्या फ़ायदा? मेरी तरफ़ चली आया कीजिए?''

''लेकिन आप तो शादीशुदा हैं।'' कहकर हँस पड़तीं। उनकी हँसी का जादू आज भी नहीं भूल पाया हूँ। इसी दौर में हम जब इकट्ठे होते तो वो अपनी नज़्में और शेर सुनातीं और मैं उन्हें रवि ठाकुर संचयन की कविताएँ। फ़्लोर पर उर्दू बोलने में उनके प्रोत्साहन से मुझे बड़ा बल मिला

और जब भी उनसे धीरे-धीरे सधे लहजे में बाँग्ला भाषा में बातें होतीं, तो देखने वालों को आश्चर्य होता।

मीना के बारे में जब भी बौद्धिक और तर्क की कसौटी पर पहुँचने की कोशिश करता हूँ तो निष्कर्ष यह मिलता है कि वह उस वहम की शिकार हो गयी थीं कि उन्हें कोई प्यार नहीं करता। पता नहीं उनकी इस बात का क्या अर्थ होता—''मुझे कोई प्यार नहीं करता। कुछ लोग मेरे पैसे को प्यार करते हैं, कुछ मेरी अभिनेत्री को और कुछ मेरे जिस्म को—मुझे कोई नहीं चाहता, मुझे कोई नहीं प्यार करता।''

और मैं हमेशा उनकी इस धारणा का खण्डन करता। लेकिन उन्होंने तो जैसे अपने को मिटाने का ही फ़ैसला कर लिया था तो किसका बस चलता? उनकी बेचैनी दिनोंदिन बढ़ती ही रही। इस बेचैनी को उन्होंने शराब और तम्बाकू में ग़र्क़ किया और इस शराब और तम्बाकू ने उन्हें ग़र्क़ कर लिया। मुझे लगता है, ज़िन्दगी से इस तरह कम ही लोगों ने बेवफ़ाई की होगी जैसी मीना ने की। उस रात दो-ढाई बजे की घटना याद आ रही है।

मैं नींद में सोया था। टेलीफ़ोन की घण्टी से नींद टूटती है। रिसीवर जैसे ही कानों के पास ले जाता हूँ तो आवाज़ सुनायी पड़ती—''मैं, मीनू! सोये थे न।''

''अब लेकिन मैं जाग चुका हूँ।''

''आप इस वक़्त मेरे पास आ सकेंगे क्या, मुझे नींद नहीं आ रही है।'' मीना ने फिर कहा।

मैं गाड़ी लेकर जानकी कुटीर पहुँच गया था। उन्होंने थोड़ी पी रखी थी। देखते ही उन्होंने कहा—''मैं जानती थी, आपको कभी भी बुलाऊँगी आप चले आयेंगे।''

रात उनके साथ मेरे एक दोस्त की धर्मपत्नी भी थीं। मीना ने कहा—''आप इन्हें छोड़ कर आइए, मैं आपका यहीं इन्तज़ार कर रही हूँ।''

जब मैं लौटा तो सीढ़ियों पर बैठी मिलीं। मैंने पूछा, ''आख़िर ज़िन्दगी से इतनी शिकायत क्यों है?''

''बताइए मैं किसके लिए जीऊँ, कौन है मेरा, न बेटा, न बेटी, न शौहर, किसके लिए जीऊँ?'' मीना फूट पड़ी थीं। मुझसे भी नहीं रहा गया और बरबस आँसू झर रहे थे।

सच कहूँ तो उन्होंने मुझे अपनी किसी सहेली का दर्जा दिया था। मुझसे सारी बातें, सारे दुख और दर्द बताकर उन्होंने मुझे अपना अत्यधिक आत्मीय बनाया था। हमारे सम्बन्ध मानवीय होकर भी, दैवी थे। वह मुझे 'बेचारा' (जब ख़ुश होतीं तो) कहकर बुलातीं।

सारी बातों के बावजूद उनसे हमारी आख़िरी मुलाक़ात का सिलसिला नहीं बना। मैं अपने एक दोस्त के आग्रह पर मेरठ में वहाँ के स्थानीय कलाकारों को प्रोत्साहन देने के बहाने मुम्बई में जब मौजूद नहीं था, मीना चल बसीं।

मुझे अख़बारों में जब यह ख़बर पढ़ने को मिली तो जैसे मैं चेतना शून्य हो गया और उस वक़्त, तीन दिनों तक मेरठ के समारोह में जिस ढंग से हिस्सा लेना चाहिए था, अपनी बेचैनी की नज़र से उस ढंग से न ले सका। बार-बार मीना याद आती। सारे गुज़रे हुए साथ के क्षण याद आते। अब उनका क्या होगा?

कभी-कभी लगता है, अच्छा ही हुआ जो नियति ने मुझे मुम्बई से अलग कर दिया था। शायद मुम्बई में मीना की मौत का हादसा और उस महज़बीन को क़ब्र में दफ़न होते हुए मुझसे देखा नहीं जाता। यह भी अच्छा हुआ कि मैंने मीना को क़ब्र के अँधेरे में सोते हुए नहीं देखा, इसलिए मुझे लगता है कि मीना मरी नहीं है। उसके दुश्मनों ने उसकी मौत की झूठी अफ़वाह फैला दी है। वह शायद आदमियों के इस जंगल में कहीं छिप गयी है। किसी-न-किसी दिन वह मुझे ज़रूर बुलायेगी। मैंने उसके लिए रवि ठाकुर की ढेर सारी पसन्दीदा कविताएँ सुनाने के लिए सँजो रखी हैं। बदले में मैं भी उनकी ढेर सारी नयी नज़्में और शेर सुनूँगा। वह कभी भी चली आयेगी, किसी दिन भी, किसी वक़्त भी। देखते ही बोलेगी—"च च च च 'बेचारा'।" इसे आप मेरा मीठा भ्रम कह सकते हैं, झूठे सपने कह सकते हैं, लेकिन मीना की याद में इस मीठे भ्रम और झूठे सपने पालने में मुझे काफ़ी सकून मिल रहा है।

ख़्वाजा अहमद अब्बास

एक बार किसी कार्यवश जब मैं मॉस्को गया तो लौटते समय अपने मित्रों के लिए उपहार लाने के अतिरिक्त मीना कुमारी के लिए भी एक रूसी गुड़िया ले आया। मैं जानता था कि उसे गुड़िया एकत्रित करने में बहुत रुचि थी। ऐसी अनेक आकार-प्रकार की गुड़ियाएँ उसने अपने घर में सजाकर रखी हुई थी।

''क्या आप जानते हैं कि मुझे इस आयु पर पहुँचकर भी गुड़ियाएँ एकत्रित करने का बचकाना शौक़ क्यों है?'' उसने एक बार मुझसे पूछा था और फिर ठण्डी साँस लेकर और एक कटु मुस्कान भर कर कहा था—''इसलिए कि बाल्यकाल में मुझे कभी गुड़ियों से खेलने का अवसर ही नहीं मिला। मैंने तो सात-आठ वर्ष की आयु में ही फ़िल्मों में काम करना प्रारम्भ कर दिया था।''

उसका पिता एक संगीत निर्देशक था जो आर्थिक दृष्टि से असफल तथा दरिद्र ही रहा। उसकी माता एक नर्तकी थी। उत्तराधिकार में उसे कला-कौशल की विभूति और कलाकारों की मनोवृत्ति मिली, परन्तु उसकी बाल अवस्था अत्यन्त कष्टों में व्यतीत हुई। जिस समय वह गुड़ियों से खेलना चाहती थी और हिंडोले में बैठना चाहती थी, उस समय उसे बाल कलाकार बनकर बीस-पच्चीस रुपये नित्य अर्जन करने के लिए फ़िल्मों में काम करना पड़ा। वह जो स्कूल के पश्चात् कॉलेज में पढ़ने की इच्छुक थी, काव्य रचना और काव्य गोष्ठी में रम जाना चाहती थी, आर्थिक विवशताओं के कारण चौदह वर्ष की आयु में ही फ़िल्म अभिनेत्री बनकर जीविका उपार्जन के लिए विवश होकर रह गयी। हाँ, तो मैं मॉस्को से उसके लिए एक रूसी गुड़िया ले आया। उस गुड़िया को पाकर मीना कुमारी को इतनी प्रसन्नता हुई जैसे दुनिया-जहान की ख़ुशियाँ मिल गयी हों। वास्तव में यह लड़की की भद्दी-सी मोटी वृद्धा की आकृति की गुड़िया थी,

परन्तु उस गुड़िया के अन्दर एक और गुड़िया थी, और उसके अन्दर एक और, और उसके अन्दर एक और सबसे अन्दर एक छोटी-सी गुड़िया थी।

आज, जबकि मीना कुमारी इस संसार में नहीं हैं, केवल उसकी एक स्मृति ही शेष है और रजतपट पर उसकी झलकती हुई परछाइयाँ, मैं बहुधा विचार करता हूँ कि सम्भवतः मीना कुमारी को वह गुड़िया इसलिए प्रिय थी कि उस गुड़िया में उसे अपना व्यक्तित्व दिखाई देता था।

एक गुड़िया में कितनी गुड़ियाँ? ज़रा विचार कीजिए वह भी एक रूसी गुड़िया ही थी।

एक मीना कुमारी के अन्दर दूसरी मीना कुमारी दूसरी मीना कुमारी में तीसरी मीना कुमारी और सबसे अन्दर एक मुन्नी-सी मीना कुमारी और सम्भवतः वह मुन्नी-सी अबोध बालिका ही वास्तविक मीना कुमारी थी। शेष सब दिल लुभाने वाले। खोखला संसार तो केवल एक मीना कुमारी से परिचित है जो सभी भारतवर्ष की सुन्दरतम एवं लोकप्रिय फ़िल्म अभिनेत्री 'परिणीता' की मीना कुमारी, 'बैजू बावरा' की मीना कुमारी, 'साहब बीबी और गुलाम' की मीना कुमारी' 'चार दिल चार राहें' की तथा 'शारदा' की मीना कुमारी, 'मेरे अपने' की मीना कुमारी तथा 'पाकीज़ा' की मीना कुमारी।

अपनी प्रत्येक फ़िल्म में वह नये अन्दाज़ और नयी शान से नज़र आती थी, प्रत्येक भूमिका में वह ऐसी रच-बस जाती थी जैसे आत्मा शरीर में विलीन हो जाती है। प्रत्येक भूमिका में वह अलग ही नज़र आती थी। कभी रोमांच युक्त अल्हड़ छोकरी जो गाने-नाचने का व्यवसाय करती है और अपने हृदय में एक अनजान पुरुष से प्रेम क्रीड़ा करती है जबकि वह भली-भाँति जानती है कि संसार ने उसे प्रेम करने का अधिकार ही नहीं दिया (पाकीज़ा)। कभी एक विधवा जो अपने पति के क़ातिल से तीव्र घृणा करती है। परन्तु एक दिन उसे क्षमा कर के 'देवरजी' कहने पर विवश हो जाती है (दुश्मन)। कभी एक श्वेत बालों वाली वृद्धा जिसे धोखा देकर कोई नगर में ले आता है और जो पढ़े-लिखे युवक गुण्डों के दो दलों में शान्ति स्थापित कराने के चक्कर में अपने आपको बलिदान कर देती है (मेरे अपने)।

ये तो उसकी अन्तिम तीन भूमिकाएँ थीं। वास्तविक्ता तो यह है कि उस पर जितनी फ़िल्में बनीं, उतनी ही भूमिकाओं में वह उपस्थित हुई और सभी भूमिकाएँ एक-दूसरी से भिन्न थीं, परन्तु मीना कुमारी उन सब में एक थी। यह सब मीना कुमारी के व्यक्तित्व के भिन्न-भिन्न रूप थे।

अभिनेत्री मीना कुमारी एक प्रभावशाली विनीत कुमारी थी जो कविता सुनती रहती थी और इस कवयित्री मीना कुमारी के अन्दर एक बीमार मीना कुमारी गुप्त थी जिसने सात वर्ष तक ऐसी बालक और बालनायक बीमारी मोल ली, जो अन्य रोगियों को वर्षभर भी पनपने नहीं देती, जो इतनी सन्तुष्ट थी और इतनी वीरांगना कि मुद्दतों तक किसी को इसकी ख़बर ही नहीं हुई। अन्दर ही अन्दर वह जलती रही, सुलगती रही, किन्तु किसी ने उसके होंठों से 'हाय' का धुआँ निकलते नहीं देखा। जो मरने से एक सप्ताह पूर्व तक काम करती रही, भूमिकाओं में उत्तीर्ण होती रही और कितनी गुड़ियाँ थीं इस रूसी गुड़िया में और कितनी मीना कुमारियाँ गुप्त थीं इस एक मीना कुमारी में?

एक तो 'मंजु' थी, जो नाम उसके पति कमाल अमरोही ने प्यार से उसे दिया था। सुना है, उन दोनों में कुछ मतभेद हो गया था। दो कलाकारों का मिलन तो सुगमता से हो जाता है, किन्तु दो कलाकारों का निर्वाह ज़रा कठिन होता है, इस पर भी यह एक वास्तविकता है कि इन दोनों के सम्मिलित परिश्रम का परिणाम 'पाकीज़ा' जैसी अद्वितीय फ़िल्म के रूप में आज भी संसार के सम्मुख उपस्थित है। 'ताजमहल' के समान इनके अपूर्व प्रेम की अन्तिम परन्तु अद्भुत निशानी। अन्तर यह है कि ताजमहल, शाहजहाँ ने मुमताज महल की मृत्यु के पश्चात् निर्माण कराया और 'पाकीज़ा' का ताजमहल कमाल तथा मीना के सम्मिलित परिश्रम एवं लगन से बना और यही 'पाकीज़ा' जो मीना कुमारी की मृत्यु से कुछ दिन पहले ही प्रदर्शित हुई थी, इनकी अन्तिम भेंट का एक सूत्र बना और मीना कुमारी ने अपने पति की गोद में ही अन्तिम साँस ली।

एक रोमांचक मीना कुमारी थी, जिसे प्रेम के विचार ही से प्रेम था, जिसका नर्म और भावनापूर्ण हृदय प्रेम से इतना भरा हुआ था जैसे शराब से छलकता हुआ पैमाना। बहुत-से लोगों ने उससे प्रेम किया और सम्भवतः उसने भी कितने ही लोगों से प्रेम किया, परन्तु मीना का प्रेम ऐसा पवित्र था जो दूसरों के लिए अमृत का काम करता था, जिसने न

जाने कितनों के भविष्य उज्ज्वल बना दिये, उन्हें कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया, परन्तु स्वयं मीना की अन्तरात्मा को अन्दर सुलगती हुई अग्नि के समान जलाता रहा था।

जब काँच से काँच टकराता है! एक और मीना थी जो (लोग कहते हैं कि) शराब पीती थी। मैंने कभी उसे पीते नहीं देखा। काम के समय कभी मदमस्त अथवा बहकते हुए नहीं देखा, परन्तु मैं जानता हूँ कि जीवन की शून्यताएँ, विवशताएँ, एकाकीपन कष्ट प्रभावित हृदय को शराब की ओर धकेल देते हैं, जैसे मेरे मित्र मजाज़ तथा शैलेन्द्र को जीवन ने मृत्यु की ओर धकेल दिया। कवि का हृदय, कलाकार का हृदय पतले काँच से भी अधिक नाज़ुक होता है और काँच का हृदय काँच की बोतल से टकराये तो बोतल नहीं टूटती, किन्तु हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाता है।

गुड़िया के अन्दर दूसरी गुड़िया मीना कुमारी के अन्दर दूसरी मीना कुमारी और सब गुड़ियों के अन्दर एक मुन्नी-सी गुड़िया। और मुझे ऐसा लगता है कि सब मीना कुमारियों के अन्दर वह बच्ची छुपी हुई थी जिसे उसके माता-पिता ने 'महज़बीन' का नाम दिया था और जिसने कभी अत्यन्त दरिद्रता में बाल्यकाल व्यतीत किया था और जो गुड़िया से खेलना चाहती थी, परन्तु गुड़िया उससे छीन ली गयी और स्वयं उसको फ़िल्म जगत् की गुड़िया बना दिया गया। कठपुतली भी तो एक गुड़िया ही होती है, किन्तु उसके तार दूसरों के हाथ में होते हैं। गुड़िया या कठपुतलियाँ और कभी-कभी मुझे ऐसा आभास होता है कि जीवन भर मीना कुमारी उस महज़बीन को खोजती रही थी। (वह बच्ची जो उसके अन्दर छुपी हुई, सहमी हुई, डरी हुई बैठी थी और जिस बच्ची के मन में उसके जीवन के कितने सपने, कितनी आकांक्षाएँ, कितनी उमंगें चोरों के समान छुपी हुई थीं) और सम्भवतः मीना कुमारी के अभिनय में जो गहरायी थी, जो गम्भीरता और ठहराव था, जो शोकाकुल ट्रेजिडी का आभास था वह इसी बेचैन ख़ोज की देन थे।

एक रूसी गुड़िया अपने अन्दर न जाने कितनी भावनाओं और आकांक्षाओं को लिए हुए आज सदा के लिए सो गयी है, परन्तु अभी तो जाने कितनी रूसी गुड़ियाएँ अपने मनमोहक, किन्तु खोखले बाहरी खोल में कितनी अबोध आकांक्षाओं एवं भावनाओं को लिए हुए जी

रही हैं। क्या ये सभी गुड़ियाएँ भी कठोर कठपुतली वालों के लालच का शिकार बनेंगी?

तंगी-ए-दिल का गिला क्या, ये वो काफिर दिल है
कि अगर तंग न होता तो परेशाँ होता

—मिर्ज़ा ग़ालिब

दिल को क्या कहिए, उसके तो आने के ढंग और ढब भी निराले हैं। यूँ न था कि धर्मेन्द्र ने मीना से मिलने से पहले कैमरा देखा ही नहीं था। वह कच्चे ज़रूर थे, मगर नये नहीं थे। निर्देशक ए.जी. तिरलोक चन्दर के पास 'मैं भी लड़की हूँ' की कहानी थी जो हिन्दी में मीना कुमारी के लिए ही लिखी गयी कहानी थी। लिहाज़ा, वहाँ कोई दिक़्क़त नहीं थी। कहानी क्योंकि महिला प्रधान थी, इसलिए उन्हें नायक ऐसा चाहिए था, जिसकी डेट्स उपलब्ध हों। धर्मेन्द्र इसके लिए माकूल चेहरा थे।

धर्मेन्द्र, जिनके बारे में मुकरी बताते हैं कि वह गाँव का इतना सीधा-सादा लड़का था कि उसकी टाई भी टूल लगाकर मुझे बाँधनी पड़ती थी। वही धर्मेन्द्र, कायमशुदा अदाकारा मीना कुमारी के बरअक्स खड़े होने जा रहे थे, उनका परेशान होना लाजमी था। इसी परेशानी में उन्होंने एक दोस्त से पूछा—"मीना जी कैसी हैं?" दोस्त ने जो बताया उंसकी उम्मीद किसी दोस्त से नहीं की जा सकती। उसने कहा—"मीना जी को कुछ कहने की ज़रूरत भी नहीं पड़ेगी। वह महज़ अपने होंठों की लर्ज़िश से तुझे कैमरे के आगे नकारा साबित कर सकती हैं।"

"अच्छा! फिर मैं क्या करूँ!" धर्मेन्द्र और विचलित हुए।

"अगर मैं तेरी जगह होता तो पाँव छू लेता।" दोस्त ने तरकीब दी।

सो, शुरुआत कुछ यूँ ही हुई। और अगर न भी हुई हो तो भी क्या! सारे क़िस्से, कहानियाँ, मुबालगे ही हों तो भी इस बात में कोई शुबहा नहीं कि मीना जी, जब तक रहीं, अपने नौसिखिया शिष्य की मददगार ही रहीं। धर्मेन्द्र ने कई दफ़ा यह बात दोहराई ही है—

"मैं हमेशा मीना जी का प्रशंसक रहा हूँ। मैं उनकी तस्वीरें देखता था और उनकी पूजा करता था। एक अभिनेता बनने की मेरी महत्वाकांक्षा थी और मीना जी के साथ अभिनय करना मेरा सपना था।"

बहरहाल, वे पहली बार काँदिवली में आउटडोर शूटिंग के दौरान आमने-सामने आये। स्वाभाविक रूप से धर्मेन्द्र थोड़ा नर्वस और आशंकित

थे, लेकिन जब परिचय हुआ, तो महसूस हुआ कि मीना गर्मजोशी से भरी और मिलनसार थीं। धर्मेन्द्र को एक पल को नहीं लगा कि वह मीना के आगे नये हैं और इसका कारण था।

कारण यह था कि मीना जी अपने हिस्से की शूटिंग के बाद धर्मेन्द्र की शूट के लिए भी 'मैं भी लड़की हूँ' के सेट पर मौजूद रहतीं और अपना सारा फ़ारिग़ वक़्त धर्मेन्द्र के सीन बनाने में ख़र्च करतीं। इत्मीनान से शॉट की हर तफ़सील बतातीं। जब धर्मेन्द्र कुछ ग़लत करते तो उसे दुरुस्त करने, उसे अपने हिस्से की मेहनत करने को तब तक कहतीं जब तक जायज़ निखार न दिखने लगता।

ग़लतियों को दुरुस्त करने और उनकी इस्लाह करने का एक दूसरा मक़सद था। मीना को भी धर्मेन्द्र अच्छे लगे थे। मीना भी उस नौजवान की तवज्जो अपनी तरफ़ चाहती थीं। समाज का डर हो या अपनी पिछली ज़िन्दगी का लिहाज़, वह यह ज़रूर नहीं चाहती थीं कि उनकी ओर से किसी भी तरह की पहल दिखे। लिहाज़ा पेशावराना दिलचस्पी लेना ही सबसे सही रास्ता था। इसलिए सेट पर दोनों में ख़ूब छनती। ख़ूब बातें होतीं।







और जो बातें सेट पर नहीं हो पातीं, जो वक़्त सेट पर नहीं निकल पाता, उसके लिए राह महमूद के ठिकाने पैराडाइज़ में निकल आयी। महमूद यूँ भी कारोबारी आदमी थे और उनके भाई उस्मान अली डेढ़ कारोबारी। नायिका घर में ही थी। ख़याल यह हुआ कि क्या बात कि अगर नायक भी घर का हो जाये? डेट्स की परेशानी भी नहीं रहेगी। फिर कौन फाइनेंसर पैसे न लगायेगा? लिहाज़ा, पैराडाइज़ में धर्मेन्द्र की आमद-ओ-रफ़्त तेज़ हो गयी। धर्मेन्द्र नये थे, ज़्यादा काम न था। मीना अकेली थीं। उन्हें किसी साथी की तलाश थी जिससे वह दो घड़ी बातें ही कर सकें।

मगर महमूद का घर खुद ही चिड़ियाघर था और वहाँ हर नज़र ही सवालिया थी। बाहर खड़े खोजी पत्रकार महज़ कार देखकर भीतरखाने की ख़बर बना देते थे और भीतर मीना पर घर के अन्दर ही लगभग दस जोड़ी आँखें तनी रहती थीं। महमूद के बड़े कुनबे में उनकी बीवी मधु ही अपना भरोसा खो चुकी थी। लिहाज़ा, मीना को भी उस घर में घुटन महसूस होने ही लगी और उन्होंने महमूद का घर पैराडाइज़ छोड़ दिया।

और जो छोड़ दिया तो अच्छा ही किया। अपने ज़िन्दगी के आगे के जो साल मीना जानकी कुटीर में रहीं जो उनकी ज़ाती ज़िन्दगी के सबसे रोमांचक साल थे। मीना जानकी कुटीर में रहने के लिए इसलिए भी ख़्वाहिशमन्द रहीं कि उन्हें बताया गया कि यहाँ कभी गाँधी जी ठहरे थे।

मीना को अकेलापन काटता था, उन्होंने बचपन से ही भरा-पूरा घर देखा था और उन्हें उसी की आदत थी। फिर वह अपने दिल के हाथों भी मजबूर थीं। किसी की परेशानी उन्हें नागवार गुज़रती थी। सौतेली बहन शमा उन दिनों परेशानी से गुजर रहीं थीं। मीना ने उन्हें अपने पास रहने के लिए बुला लिया। ज़्यादा दिन नहीं बीते थे कि उनकी छोटी बहन मधु की आशनाई किशोर शर्मा से बढ़ने लगी। किशोर शर्मा मीना का केस देख रहे थे, इस वजह से उनका भी काफ़ी आना-जाना था और वह महमूद का घर छोड़कर मीना के साथ जानकी कुटीर चली आयीं।

क़िस्सा-कोताह जानकी कुटीर वह जगह साबित हुई जहाँ मीना थोड़े दिन ही सही, मगर सही मायने में आज़ाद रहीं। ग़लत या सही जो भी फ़ैसले लिए, खुद लिए। शराब की आदत भी यहीं लत बनी और दोस्त यारों के जमघट भी यहीं लगे। देर रात तक ताश हो या हँसी,

ठहाके, सेट पर की बात हो या शराब का दौर। ख़ुद की बनायी, ख़ुद की कमायी, इस दुनिया में मीना ख़ुशी ढूँढ़ रही थीं। धर्मेन्द्र, मीना के लिए धरम हो गये थे।

धर्मेन्द्र शादीशुदा थे, यह बात उन्होंने कभी नहीं छिपायी। और तो और जहाँ तक हो सका, धर्मेन्द्र ने मीना को बेतहाशा शराबनोशी से रोका भी। कई-कई दफ़ा मीना की ज़िद और उनके दुख से दुखी होकर कमरे से रोते हुए बाहर आते और ख़ुर्शीद के पूछने पर बताते कि मैं सँभाल नहीं पा रहा।

धर्मेन्द्र की यही बातें मीना को भायीं। धरम में वो सब कुछ था जो वो चाहती थीं। ईमानदारी, हमख़याल, क़ाबिल-ए-एतिमाद और ख़ुश-शक्ल मर्द। सो, धीमे-धीमे ही सही, आशनाई बढ़ती रही।

फ़िल्म इंडस्ट्री का एक अक़ीदा है। ऐसा मान लिया जाता है कि साथ देखे जाने वाले लोग साथ-साथ होते हैं। इसीलिए फ़िल्मी पार्टियों में साथ शामिल होने वाले लोगों को ब-ज़ाहिर युगल बना दिया जाता है। बाज़दफ़ा यह बात सही भी होती है, बाज़दफ़ा ग़लत भी।

धर्मेन्द्र और मीना भी साथ-साथ पार्टियों में देखे जाने लगे अख़बारों, रिसालों ने अपने काम शुरू कर दिये। दिल्ली में हुई 'काजल' की पार्टी में धर्मेन्द्र और मीना हाथों में हाथ डाले देखे गये। धर्मेन्द्र की गुज़ारिश पर मीना ने मानीख़ेज़ शेर पढ़े। अख़बारों और रिसालों को कयासों का ज़ख़ीरा मिल गया। दिल्ली के उर्दू रिसाले और बम्बई की अंग्रेज़ी मैगज़ीन क़िस्से-कहानियों से भर गये।

धरम के साथ मीना का रिश्ता लम्बा होगा, ऐसे इमकानात मीना के भी नहीं थे। वह ऐसी इन्सान ही नहीं थीं जो किसी को बाँध कर रखें। उनके लिए आज अहम था। कल पर उनका बस न था, लिहाज़ा उस पर सोचना ही फ़िज़ूल था।

सच तो यह है कि मीना या फिर धरम ही, सोचकर भी कुछ ख़ास नहीं कर पाते। धर्मेन्द्र शादीशुदा थे। उनके दो बेटे और एक अदद बीवी थी। मीना को इस बात का इल्म भी था। धरम मीना से मुहब्बत तो करता था, लेकिन वह इस मुहब्बत के लिए अपनी शादी कुर्बान करने को तैयार नहीं था।

मगर आग थी, तो धुआँ फैलता ही और धुएँ से सबसे ज़्यादा बेचैनी आस-पास के लोगों को ही हुई। दीन-धरम सबसे पहले बीच में आया।

रिश्ते पर आँखें तिरछी होने लगीं। मगर जो बात इन सबसे ज़्यादा अहम थी, वो दूसरी थी।

मीना अपने करियर की ढलान पर थीं, मगर धर्मेन्द्र का कॅरियर तो अब बनना शुरू हुआ था। उनके किरदार अब तवज्जो पा रहे थे। वह अपने गाँव से इतनी दूर कुछ करने, कुछ कमाने, कुछ हासिल करने आये थे। मीना की आशनाई उनकी राह मुश्किल ही कर रही थी।

लिहाज़ा, मसलहत का तक़ाज़ा यही था कि दोनों लोग, खासकर धर्मेन्द्र खुद को मीना से दूर कर लें।

ऊपर हमने लिखा कि मीना समझती थीं कि उनका और धरम का मिलना नामुमकिन है, ठीक बात है, मगर आख़िर वह थी, तो इन्सान ही। वह अपनी सबसे प्यारी चीज़ पर अपना अख़्तियार चाहती थीं और इसी कारण कभी-कभी ज़िद कर बैठती थीं। मीना का मन धर्मेन्द्र पर एक लिहाज़ का हक़ रखता था। वह उसे खोना नहीं चाहती थीं।

इसलिए यह फ़ैसला भी धर्मेन्द्र को ही लेना था और फिर जो इस रिश्ते को बदा था, वही हुआ। धीरे-धीरे धर्मेन्द्र उनकी ज़ाती ज़िन्दगी से दूर और अपने फ़िल्मी करियर में मशगूल हो गये थे। पारिवारिक ज़िम्मेदारियाँ, भविष्य, शराबनोशी, दीन-धर्म के कारण एक अनाम रिश्ता न किसी नाम तक पहुँचा और न ही गुमनाम रह पाया।

आदमी झूठ का पुलिन्दा है, सो उसकी बात का क्या ऐतबार। कोई लिखत-पढ़त कोई रसीद-खाता तो रहा नहीं। जो रहा, उस पर ज़माने की त्योरियाँ हमेशा टेढ़ी ही रहीं। सो, यह सच्चाई भी वक़्त की गवाही पर ही ठहरी। और मेरी बात का भरोसा करें कि वक़्त जिस दिन कटघरे में खड़ा किया जायेगा, वह बिला शक यही बतायेगा कि धर्मेन्द्र के रहते भी मीना शराब पीती थीं, मगर यह आदत 1965 से 1968 के बीच जानलेवा हद पार कर गयी। ठीक उन दिनों जब धर्मेन्द्र साथ नहीं थे। ठीक उन दिनों, जब मीना हर आने वाले से यही कहती पायी जातीं—"देखो तो दरवाज़े पर दस्तक हुई है। वह आया है क्या?"

वे नहीं आये।

मगर शायद आये।

कार्टर रोड स्थित, लैंडमार्क बिल्डिंग के ग्यारहवें माले पर स्थित फ़्लैट संख्या-111। मीना कुमारी का आख़िरी मकाम, जहाँ अगर वह बिस्तर पर

पड़ी कराह नहीं रही होतीं तो रो रही होतीं, अपने चुने पत्थर निहार रही होतीं, दवाओं के जंजाल में उलझी होतीं या फिर लेटे हुए ही खिड़की के बाहर अँधेरे में दिखते सितारों को नाम दे रही होतीं। अँधेरा!

अँधेरे की हज़ार आँखें होती हैं और उन आँखों को साये पहचानने की परख होती है। उन्हीं आँखों ने देखा कि एक साया, जिसे इस घर का पत्ता-पत्ता बूटा-बूटा पहचनाता हो, जिसके लिए यहाँ के गर्द-ओ-ग़ुबार ने भी पलक-पाँवड़े बिछा कर इन्तज़ार किया हो, वही साया 31 दिसम्बर, 1971 की दरम्यानी रात में थोड़ा पहले आख़िरी दफ़ा कार्टर रोड, बान्द्रा स्थित लैंडमार्क बिल्डिंग के ग्यारहवें माले के फ़्लैट नम्बर-111 में दाख़िल हुआ। तरसी आँखें यूँ लगा, सदियों की मुन्तजिर थीं, दोनों ने थोड़ी ख़ामोशी, थोड़े आँसू और थोड़ी बीते दिनों की बातों को याद किया। दोनों ने बड़े प्यार से नये साल का आग़ाज़ किया। और फिर....

साये को उजाले में नुमायाँ हो जाने का डर होता है। डर, जो लाज़मी था। लिहाज़ा, साया जिस रास्ते आया था, उसी रास्ते लौट गया। मीना उस रात ख़ूब चैन की नींद सोयीं। नया साल आ गया था। नया साल जिसमें मीना को रहना ही नहीं था।

जो तू नहीं है तो फिर और क्या है दुनिया में
फ़रिश्तो आओ, बहुत देर हुई, ले के चलो

बक रहा हूँ जुनूं में क्या क्या कुछ।

मौत उस सरगम का नाम है, जिसकी कोई आवाज़ नहीं और जिसकी धुन पर थिरकना सबको लाज़िम है। मीना को तारीकी और तन्हाई से बेपनाह मुहब्बत थी। मीना कुमारी ने अपनी चालीस साला ज़िन्दगी का सफ़र ख़ामोशी से तय किया, बग़ैर किसी शिकवा। लम्बी ख़ामोशी से। इस लिहाज़ से उनकी ज़िन्दगी ही नहीं उनकी तफ़्सीली मौत भी उनके गीतों की तरह दर्द से लरजता हुआ एक ख़ूबसूरत नग़मा थी।

सरवत हुसैन कहते हैं—

मौत के फ़रिश्ते में एक कशिश तो है सरवत
लोग कुछ भी कहते हैं ख़ुदकुशी के बारे में।

मीना उन नायाब जींस में से एक थीं जिसने सारी ज़िन्दगी ख़ुदकुशी की ख़ूबसूरत ख़्वाहिश में ग़ुज़ारी। वह मरना नहीं चाहती थीं। जीना तो और भी नहीं। सब कुछ किया, जो वो चाहती थीं और फिर दफ़अतन

सबसे ऊब गयीं, सबकुछ छोड़ दिया। छोड़ चलीं। उन्होंने जान-बूझ कर तबाही का रास्ता चुना और चलती रहीं।

दुनिया उन्हें लूटती रही, वह लुटती रहीं। फ़िल्में उन पर पैसे की बारिश करती रहीं। लोग तजुर्बात करते रहे। मीना खिलौना बनी रहीं। मीना कुमारी ख़ामोशी से चालीस साल तक दुनियावी फन्दों में फँसी रहीं और गुम हो गयीं।

हाँ, उन्हें रोशनियों से नफ़रत थी। इन चमकती हुई रोशनियों ने उन्हें छत्तीस साला ज़िन्दगी के दर्द भरे सफ़र पर आमादा किया। एक ही भूल से 'पाकीज़ा' तक वे तिल-तिल तहलील होती रहीं। फ़िल्मों ने, जो उनकी ज़िन्दगी की पहली ग़लती थी, महज़बीन के लिए कभी न ख़त्म होने वाली अन्धी तलाश शुरू की जो कि आख़िरी ग़लती तक जारी रही। मीना फ़िल्मों की अन्धी दौड़ में अपने वजूद का, अपने ख़ानदान से अपनी मुहब्बतों का, अपनी ख़्वाहिशात का बोझ उठाये दौड़ती रहीं और आख़िरकार थक कर मर गयीं।

महज़बीन को इन टिमटिमाती रोशनियों ने मारा था और मीना को भीड़ में मौजूद हर दूसरे नकाबपोश ने मारा था। यह हुजूम उनका क़ातिल है और क्या अज़ाब है कि हुजूम को फाँसी नहीं दी जा सकती।

राजेन्द्र कुमार, नरगिस और अशोक कुमार बाज़दफ़ा उन्हें बताते थे कि वह यह शहर, यह मुल्क क्यों नहीं छोड़ देतीं? सिर्फ़ थोड़े वक़्त के लिए, क्यों न वह किसी गुमनाम से जज़ीरे पर जाकर सिर्फ़ अपने साथ वक़्त गुज़ारतीं? मीना नसीहत सुनकर हँस पड़तीं। कह नहीं पातीं, लेकिन उनके हँसने का मतलब यह होता कि लोग दीवाने हैं। मीना कुमारी किसी भी शहर या मुल्क को छोड़ देतीं तो क्या होता? उनकी रगों में मुहब्बत है। उनकी साँसों में भरोसा और उनकी तक़दीर में बेवफ़ाई। तो वो कौन-सा गोशा है जहाँ उन्हें ये सब नहीं मिलता। तमाम शहर, तमाम मुल्क एक ही के हैं, सबमें एक भीड़ है और तमाम शहरों के लोग, तमाम मालिकान के कई चेहरे हैं।

जब वे सबकी थीं, तब किसी की नहीं थीं और उनके जाने के बाद पूरी इंडस्ट्री आँसुओं में भीग गयी। तमीज़ कैसे की जाये कि कौन-से आँसू असली हैं और कौन-से आँसू नकली हैं, जबकि यह कोई ख़ुफ़िया बात नहीं कि पूरी फ़िल्म इंडस्ट्री ग्लिसरीन के आँसू बहाने में भी माहिर रही है।

मीना कुमारी वह समन्दर थीं जिसका एक किनारा तो था, मगर दूसरा किनारा दूर तक न था। साहिल के थपेड़े की तरह वे अपने दुख दुनिया को भेजेंगी और जालिम दुनिया इसमें अपनी ज़िल्लत भी शामिल कर लेगी और वही लहर उन्हें लौटा देंगी। वो ख़ुद अपनी ही लहरों में मर चुकी थीं। वे ब-ज़ाहिर मुस्तक़बिल को हर लम्हा आवारागर्दी में खोना चाहती थीं। ढेरों मोहब्बतों के बदले उसने तमाम रुस्वाइयाँ पायी थीं। जाने-अनजाने चेहरों के पीछे उसे सिर्फ़ नाक़ाबिल-ए-बर्दाश्त हँसी ही मिली थी, लेकिन इन सबके बावजूद वे इस दर्द को शराब में घोलकर पीती रहीं।

कहा जाता है कि पुराने ज़माने में आँखों को पढ़ने वाले फ़क़ीर हुआ करते थे। मीना के ज़माने में ऐसा कोई फ़क़ीर होता, तो यक़ीन करें कि पढ़ते-पढ़ते रो पड़ता। वह देखता तो पाता कि मीना के ख़्वाब थे, ख़्वाबों में शहज़ादा था। वो सोच रही थी कि जिस दिन उसके ख़्वाबों का शहज़ादा आयेगा, वो सारी रोशनियाँ बुझा देगी और अपनी तरह की रंगीन शमा को रोशन कर देगी। हर गोशे में ख़ुशबू फैलायेगी। ऐसा हुआ भी। लेकिन मीना को मालूम नहीं था कि ख़ुशबू की ज़िन्दगी मुख़्तसर होती है। फैलना और खो जाना ही उसका मुकद्दर होता है। ज़ाहिर है, जो ख़ुशी उसके हिस्से में ख़ुशबू जैसी आयी थी, उसे भी उड़ जाना था, खो जाना था। सो, दर्द मोम की तरह पिघल कर ठोस हो गया।

और मौत के दरवाज़े के बाहर घुटनों के बल बैठी मीना कुमारी की दुखी ज़िन्दगी मीना बर्दाश्त न कर सकी, एक लम्हे के लिए रुक कर भी अपनी पहचान बनाने की कोशिश नहीं की। वे हमेशा अपने आपको धोखा देती रहीं। उसने ख़ुद ही उसकी अन्दरूनी अक़ीदत का गला घोंट कर उसे मरने पर मजबूर कर दिया और फिर उसकी लाश को कन्धे पर उठा कर सारी ज़िन्दगी चलती रहीं। ज़िन्दगी के नंगे चौकों पर आवारा फिरती रहीं। वो ज़िन्दगी से भागीं और ज़िन्दगी उनके पीछे चल पड़ी। आख़िर इस दौड़ में ज़िन्दगी का पाँव फिसल गया और ये ख़ामोशी से अपने पीछे न ख़त्म होने वाली तन्हाई की ज़ंजीर छोड़ गयी।

पता नहीं क्यों कभी-कभी कोई जान-बूझकर खुले रिश्तों की गिरहें बाँधना चाहता है। कोई अँधेरे में बैठकर गिरहें खोलता रहता है, लेकिन मीना कुमारी को भी क्या मालूम था कि एक दिन सब कुछ ख़ुद ही बँध जायेगा।

मुसव्विर और मालिक में एक फ़र्क़ होता है। मुसव्विर अगर चाहे तो कैनवास पर नक़्श हुए अपने चित्र को मिटा सकता है, दोबारा बना सकता

है, मगर इन्सान के पास यह सहूलियत नहीं होती। वह मालिक के बनाये क़िस्मत रूपी नक़्शे पर जीने को मजबूर है। मीना कुमारी मुसव्विर नहीं थीं। उसने बस अपने ज़हन की दीवारों पर सिर्फ़ चन्द तस्वीरें लटकाने का जुर्म किया था। कुछ फ़िज़ूल तस्वीरें और फिर पता नहीं कैसे अचानक इन बेजान तस्वीरों में जान आ गयी और वे सब उसकी उम्र की खिड़कियाँ और दरवाज़े एक-एक करके बन्द करते हुए टिमटिमाती रोशनी में कहीं ग़ायब हो गयीं। दुनियावी परदे से वे लोग, वे चित्र ग़ायब जरूर हुए, मगर दिल पर उनके नक़्शे, दिल की वीरान दीवारों पर हमेशा मौजूद रहे।

उसने कभी किसी से शिकायत नहीं की। उसने ख़ुद ही दूर खड़े होकर अपनी ज़िन्दगी का तमाशा देखा और आख़िरकार अपनी ज़िन्दगी ख़त्म की। उनकी ज़िन्दगी उस रस्सी पर चलती उस बच्ची की तरह थी, जिसकी क़िस्मत हमेशा ग़ैर-यक़ीनी होती है। यही कारण था कि बाद के दिनों में अपना रवैया और खुशगवार ज़िन्दगी के ख़्वाब भी उन्हें ख़ुद भी नाक़ाबिल-ए-यक़ीन लगने लगे थे। वरना वह कभी यह न कहतीं—

ज़िन्दगी का सफ़र किस दिन मुख़्तसर हो जाये, यह आदमी नहीं जानता। ऐसे ही एक दिन मीना ने भी जाना कि अब उनके पास वक़्त कम है। अचानक उनकी सिसकियाँ उठीं और दम घोंटने वाली सिसकियाँ उनकी हड्डियों में घुसने लगीं। थोड़ी देर के लिए उसने ख़ुद को अपनी चालीस साला तवील ज़िन्दगी के वीरान ट्रैक से पटरी से उतरते पाया।

हर किसी की पसन्द और ग़म अलग-अलग होते हैं, लेकिन जहाँ एक ही नुक़्ता-ए-नज़र के दो लोग अनजाने में एक-दूसरे के क़रीब आ जायें, तो इश्क़ नहीं करने वाले समझ ही नहीं पायेंगे कि क्या होता है। दिमाग़ में रेत का एक अजीब-सा तूफ़ान उठता है। माटी जगह-जगह से चटखने लगती है और हर दरार से दर्द और दर्द ही टपकने लगता है, फिर अजनबी और मौक़ापरास्त साथ आये लोग अपनी घटिया और परदादार मुस्कराहटों से उन दरारों को पाटने की नाकाम कोशिश करते हैं। कभी-कभी यह काम अक़्ल ख़ुद भी करती है।

मीना कुमारी भी 'महज़बीन' और 'पाकीज़ा' के दरमियान फ़ासलों को भीड़ भरी मुस्कुराहटों से पार करने की नाकाम कोशिश करती रहीं, लेकिन इसके साथ कुछ दूर आने वाले हर शख़्स ने मीना कुमारी की इस रूह को छीन लिया और मीना की ज़िन्दगी रस्सी पर चलने वाले उस बच्ची की तरह हो गयी, जिसे इश्क रूपी लाठी का सहारा जीवन सन्तुलन

के लिए भी लेना पड़ा। मीना कुमारी की ज़िन्दगी के बीचोंबीच कई दर्द और उम्मीदें बिखर गयीं।

कभी-कभी वापसी का सारा रास्ता बेतरतीब चौराहों में तब्दील हो जाता है और ऐसा लगने लगता है जैसे हम ज़िन्दगी के किनारे पर हैं। इन बन्द चौराहों में आपका दम घुट जायेगा, आख़िर मीना को भी इन्हीं चौराहों ने लील लिया।

मौत का फ़रिश्ता दिन-ब-दिन पास आने लगा था। उनकी ग़ज़लों में डूबी दर्द भरी आवाज़ भर्राने लगी थी। उनकी उम्र ग़ज़ल के आख़िरी शेर को पहुँच चुकी थी। इसकी साँसें उखड़ रही थीं, उसके ख़्वाब उसकी मौजूदगी में मुरझा चुके थे और वे पथरीली आँखों से अपने ख़्वाबों की लाशों को देखने के सिवा कुछ नहीं कर सकती थीं और उसकी सिसकियाँ सुनने वाला भी अस्पताल की चहारदीवारी के अलावा कोई नहीं था।

आख़िरकार उन्होंने फ़ैसला कर लिया था कि अब वो मौत के सिवा किसी के आने का इन्तिज़ार नहीं करेंगी। उन्हें इस फ़ानी दुनिया के लोग रास ही नहीं आये। उनसे बेहतर वो पत्थर थे जिन्हें वह तमाम उम्र चुनती रहीं और जिन्हें उनके जाने के उनकी बहन ख़ुर्शीद ने उनकी क़ब्र पर जड़वा दिये। कौन जाने पत्थर अब वहाँ हैं भी या फिर कोई शैदाई उन्हें भी बतौर यादगार ले गया।

उन्हें ताजमहल से शदीद मुहब्बत थी। वे अक्सर तन्हा बैठ कर ताजमहल बनवाती थीं। उन्होंने अपने घर के रोशनदानों में ताजमहल बनाया था। उन्होंने सीप की तरह अपनी खुली हथेली पर ताजमहल बनाया था और वे बड़ी शिद्दत से महसूस करती थीं कि उनका सारा जिस्म ताजमहल बन रहा है।

उन्हें बिल्लियों से ख़ौफ़ था और बेहद ख़ौफ़! उनसे कुछ काम निकलवाना हो तो बस कान में कह दें—माह बी! बिल्ली! काम हो जायेगा। वह महसूस कर रही हैं कि उनके आस-पास बिल्लियों का हुजूम है। वह आँख बन्द कर लेती हैं। कहती हैं जो मर्ज़ी ले जाओ, जो चाहिए लूट लो, मगर जाओ, चली जाओ।

उन्हें पत्थरों से इश्क़ था। समन्दरों, एलिफ़ेंटा की गुफाओं, सहराओं, वीरानों में घूमते हुए वह पत्थर चुनती जातीं और उनके नाम रखती जातीं। नाम याद करते हुए उन्होंने महसूस किया कि उन्होंने इन्सान भी पत्थरों जैसे ही चुने थे—बेहिस, बेदिल, बेमुरव्वत।

वह पाबन्दियों की पाबन्द थीं। बचपन से ही वह किसी चाबी दी हुई गुड़िया की तरह पाबन्दियों की इतनी आदी हो गयी थीं कि अब वही उनकी पहचान थी। इतनी अभ्यस्त कि बम्बई की जानलेवा बारिश में भी सेट पर अकेली पहुँचकर महसूस करती थीं कि वह पहुँच गयी। क्या कोई और भी आया है?

उन्हें किताबों का जुनून था। उनकी ज़्यादातर दोस्ती भी पढ़ने-लिखने वालों से होती थी। पत्रकार, रेडियो अनाउंसर, शायर, अदीब और लेखक इनसे नज़दीकी उन्हें भली लगती थी। उर्दू रिसालों की दुकान में किताबें ख़रीदते वक़्त वह दुकानदार से कहकर दुकान का शटर गिरवा देतीं। उन्हें देर तक किताबें चुनना पसन्द था। भागते छूटते लम्हे ने उन्हे बताया कि उन्हें रिश्ते भी किताबी ही मिले।

उन्हें मौत से इश्क़ था। वह उससे मिलने के बहाने ढूँढ़ती रहती थीं। लाख वह ख़ुद कहें कि वह मरना नहीं चाहतीं। उनका आख़िरी सच यही था कि इस दुनियावी फ़रेबों से निजात उन्हें उस आख़िरी सहरे में ही मिलेगी, जिसे 'मौत' कहते हैं। वह उसी के इश्क़ में थीं और उससे ही मिलने को तमाम उम्र तरह-तरह के बहाने चुनती रही थीं। ऐसा न होता तो कोई क्यों लिखता–

ये नूर कैसा है
रात का-सा रंग पहने
बर्फ़ की लाश है
रुस्वाई का कफ़न पहने
हर एक क़तरा मुक़द्दस है मेरे आँसू का
हर एक मोड़ पर बस दो ही नाम मिलते हैं
मौत कह लो
जो मुहब्बत न कहने पाओ

–मीना कुमारी

मीना पस-ए-आईना

अदाकारा मीना के क़द को जाँचना, उस पर तनकीद या तस्दीक करना, न किसी फ़िल्मी आलिम फ़ाज़िलों के बस की बात है और न ही किसी तारीख़दान की ही कुव्वत होगी कि वह इस पर कोई राय रख सके, फिर मेरी तो कोई बिसात ही क्या है?

मगर एक बात जो कहना चाहूँगा, वह यह है कि मैं उनकी अदाकारी का, उनके व्यक्तित्व का, उनकी फ़िल्मों का, उनकी जीवनशैली का, उनकी आवाज़ का, उनकी चुप्पी का शैदाई रहा हूँ, सो बस इसी लिहाज़ से उनकी फ़िल्मों पर कुछ कहने की जुर्रत पेशगी माफ़ी के साथ कर रहा हूँ।

किरदार चाहे वह आज का हो, एक सदी पहले का हो या कल का, उसे अपने अन्दर समेटना होता है, अदाकारी के फ़न को बुलन्दियों तक पहुँचाना होता है। इस ख़्वाब में कुछ था, जिसे दुनिया मीना कुमारी के नाम से जानती है, को याद करते ही लम्हे भर में कई तस्वीरें घूम जाती हैं। 'साहिब, बीबी और ग़ुलाम' की छोटी बहूरानी की भूतनाथ से सिर्फ़ एक ही गुज़ारिश थी कि "जब मैं मर जाऊँ तो इतना सजाना, उतना सजाना, ज़ेवरात से भर देना, ताकि लोग कहें कि सती सतवन्ती चली गयी।"

'शारदा' की मजबूर और बदक़िस्मत हिन्दुस्तानी ख़ातून जिसे हालात ने अपने आशिक़ की माँ बनने पर मजबूर कर दिया, वह बिलख-बिलखकर रो रही है। वह आशिक़ को समझाती है और जब उसका आशिक़ उसके शौहर पर लानत भेजता है, तो वह उनकी मुक़द्दस मुहब्बत को मजरूह करने की हिन्दुस्तानी रवायात पर अमल करने को मजबूर हो जाती है। चीख़-चीख़कर आँसुओं के सैलाब में बस एक ही बात कहती है—

"देखो, मेरे सुहाग को कुछ न कहो, तुम्हें मेरी क़सम, मेरे सुहाग को गाली न दो। मैं नहीं सुन सकती। मैं मर जाऊँगी।"

'दिल अपना और प्रीत परायी' में जब वही बेपनाह ख़ूबसूरत करुणा अपना दिल डॉक्टर को देती हैं तो बदन का रोम-रोम मिलने को चिल्लाता है लेकिन वो एक नर्स की तरह ग़मज़दा है, काँटे में अटकी हुई ज़र्द मछली, अँधेरी रातों में अपनी गोद में हिचकियों के साथ रोती हैं, लेकिन दुनिया नहीं जानती। 'दिल अपना और प्रीत परायी' की करुणा चालीस सेकेंड से लेकर एक मिनट तक के दृश्य में, जब तक उनके चेहरे पर कैमरा लगा रहता है, अपनी पलकें एक दफ़ा भी नहीं झपकातीं। हिदायतकार किशोर साहू सिर्फ़ ये कहते हैं कि करुणा, इस कदर परेशानी में मुबतला है कि ग़म उसकी आँखों से चमकना चाहिए। मीना इस उदासी को इस तरह जज़्ब करती हैं कि देखने वाला अपनी आँखों से कहानी को आगे बढ़ाता है।

एक और मंज़र में, जब करुणा देखती है कि मायूसी के लम्हात में नायक राजकुमार ने काग़ज़ पर मीना कुमारी का नाम 'करुणा' कई दफ़ा उकेरकर रखा है, तो वह घबरा जाती है। करुणा के घबराहट में काग़ज़ उठाने और फिर उस काग़ज़ को टुकड़े-टुकड़े कर देने का मंज़र अदाकारा मीना कुमारी को वह मकाम बख़्श देता है, जो किसी भी सिनेमाई किताब में पढ़ाई-सिखाई नहीं जा सकती।

दायरा की वह तपेदिक से मुतअस्सिर लड़की सफ़ेद फूलों की झाड़ी के नीचे बिस्तर पर लेटी, उम्मीद और मायूसी के समुद्र में अपनी ज़िन्दगी के दिन गुज़ारती है और मन्दिर से उठती सदा को अपनी ख़ामोश उम्मीदों में जोड़ती है—"देवता तुम मेरा सहारा, मैंने थामा है दामन तुम्हारा।"

'बैजू बावरा' नायिका के रूप में उनकी शुरुआती व्यावसायिक रूप से सफल फ़िल्मों में से एक गिनी जाती है और इस फ़िल्म ने उन्हें टॉप हीरोइनों में से एक बना दिया। कहानी के अनुसार 'बैजू तो बावरा' ही था। एक था और इसी कारण सारी दुनिया के सामने, वह उफनती नदी में हिलोरें लेती नाव में बैठी गाँव की अल्हड़ गोरी को अपने प्रेम की सौगन्ध देकर अपने गुरु हरदास की शरण लेता है। संगीत लहरी बज निकलती है—'तू गंगा की मौज मैं जमना की धारा' और वह नैया दुनिया वालों के सामने साहिल की ओर चलने लगती है। फिर गाँव की लड़की क्या करे? हाय राम पूरा गाँव खड़ा है। सब जानते हैं कि बैजू किसके बारे में बात कर रहे हैं? मुहब्बत के बेपर्दा होने का अहसास। समाज में बदनामी

का डर और साथ ही साथ इश्क़ के आग़ाज़ की ख़ुशी भी। यह दृश्य कैसे फ़िल्माया जाये, यह परेशानी निर्देशक की नहीं थी, मीना की थी। उन्होंने दोनों हाथों से पतवार छोड़ मुँह ढँक लिया। नाव लहरों के हवाले हो गयी, यही तस्दीक करती हुई कि राधा का जीवन भी बैजू के हवाले हुआ। एक लाजवाब मंज़र जिसे इतनी छोटी उम्र में ही इतनी आसानी से उन्होंने जीवन्त कर दिया।

रोना और रुला देना मीना के लिए बायें हाथ का खेल था। 'सहारा' में मीना ने इसी बात को उकेरकर रख दिया है कि उनके जीते जी ही क्यों उन्हें ट्रेजेडी क्वीन के ख़िताब से नवाज़ा गया। 'सहारा' देखते हुए एक जवान ख़ूबसूरत, पर अन्धी औरत का रूप बार-बार कौंध जाता है। शायद ही कोई ऐसा अदाकार रहा हो, जिसने एक अँधी ज़िन्दगी को बिना किसी बेज़ारी के यूँ परदे पर उतार कर रख दिया हो, जो मीना ने जिया और फिर त्याग और बलिदान के चरित्र को इतनी सच्चाई से आत्मसात् कर लिया।

1957-58 के वक़्त डायरेक्टर लेखराज बाहरी प्रोड्यूसर कुलदीप सहगल के पास एक शानदार कहानी लेकर आये। कहानी यह थी कि बलराज साहनी और पंढरी बाई एक ख़ुशहाल, लेकिन बेऔलाद जोड़े थे। पंढरी बाई अपने शौहर को बच्चे की ख़ातिर दोबारा शादी करने की इजाज़त देती है। दूसरी बीवी का बाप पैसे के लिए अपनी बेटी को बेच देता है और फिर यह दूसरी औरत की जद्दोजहद की कहानी थी।

कहानी मज़बूत थी, लेकिन इसके साथ दो मसले थे। पहला यह कि 1955 में इंडियन मैरिज एक्ट लागू हुआ, जिसके मुताबिक़ अगर पहली बीवी ज़िन्दा हो तो उसे तलाक़ दिये, बग़ैर दूसरी शादी ग़ैर-क़ानूनी और क़ाबिल-ए-सज़ा भी है। समाज बदल रहा था और कोई भी प्रसिद्ध हीरोइन बदलते हुए समाज के मुताबिक़ यह किरदार करने को तैयार नहीं थी।

दूसरा मसला यह था कि हिदायतकार लेखराज बाहरी को कोई दूसरी हीरोइन भी नहीं चाहिए थी। उन्होंने इस किरदार में मीना कुमारी के बारे में सोचा था, लेकिन दूसरी बीवी के किरदार को सुनने में हिचकिचाहट महसूस की। मीना जी ने जब यह किरदार सुना तो फ़ौरन 'हाँ' कह दिया। वजह इस किरदार को दूसरी बीवी नुक़्ता-ए-नज़र से नहीं, बल्कि एक माँ की नुक़्ता-ए-नज़र से देखा, जिससे उसके बिछड़े हुए दुधमुँहे बच्चे को

क़ानूनन छीन लिया जाता है। पागलपन, ग़ुस्सा, ख़त और फिर अपने बच्चे को गोद में लिये भागने का क्लाइमेक्स दृश्य, जिसे उन्होंने आसानी से निभाया है, वह फ़िल्म स्कूलों में पढ़ाई दिखाई जानी चाहिए और फिर वह संवाद अदायगी, जहाँ वे जज से टकराती हैं और कहती हैं, यह इन्साफ नहीं, जुल्म है, जुल्म है, जुल्म है।

1959 श्याम महेश्वरी की फ़िल्म 'अर्धांगिनी' दरअसल मीना कुमारी के लिए टेलरमेड फ़िल्म थी। एक कमनसीब लड़की की कहानी, जिसे समाज मनहूस कहकर दुत्कारता रहता है। इसी वजह से इसकी शादी में भी ख़लल पड़ता है। छाया के किरदार में मीना कुमारी ने 'अर्द्धांगिनी' के शुरुआती दृश्यों में यह साबित किया है कि वह कॉमिक दृश्यों में भी उतनी ही सहज हैं। कहानी पूरी तरह बोझिल न हो, लिहाज़ा 'मनहूस लड़की' जैसे ताने सुनते हुए भी जिस सहजता से मीना ने छाया के किरदार को जिया है, वह क़ाबिल-ए-ग़ौर है। ग़फ़लत में मारे गये राजकुमार के थप्पड़ वाले सीन को भी दर्शक देर तक याद रखते हैं।

1959 में ही जब ख़्वाजा अहमद अब्बास ने अपनी कहानी 'चार दिल चार राहें' पर फ़िल्म बनायी, तो उन्हें चावली चमारिन के किरदार के लिए मीना कुमारी से मौजू कोई अदाकारा नज़र नहीं आयी। पूरी फ़िल्म में अपने चेहरे पर गहरे रंग का मेकअप किये और अपनी बोली में राजस्थानी तब्दीलियाँ करते हुए मीना कुमारी न सिर्फ़ चावली चमारिन नज़र आयीं, बल्कि इंडस्ट्री के उस मेयार को भी चुनौती दी, जहाँ कामशुदा हीरोइनें साँवली दिखने से परहेज़ करती हैं और फिर पूरी फ़िल्म की उपयोगिता केवल एक संवाद से पूरी कर देती हैं। देश बदलने की बात करने और जल्द ही सोशलिस्ट राज की स्थापना की बात करते एक सोशलिस्ट से चावली पूछती है—

''बाबू! क्या तुम्हारे इस सोशलिज़्म में एक अहीर का बेटा एक चमार की लड़की से ब्याह कर सकेगा?''

'परिणीता' में मीना ने हिन्दुस्तानी औरत के अपने महबूब की ओर ख़ुद सुपुर्दगी के अहसास को बेहद गहराई दी। वहीं फ़ुटपाथ में स्कूल की एक भोली-भाली मास्टरनी थीं, जो समाज की सड़न और घुटन में अपनी बेबसी को इश्तहार नहीं बनने देती।

'एक ही रास्ता' में यह टूटे दिल की मालकिन चाहकर भी अपनी पिछली ज़िन्दगी को न भुला पाने के कारण उसके ज़ख़्मों को ढोती, कुरेदती हुई दिखती हैं। यह आम फ़हम जज़्बात मीना जी इतनी आसानी से जीती हैं, जिससे औरतों को उनका फ़िल्मी दुख भी अपना भोगा हुआ दुख लगता है।

तमाम उम्र ऐसी ही उदास, सतायी हुई, त्रासदी की मारी भूमिकाएँ करते हुए यह कड़ी 'पाकीज़ा' तक पहुँची। साल का लम्बा अरसा। गुमसुम निहारती अल्हड़, सिरफिरी महज़बीं का संगम हुआ एक निराश, ग़म में डूबी, दुखों में सुख पाती एक बुत से, जो बहुत मायनों में वही मीना थीं जिनसे वह ग़मगीनी को बख़ूबी परदे पर उतारा करती। लेकिन इससे पेशतर, दुख की गठरी को उस ख़ूबसूरत बदन के किसी कोने में छिपाये वह 'छोटी बहू', 'मझली दीदी', 'काजल', 'मैं भी लड़की हूँ', 'बहू बेगम' और 'दिल एक मन्दिर' के किरदारों को भी निभाती रहीं। शायद यहीं कहीं से उनकी ज़िन्दगी की शाम उतरना शुरू हो गयी। पेड़ों पर अक्स उठने लगे और महजबीन के अन्दर कहीं नाम का अहसास गहराने लगा।

ऐसा नहीं है कि महजबीन ने ज़िन्दगी को हँसते हुए नहीं देखा। उनकी ज़िन्दगी में एक वक़्त ऐसा भी आया जब उन्होंने परदे पर मुख़्तलिफ़ किरदार जिये। 'आज़ाद' की चुलबुली लड़की से लेकर 'यहूदी' की शरारती परफ़ॉर्मेंस तक मीना ने कई ऐसी भूमिकाएँ कीं, जिन्हें मीना के प्रशसंक पलकों पर रखते हैं। 'कोहिनूर' और 'बन्दिश' महजबीन को जानने वाले 'मेम साहब' यदि देखें तो कितना फ़र्क़ नज़र आयेगा। कहाँ 'छोटी माँ', 'माँ और ममता' की दर्द को आँचल में छिपाये मीना दिखाई देती हैं और कहाँ 'मेम साहब' की पतलून पहने और काला चश्मा लगाया वह शोख़ लड़की। 'किनारे-किनारे' जैसी फ़िल्मों में उसके प्यार ने अँगड़ाइयाँ लीं और 'अलादीन का जादुई चिराग़' में वह बसरे की हूर बनी। 'मिस मेरी' में एक लड़ाका, शोख़ और खुद्दार लड़की का रोल अदा करने के साथ 'चाँदनी चौक' और 'बहू बेगम' में उसने मुस्लिम सभ्यता की एक जीवन्त झाँकी पेश की।

'बच्चों का खेल उनकी पहली फ़िल्म थी, जिसमें वे पहली बार बतौर हीरोइन आयी थीं। फिर फ़िल्मों की क़तार लग गयी। महज़ तेज़ रफ़्तार से ज़िन्दगी के चौराहों से गुज़रा वो दौर भी था, जब महजबीन मजहबी

फ़िल्मों में बतौर हीरोइन आया करती थीं। वे 'लक्ष्मीनारायण' में लक्ष्मी बन गयीं। 'माखनचोर' में वे राधा के रूप में आयीं। उन्होंने 'हनुमान पाताल विजय' में सीता का किरदार बहुत अच्छे तरीक़े से निभाया, और फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा।

एक दुखियारी, सहनशील और त्याग की मूर्ति की हिन्दुस्तानी औरत के इमेज के इर्द-गिर्द घूमते हुए भी मीना का हर किरदार मुख़्तलिफ़ था। उनके एक किरदार में दूसरे की परछाईं नहीं मिलती। अपनी अदाकारी की सलाहियत से मीना कुमारी ने अपने हर नये किरदार को नया रूप दिया। 'परिणीता', 'शारदा', 'चिराग़ कहाँ, रोशनी कहाँ', 'दिल अपना और प्रीत परायी', 'दायरा', 'प्यार का सागर', 'काजल', 'आरती', 'एक ही रास्ता', 'साहिब बीबी और गुलाम' मीना कुमारी का हर किरदार अपने अन्दाज़ में मुख़्तलिफ़ था।

कत्थक सम्राज्ञी सितारा देवी ने एक-बार विविध भारती के 'जयमाला' प्रोग्राम में कहा था—"'पाकीज़ा' की भूमिका नृत्य प्रधान थी और मीना के पास नृत्यकला का पूर्णतया अभाव था, मगर ऐसी हालत में भी मीना ने अपनी अदाकारी के बलबूते पाकीज़ा को इस तरह पेश किया कि ये कमी कहीं नज़र नहीं आती।"

मीना कुमारी से पहले के वक़्त में नायिकाओं के वर्चस्व की कोई नयी बात नहीं की। सुरैया, नरगिस, शोभना समर्थ ने वह वक़्त गुज़ारा है जब फ़िल्में महिला प्रधान ही होती थीं, लेकिन पचास के दशक के बाद नायकों के इमेज के मद्‌देनज़र फ़िल्मों की पटकथा लिखी गयीं। उसकी वजह से हीरोइन को नज़र अन्दाज़ किया जाने लगा। ऐसे में भी मीना कुमारी ने हीरोइन के तौर पर अपनी शिनाख़्त बनायी और इस तरह कि हीरो के इस दौर में भी मीना कुमारी के लिए फ़िल्में लिखी गयीं। वे कभी भी हीरो की तकमील के लिए सिर्फ़ एक गुड़िया नहीं थीं। 'आज़ाद' और 'कोहिनूर' इसका सबूत हैं। अकेले उनके नाम पर कई फ़िल्में फरोख़्त हुईं। 'दिल अपना और प्रीत परायी' तक राजकुमार के बतौर हीरो या अदाकार की जगह बननी बाक़ी थी, लिहाज़ा, यह फ़िल्म भी मीना कुमारी के नाम पर बिकी। देव और राज को सुरैया तथा नरगिस का सहारा मिला था। धर्मेन्द्र, प्रदीप कुमार जैसे नायकों को मीना कुमारी नामक दरख़्त की ज़रूरत पड़ी।

एक दृष्टि डालिये मीना की फ़िल्मों पर। वह दिलीप के साथ 'आज़ाद', 'यहूदी' और 'कोहिनूर' में आयीं। राज कपूर के साथ उन्होंने 'शारदा' और 'चार दिल चार राहें' में अभिनय किया। राजेन्द्र कुमार के साथ वे 'चिराग़ कहाँ रोशनी कहाँ', 'दिल एक मन्दिर' तथा 'प्यार का सागर' में आयीं। 'पूर्णिमा' और 'चन्दन का पलना' में धर्मेन्द्र हीरो रहे। 'दिल अपना और प्रीत परायी' और 'काजल' में राजकुमार ने उनके साथ अभिनय किया। सुनील दत्त के साथ वह 'एक ही रास्ता' में आयीं तो प्रदीप कुमार के साथ 'अदले जहाँगीर', 'आरती' तथा 'बन्धन' में। 'चाँदनी चौक' में शेखर ने काम किया। 'मधु' में करण दीवान तो 'अर्द्धांगिनी' में बलराज साहनी नायक रहे। अशोक कुमार के साथ वह 'परिणीता', 'बन्दिश', 'सवेरा' तथा 'बहू बेगम' में आयीं, और तो और, उन्होंने शशि कपूर के साथ 'बेनज़ीर' में अभिनय किया। गुरुदत्त के साथ उन्होंने 'साहब बीबी और गुलाम' तथा 'साँझ सवेरा' में अभिनय किया। देव आनन्द के साथ 'किनारे-किनारे' में आयीं। इनके अतिरिक्त मीना ने और भी कितनी फ़िल्मों में कार्य किया। 'इल्ज़ाम', 'दाना पानी', 'शरारत', 'मेम साहब', 'मिस मैरी', 'मैं चुप रहूँगी', 'मैं भी लड़की हूँ' जैसी फ़िल्मों ने उनके लिए नये मुकाम स्थापित किये।

मीना की लोकप्रियता के लिए आम दर्शक उसके चेहरे को ही सबसे बड़ा आकर्षक समझते रहे, किन्तु यह सत्य नहीं। मात्र चेहरे से ही वह आकर्षक हों, ऐसी बात नहीं। फ़िल्मोद्योग में आकर्षक लड़कियों की कमी नहीं, पर हर सुन्दर लड़की अच्छी अभिनेत्री नहीं बन सकती। सुन्दरता, सादगी और उच्चकोटि के अभिनय के गुण उनमें थे। वैसे भी उनमें कलाकार का एक संवेदनशील दिल था जो विभिन्न चरित्रों को आत्मसात् कर स्वाभाविक भाव-भंगिमाओं को अभिव्यक्त करने में चेहरे की मदद करता था। दुखान्त व पारिवारिक भूमिकाएँ अदा करने में उन्हें विशेष दक्षता हासिल थी। पर ऐसा नहीं कि चंचल और शरारती किरदारों में मीना कम खपती हों। 'दायरा', 'शरारत', 'शारदा' इसके ज्वलन्त उदाहरण है। ग्लैमर गर्ल के रूप में वह 'मेम साहब' में दिखीं, और बाकमाल दिखीं।

यूँ नहीं था कि बाद के दिनों में उन्हें फ़िल्म इंडस्ट्री में हो रहे परिवर्तनों का पता नहीं था। वह ख़ूब समझती थीं कि वक़्त अब नये लोगों का है, इसलिए उन्होंने कहा भी था–

'नये-पुराने सभी को मिलकर फ़िल्म-इंडस्ट्री की ख़िदमत करनी चाहिए, पर हम इस दौड़ में नहीं रह सकते।" मीना के कहने का तात्पर्य यह था कि जिस तरह ये नयी तारिकाएँ निस्संकोच अंग-प्रदर्शन और चुम्बन देने को तैयार हो जाती हैं, वह उन जैसी पुरानी अभिनेत्रियों के लिए सम्भव नहीं। और यह सही भी था। उन्होंने जितना काम किया, अपनी नजरों में बने रहने वाला काम किया, मगर वक़्त किसी के लिए न रुकता है, न टिकता है और न ही किसी की बादशाहत क़ुबूल करता है। इस लिहाज़ से वक़्त खुद ही बादशाह है।

वक़्त बदला तो यह फ़िल्मों में भी बदलाव लेकर आया। नयी कहानियाँ नये किरदार माँगने लगीं। पश्चिम का प्रभाव फ़िल्मों पर जब पड़ा तो मीना जैसी नायिका अचानक ही वक़्त से पीछे दिखने लगीं। फिर भी 'बैजू बावरा' से आरम्भ हुए नायिका के इस महत्त्व को मीना कुमारी ने 'बहू बेगम', 'बहारों की मंज़िल' तक बनाये रखा, लेकिन बीमारी के आख़िरी वक्त में लंदन से वापस आने के बाद उन्होंने महसूस किया कि अपने वक़्त के कलाकारों की तरह ही चरित्र किरदारों की तरफ़ बढ़ने का यह सही वक़्त है। 'जवाब', 'दुश्मन', 'मेरे अपने' आदि को देखकर ऐसा लगा कि जिस तरह अशोक कुमार, प्रदीप कुमार, भारत भूषण जैसे अदाकार चरित्र भूमिकाओं की तरफ़ मुड़ गये हैं, उसी तरह मीना ने भी खुद को वक़्त के अनुसार ढाल लिया है। थोड़ा यक़ीन करके सोचूँ तो कहूँगा कि अगर आज मीना होती तो ऐसी फ़िल्में ज़रूर बनतीं, जिनमें कहानियाँ किरदार, अदाकारों के इर्द-गिर्द लिखी जातीं, लेकिन ऐसा न हो सका क्योंकि मीना की क़िस्मत में बुढ़ापा नहीं लिखा था। वे चिरयौवना थीं, वही रहीं और उसी तरह आख़िरी दम तक ख़ूबसूरत दिखते हुए ही शहर-ए-ख़ामोश को चली गयीं, अपने जमा किये हुए पत्थरों के बीच मिट्टी होने, जहाँ इस मतलबी दुनिया के पत्थर सरीखे लोग उनकी नींद में ख़लल नहीं डालेंगे और जहाँ उन्हें सोने के लिए किसी शराब का सहारा नहीं लेना पड़ेगा।

स्व. बिमल रॉय का ऑफ़िस मोहन स्टूडियो में था। अचानक मीना कुमारी की आया वहाँ पहुँची और असित सेन से कहा कि उसे मीना जी ने कमाल स्टूडियो में बुलाया है। मीना कुमारी और असित सेन के आपसी सम्बन्ध बड़े अच्छे थे क्योंकि मीना कुमारी बिमल रॉय की 'परिणीता' में

नायिका की भूमिका निभा चुकी थीं और वह भूमिका दिलवाने में असित सेन ने ही सहायता की थी।

असित सेन कमाल स्टूडियो पहुँचा। उस समय मीना कुमारी एक कुर्सी पर आराम कर रही थीं। मीना कुमारी ने असित सेन से कहा–

''बिमल दा 'देवदास' बना रहे हैं ना?''

''जी हाँ!'' असित सेन ने उत्तर दिया।

''उसमें पार्वती की भूमिका कौन निभा रही है?'' मीना कुमारी ने जिज्ञासा से पूछा।

''आज ही गीता बाली को इसके लिए बुलाया गया है।'' असित सेन ने उत्तर दिया।

''मेरे होते हुए गीता बाली को क्यों बुलवाया है?'' मीना कुमारी ने कहा– 'देखिए, मैं कहे देती हूँ कि पार्वती की भूमिका मैं ही करूँगी।'

''हमारे दिल में भी उस रोल के लिए आप अधिक जँचती हैं, लेकिन हम उसके लिए आपको ज़्यादा पैसे नहीं दे सकते और न ही आपके नख़रे सहन कर सकते हैं।'' असित सेन ने यूनिट वालों की कठिनाई मीना को बतायी।

''मैं आप लोगों से क्या नख़रे करती हूँ?'' मीना कुमारी ने ज़रा ख़फा होकर कहा।

''नहीं-नहीं, ऐसी बात नहीं।'' असित सेन ने घबराकर कहा, ''बात दरअसल यह है कि आप हमारी बात नहीं समझीं।''

मीना कुमारी ने असित सेन की बात समझते हुए कहा–''देखो मैं अपनी ओर से इस बात का आश्वासन देती हूँ कि मेरी और आपकी फ़िल्म में कोई कठिनाई या अड़चन पैदा नहीं होगी। आप एक बार बिमल दा और कमाल साहब की मुलाक़ात करा दीजिए। बाकी सारी बातें मैं सँभाल लूँगी।''

असित सेन ने स्वयं बिमल राय और कमाल अमरोही की मुलाक़ात का प्रबन्ध किया और लगभग सारी बातें तय हो गयीं और 'देवदास' के निर्माण में मीना आ गयीं, जिससे सबको बड़ी ख़ुशी हुई। लेकिन फ़िल्म के सेट पर जाने से पूर्व एक नाटकीय घटना घटी। एक दिन बिमल रॉय के ऑफ़िस में कमाल अमरोही के सचिव ने बिमल राय से आकर कहा– ''देखिए, कॉन्ट्रेक्ट-वॉन्ट्रेक्ट की बात तो ठीक है, लेकिन मीना कुमारी

हमारी दो शर्तों पर फ़िल्म में काम करेंगी। एक यह कि हमारी आर्टिस्ट आउटडोर शूटिंग में कहीं नहीं जायेगी और दूसरी शर्त यह है कि मीना कुमारी के शरीर को कोई स्पर्श नहीं करेगा।'' विमल राय अचानक ये शर्तें सुनकर स्तब्ध रह गये। उन्होंने कहा—''देखिए, मेरी फ़िल्म की शूटिंग मुम्बई में ही आरे कॉलोनी के आसपास होगी। इसलिए आपकी पहली शर्त तो अपने आप ख़त्म हो गयी, लेकिन जहाँ तक दूसरी शर्त की बात है, मैं इस पर ग़ौर करने के बाद जवाब दूँगा, क्योंकि फ़िल्म मुझे बनानी है और इस उपन्यास पर पहले भी फ़िल्म बन चुकी है। इसलिए आपने अगर शर्त रखी है मुझे भी विचार के लिए कुछ समय दीजिए।'' बाकर के जाते ही बिमल दा क्रोध से भभक उठे और सामने बैठे असित सेन से कहा—''असित! देख, मैं झुकने वालों में नहीं हूँ। देवदास में हालाँकि ऐसा कोई दृश्य नहीं है, फिर भी वह मुझे झुकाना चाहता है! मैं क्यों उसकी शर्त मानूँ? मैं किसी दबाव में फ़िल्म नहीं बना सकता।''

इस प्रकार कमाल अमरोही की शर्तों के कारण मीना कुमारी 'देवदास' से वंचित रह गयीं और फिर वह रोल कलकत्ता सुचित्रा सेन को बुलाकर दिया गया, लेकिन दिलचस्प बात यह है कि उसी मीना, कमाल अमरोही की मीना कुमारी ने बिमल रॉय की 'यहूदी' में दिलीप कुमार के साथ प्रणय दृश्य इन अनुबन्धों से मुक्त होकर दिये और तब कोई आपत्ति नहीं उठायी गयी।

जहाँ इन चित्रों के फलस्वरूप मीना की लोकप्रियता बढ़ी, वहाँ एक के बाद एक सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री के कई पुरस्कार जीतकर उन्होंने यह भी प्रमाणित कर दिया कि वह एक असाधारण अभिनेत्री हैं।

1953 में मीना कुमारी को 'बैजू बावरा' के लिए पुरस्कार मिला तो अगले वर्ष 'परिणीता' में नायिका की भूमिका करके वह पुनः पुरस्कृत हुईं। 1962 में 'साहब बीबी और गुलाम' में छोटी बहू बनकर उन्होंने एक बार फिर सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार जीता और उसके बाद सन् 65 में उन्हें 'काजल' के लिए एक बार फिर यह गौरव प्राप्त हुआ।

❑❑❑

सन्दर्भ सूची

किताबें

1. मीना कुमारी, द क्लासिक बायोग्राफ़ी : विनोद मेहता
2. आख़िरी अढ़ाई दिन : मधुप शर्मा
3. इश्क़ का ज़हर भरा प्याला : अनिता पाध्ये
4. पाकीज़ा : मेघनाद देसाई
5. मीना कुमारी, दर्द की खुली किताब : नरेंद्र राजगुरु
6. मीना कुमारी, फ़िल्मों से क़ब्रिस्तान तक : गिरिजा पंडित
7. मीना कुमारी : बच्चन श्रीवास्तव
8. आह! मीना कुमारी : एक संकलन
9. मीना कुमारी : रोहित
10. मलिका-ए-ग़म, मीना कुमारी : फारुख अर्गली
11. मीना कुमारी : मेरी भाभी : रईस अमरोहवी
12. तन्हा चाँद : मीना कुमारी नाज़
13. महमूद : अ मैन ऑफ मैनी मूड्स : हनीफ़ जावेरी
14. द वन एंड लोनली किदार शर्मा : किदार शर्मा
15. टेन ईयर्स विथ गुरुदत्त : अबरार अल्वी
16. आई एम ए स्ट्रेंजर हियर माइसेल्फ़, एन अनरिलाइयेबल मेमोआयर : भाईचन्द पटेल
17. ये उन दिनों की बात है : यासिर अब्बासी
18. चन्द चेहरे : अली सूफियां अफ़लाकी
19. इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ इंडियन सिनेमा : आशीष राजाध्यक्ष एवं पॉल विलेमन
20. नौशादनामा : राजू भातन
21. महबूब ख़ान रोमांस ऑफ़ हिस्ट्री : रऊफ़ अहमद

22. फ़िल्मी मोहरे : आदिल रशीद
23. फ़िल्मी क़ायदा : कृश्न चन्दर
24. वो भी एक ज़माना था : अनीस अमरोहवी
25. हिन्दी सिनेमा में मुसलमान : गयासुर रहमान

आलेख

1. मीना कुमारी, ए ट्रिब्यूट : लतिका खण्डेलवाल
2. पाकीज़ा, वन ऑफ़ ए काइंड : राजीव केलकर
3. टेंपल विदाउट गॉडेस : डेविड
4. मीना कुमारी, प्यारेलाल, शाकिर, मेरठी एंड जर्नलिज़्म : रऊफ पारेख
5. द इनिमिटेबल : मीना कुमारी : सत्या सरन
6. मौत मुबारक : नर्गिस दत्त
7. शीशे-सी नाजुक मीना : अंशु ठाकुर
8. मीना और मीनाकारी : सतीश वशिष्ठ
9. कई चेहरों में चीख़ता चेहरा : सतीश वशिष्ठ
10. मैं और मीना : सोहन लाल
11. रिमेंबरिंग द ट्रेजेडी क्वीन : भाग्यलक्ष्मी शेषचलम
12. रिक्विम फ़ॉर ए ड्रीम : देवेश शर्मा
13. द रियल मीना कुमारी : रज़ा रूमी
14. न जाओ सैयाँ छुड़ा के बइयाँ : जानकीदास
15. बातें मीना जी की : गुलज़ार
16 मीना कुमारी : शीला वेसुना
17 आई स्टिल लव मीना : कमाल अमरोही

पत्रिकाएँ

1. फ़िल्मफेयर 12 जून 1953
2. फ़िल्मफेयर 18 नवंबर 1953
3. फ़िल्मफेयर 2 अप्रैल 1954
4. फ़िल्मफेयर 5 जुलाई 1957
5. फ़िल्मफेयर 25 अक्तूबर, 1957
6. फ़िल्मफेयर 14 अगस्त, 1959
7. फ़िल्मफेयर 10 मार्च, 1961

8. फ़िल्मफेयर 18 अक्टूबर, 1961
9. फ़िल्मफेयर 11 जून, 1962
10. फ़िल्मफेयर 15 सितम्बर, 1962
11. फ़िल्मफेयर 13 अगस्त, 1963
12. फ़िल्मफेयर 11 दिसम्बर, 1964
13. फ़िल्मफेयर 10 जून, 1966
14. फ़िल्मफेयर 21 अप्रैल, 1972
15. फ़िल्मफेयर 4 जुलाई, 1972
16. स्टारडस्ट अगस्त, 1976
17. स्टारडस्ट दिसम्बर, 1972
18. स्टार एंड स्टाइल दिसम्बर, 1956
19. स्टार एंड स्टाइल जुलाई, 1959
20. स्टार एंड स्टाइल मार्च, 1964
21. माधुरी 6 मई, 1966
22. माधुरी : 14 अप्रैल, 1972
23. माधुरी : 28 मई, 1971
24. शमा जनवरी, 1967
25. शमा अप्रैल, 1968
26. शमा जून, 1969
27. शमा जुलाई, 1970
28. शमा जून, 1972

29 धर्मयुग : 16 अप्रैल 1972
30 सुषमा : जुलाई 1972

वेबसाइट्स

1. www.goldenheroines.com
2. www.memsaabstory.com
3. www.thebigindianpicture.com
4. www.bobytalkscinema.com
5. www.cineyatra.com
6. www.cinestan.com



सत्य व्यास

सत्य व्यास लेखकों की वर्तमान पीढ़ी के प्रतिनिधि लेखक हैं। इनकी किताबें सभी बेस्ट सेलर सूची में शामिल रही हैं। पाठकों के बीच हिन्दी को पुनर्स्थापित करने का श्रेय सत्य व्यास को प्राप्त है।

'द्वारका प्रसाद अग्रवाल' सम्मान, 'संकल्प' सम्मान तथा 'कोयला भारती' सम्मान से सम्मानित सत्य व्यास हर आयु वर्ग के पाठकों में अपनी पैठ रखते हैं।

इनकी बहुचर्चित किताब *चौरासी* का फ़िल्मांकरण *ग्रहण* नाम से हो चुका है। साथ ही इनकी बाकी किताबों पर भी फ़िल्मीकरण का काम चल रहा है। शोधपरक लेखन सत्य व्यास का सबल पक्ष है।

सत्य व्यास सम्प्रति मुम्बई में रहते हैं।

कथेतर/संस्मरण
Non-Fiction/Memoirs

वाणी प्रकाशन

www.vaniprakashan.com

ISBN : 978-93-5518-300-2

9789355183002

आवरण : वाणी स्टूडियो

हमसे जुड़ें
vaniprakashangroup
VaniPrakashanBooks
Vani_Prakashan
Vani Prakashan Group